आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना

डॉ० सुधाकर शंकर कलवडे

आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना

डा० सुधाकर शकर कलवडे
अध्यक्ष, हिन्दी–विभाग
सगमनेर महाविद्यालय
सगमनेर, अहमद नगर
महाराष्ट्र

पुस्तक संस्थान
१०९/५० ए नेहरु नगर, कानपुर १२

ADHUNIK HINDI KAVITA MEIN RASHTRIYA BHAWANA
By
Dr Sudhakar Shankar Kalwade
Rs 25 00

प्रकाशक
पुस्तक संस्थान
१०९/५०ए नेहरू नगर
कानपुर-१२
मुद्रक
राष्ट्रभाषा प्रेस
सर्वोदय नगर, कानपुर-५
संस्करण
प्रथम, फरवरी १९७३
मूल्य पच्चीस रुपये

भूमिका

स्वाधीनता पूव युग मे दासता से मुक्ति पाने के लिए दश म अदम्य चेतना, उत्साह और एकता की एक लहर व्याप्त हो गई थी वह अब दिखाई नहीं दती। सन १९६२ और १९६५ के चीन एव पाकिस्तान के आक्रमण के समय समस्त भारतवप म राष्ट्रीय चेतना की एक अभूतपूर्व लहर दौड गइ थी किन्तु वह भी अल्पकाल म विलुप्त हो गई। आज राष्ट्रविघातक शक्तियाँ भारतीय राष्ट्रीयता को चुनौती देकर अपार क्षति पहुँचा रही हैं। ऐस नाजुक समय म प्राचीन काल से आज तक कवियो ने जो राष्ट्रीय एकता का सदेश दिया है उसका विशेष महत्त्व है।

इस प्रबध के अध्ययन का कालखण्ड सौ वर्षों का है। इन सौ वर्षों म ब्रिटिश सत्ता का उदय, उत्कप, अस्त और गणतत्र की स्थापना महत्त्वपूण घटनाएँ हैं। पाश्चात्य सस्कृति के सम्पक के कारण भारतवप म एक महान परिवतन आया। यह युग भारत म राष्ट्रवाद का युग रहा है इतना ही नहीं तो इस युग मे राष्ट्रीय चेतना अपनी चरमोत्कपता पर दिखाई दती है। इस शताब्दी म लिखा हुआ काव्य भी प्राचीन भारतीय काव्य की एक कडी होते हुए भी उससे बहुत भिन्न हो जाता है। इस आधुनिक काव्य म प्रतिबिम्बित राष्ट्रीय भावना का विवेचन करना ही प्रस्तुत प्रबध का उद्देश्य है।

इस प्रबध म सात अध्याय हैं। प्रथम दो अध्याय भूमिका खड के और शेष शोध खड के हैं। भूमिका खड के प्रथम अध्याय म राष्ट्रीयता का स्वरूप, उसक प्रधान तत्त्वा तथा राष्ट्रवाद के रूपा विकृतियो, प्रकारो का विवरण दिया गया है। राष्ट्रीयता के स्वरूप निरूपण के साथ साथ प्राचीन काल से चली आती राष्ट्रीय काव्यधारा के स्रोत और प्रवाह का भी इसम उद्घाटन किया है। इसम सस्कृत से लेकर आधुनिक काल के पूव तक का विकास क्रम दिखान का यत्न है।

दूसर अध्याय मे आधुनिक राष्ट्रीय कविता की पष्ठभूमि के रूप म ब्राह्मो समाज, आय समाज, थिओसोफिकल सोसायटी रामकृष्ण मिशन, प्राथना समाज, आगरकर का सुधारवाद, माक्सवाद, गांधीवाद, समाजवाद जस वैचा

रिक राष्ट्रीय आदोलनो का सक्षेप म विवेचन किया गया है और इनके आधु निक हिन्दी कविता पर पडे प्रभाव को निर्धारित किया गया है।

तीसरे अध्याय से शोध खड प्रारम्भ होता है। तीसरे अध्याय म आधुनिक हिन्दी कविता म राष्ट्रीय भावना के विभिन्न रूप भारतवदना तथा प्रशस्ति, अतीत का गौरव गान वतमान काल की दुदशा, उद्बोधन एव आवाहन का विवेचन किया है।

चौथे अध्याय म भारत वन्दना और प्रशस्ति का सविस्तार विवेचन किया है। इस अध्याय म मातभमि की प्रशस्ति, दवीकरण अवना पूजन प्राकृतिक सुषमा तथा भारतमाता क कारणिक दृश्य का वणन आता है। इन प्रवत्तियो का तुलनात्मक विवेचन है।

पाँचवें अध्याय म स्वर्णिम अतीत का गौरव गान का विस्तार के साथ वणन किया है जिसमे भारत के प्राचीन एव मध्ययुग के वभव का भतिक सामाजिक आदर्शों एव समद्धि का, तथा अतीत की तुलना म वतमान की दुदशा और अतीत के वभव यक्ति एव वारता द्वारा उद्बोधन आदि विषयों का तुल्नात्मक अध्ययन है।

छठे अध्याय म वतमान काल की दुदशा के विभिन्न रूप सामाजिक, धार्मिक आर्थिक तथा राजनीतिक-पर विचार किया गया है। सामाजिक पक्ष मे-अशिक्षा रूढ़िवादिता जाति पाँति उच्च नीचता नारी एव अछूतो की सोचनीय अवस्था आदि का धार्मिक पक्ष म-धर्माडम्बर धम विभेद धार्मिक कुरीतिया पाखड आदि का आर्थिक पक्ष म आर्थिक शोषण एव विषमता उद्योगधधा का ह्रास कृषको और श्रमिको की दु स्थिति अकाल स्वदेशी आदोलन का राजनीतिक पक्ष म-राजनीतिक दुदशा देशी राज्यो का स्थिति, लो० तिलक तथा म० गाधी के युगो मे ब्रिटिश शासको का कठोर दमन चक्र उसके विरुद्ध किय गये विराट आन्दोलनो तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के हेतु किये गए आदोलनो का वणन प्रस्तुत किया है।

सातवें अध्याय म उदबोधन एव आवाहन के विभिन्न रूपो-व्यक्ति और समाज का उदबोधन जातीय एकता दासता बोध स्वर्णिम भविष्य क्राति का स्वरूप, बलिदान की भावना अभियान गीत कीर्ति काव्य मानवता की भावना का तुलनापरक विवेचन है।

इस प्रकार प्रस्तुत प्रबध मे सन १८५० से १९५० ई० तक के कालखड के हिन्दी कविता मे प्राप्त राष्ट्रीय भावना का सागोपाग प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

इस शोध-कार्य के प्रेरणा स्रोत गुरुवर श्रद्धेय डा० भगीरथ मिश्रजी तथा मेरे बड़े भाई दिनकरजी हैं। उनके स्निग्ध एवं ममतामय व्यवहार से मुझे सदैव प्रोत्साहन मिला है। डा० भगीरथ मिश्रजी के सम्यक् निर्देशन के फलस्वरूप यह कठिन कार्य पूर्ण हुआ। अतएव उनके ऋण को स्वीकार कर भी, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। पूना विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित जी ने मेरे शोध कार्य के सम्बन्ध में आस्था प्रकट कर अनेक मूल्यवान सुझाव दिये। इस प्रबन्ध में अनेक कवियों तथा लेखकों की कृतियों की भी सहायता ली है। इन सब के प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ।

सुधाकर शंकर कलवडे

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

लो० तिलक युग महत्वपूर्ण घटनाऐं—

बगभग आन्दोलन, सूरत काग्रेस, सौम्य और उग्रदल तिलक-राजा, प्रथम महायुद्ध, होमरूल आन्दोलन, रौलेट बिल, जलियाँ वाले बाग का हत्याकाण्ड एव लो० तिलक की मृत्यु ?

म० गांधी युग महत्वपूर्ण घटनाएँ—

सत्य अहिंसा, सत्याग्रह तथा गाँधीवादी रचनात्मक कार्यक्रमो का ग्णन, कारागार तथा ब्रिटिशो की दमन नीति का ग्णन, खिलाफत आन्दोलन, साइमन कमीशन, बारडोली आन्दोलन, सन १९२०-२१ का असहयोग आन्दोलन, दाण्डी यात्रा, स्वराज्य पक्ष की नीति लाहौर काग्रेस, भारत छोडो आन्दोलन एव गाधीजी की हत्या ?

उदबोधन एव आवाहन २१३-२८३

उदबोधन के विभिन्न रूप
प्रेरणा और भत्सना जातीय एकता दासता का बोध
स्वर्णिम भविष्य
क्रान्ति की भावना —
क्रान्ति का स्वरूप सामाजिक, धार्मिक आर्थिक, राज्य क्रान्ति

सामाजिक क्रांति

नारी सुधार अस्पृश्यता निवारण सामाजिक कुरीतियो पर प्रहार।

धार्मिक क्रांति

आडम्बर, पाखण्ड, मूर्तिपूजा, ईश्वरवाद की कडी निन्दा।

आर्थिक क्रांति

पूँजीवाद साम्राज्यवाद के नाश की कामना शोषण समाप्ति नयी समाज व्यवस्था।

राज्य क्रांति

स्वाधीनता प्राप्ति के हेतु ब्रिटिशो के साथ सशस्त्र सग्राम तथा

—oo—

राष्ट्रीयता का स्वरूप और उसके प्रधान तत्त्व

राष्ट्र

राष्ट्र की चर्चा वास्तव म राजनीति का विषय है। किन्तु राजनीतिक सामाजिक परिस्थितियो का सदव प्रतिबिम्ब साहित्य म पडता है। वसे तो साहित्य क लिए कोई विषय ही बाह्य नही होता। अत राष्ट्र शब्द की चर्चा साहित्य म भी प्राचीन काल स प्राप्त होती है।

राष्ट्र प्रथमत देश होता है। एक देश देश' का सत्ता से ऊपर उठकर राष्ट्र की सत्ता को तभी प्राप्त करता है जबकि उसके निवासियो म कुछ सामान्य विशेषताओ के आधार पर घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तथा वे सब अपने को देश की इकाई के रूप मे देखते हैं। राष्ट्र शब्द को विभिन्न अर्थों मे प्रयुक्त किया जाता है। इस शब्द के विविध अथ है—देश, राज्य, मडल प्रात, धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक आत्मीयता से पूर्ण जन समुदाय, अनेक लोग, राज कारोबार आदि।[1] भारतवष के प्राचीन साहित्य मे भी राष्ट्र शब्द का अथ समाज किया है।[2] अथववद म त्वा राष्ट्र भत्याय[3] म राष्ट्र शब्द समाज क अथ म प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन सस्कृत काव्य म 'राष्ट्र' शब्द का उल्लेख निम्नलिखित वाक्यो म प्राप्त होता है— पथिव्य समुद्रपयन्तया एक राष्ट्र' और 'पशुधाय हिरण्य सम्पदा राजते शोभत इति राष्ट्रम।" अर्थात पशु धनधान्य आदि सम्पदाओ से सुशोभित भूमि भाग ही राष्ट्र है। शतपथ ब्राह्मण म राष्ट्र शब्द की व्याख्या इस रूप म मिलती है—'श्री वै राष्ट्रम' अर्थात समृद्धियुक्त ओजस्वी जनसमूह ही राष्ट्र है। सक्षेप म ऋग्वेद तत्तरीय सहिता, अथर्वेद म राष्ट्र शब्द का विपुल मात्रा म किन्तु विभिन्न अर्थों मे प्रयोग हुआ है।[5]

---

१ (अ) दात महाराष्ट्र शब्द कोश पृ० २६३२।
(ब) आपटे—सस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी—पृ० ८०२।

२ तत्तरीय सहिता ७ ५ १८।

३ अथववेद—१९ ३७ ३९।

४ शतपथ ब्राह्मण पृ० ६ ७ ३-७।

५ साहित्याचाय शास्त्री हरदास—वदातील राष्ट्र-दशन पृ० ३४।

आज हम 'राष्ट्र' शब्द को अँग्रेजी के 'नेशन' शब्द का पर्यायवाची मान कर प्रयुक्त करते हैं। जहाँ तक 'नेशन' शब्द की व्युत्पत्ति का सम्बन्ध है यह शब्द लॅटिन Natio शब्द से बना हुआ है जिसका अर्थ है जन्म अथवा अंश। इससे वांशिक एकता ही राष्ट्र है यह कहना भ्रमपूर्ण होगा। कारण फ्रांसीसी राज्यक्रांति के समय 'नेशन' का अर्थ देशभक्ति हुआ था।[1] आज जिस व्यापक अर्थ में हम 'नेशन' शब्द का प्रयोग करते हैं, वह औद्योगिक क्रांति के पूर्व नहीं किया जाता था।[2] 'नेशन' शब्द का धीरे धीरे विकास होते होते आज का व्यापक अर्थ प्राप्त हुआ।

राष्ट्र विश्व में अपना एक पृथक् एवं महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसकी महत्ता भी लोग स्वीकार करते हैं। व्यक्ति के समान ही राष्ट्र का एक व्यक्तित्व बन जाता है। व्यक्ति के लिए अपना जीवन राष्ट्र को समर्पित करना उसका पवित्र कर्त्तव्य है। राष्ट्र धर्म हमारा सर्वश्रेष्ठ धर्म है। राष्ट्र मानवता का कार्य क्षेत्र है। राष्ट्र एक जीवित शरीर है जिसके दो मूलाधार हैं। एक है—बाह्य शरीर जो भौगोलिक सीमाओं से घिरे देश के रूप में प्रकट होता है और दूसरा—आत्मा जो जन साधारण की संस्कृति भाषा साहित्य कला और आदर्शों आकांक्षाओं के रूप में अभिव्यक्त होती है और राष्ट्र का निर्माण करता है। उसी प्रकार राष्ट्र के सरूप और अरूप दो तत्त्व हैं। सरूप में राष्ट्र की भूमि ऋतुएँ, नदी नद सरोवर वनपर्वत उपवन समुद्र आदि स्थूल वस्तुएँ आती हैं अरूप में राष्ट्र की चिंतनधारा का समावेश होता है। इतिहास इसका साक्षी है कि राष्ट्र को चिरकालीनता प्राप्त नहीं होती। इतिहास के एक विशेष युग में कुछ राष्ट्रों का उदय होता है तो कुछ राष्ट्रों का अस्त। राष्ट्रों के निर्माण में महायुद्धों ने विशेष योगदान किया है। प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् स्वयं निर्णय के तत्त्व के आधार पर ल्टव्हिया पोलंड फिनलंड आदि अनेक राष्ट्रों का निर्माण हुआ है।

राष्ट्र और राज्य

यों तो राष्ट्र भी एक राज्य ही होता है परन्तु दोनों में विशेष समानता होते हुए भी अन्तर स्पष्ट ही है। राज्य के लिए भू प्रदेश जन समुदाय, शासन संस्था एवं सार्वभौमत्व आवश्यक है। एक राज्य में अनेक राष्ट्रों का समावेश हो सकता है—यथा हंगेरी आस्ट्रिया एक ही राज्य में थे। किन्तु एक राष्ट्र में अनेक राज्यों का समावेश होना असम्भव सी बात है। राज्य को राष्ट्र की

१ प्रकाशचन्द्र गुप्त—साहित्य धारा पृ० ८०।
२ विनयमोहन शर्मा—साहित्य शोध समीक्षा पृ० ५–६।

पदवी उस समय तक प्राप्त नहीं होती जब तक राष्ट्र के निवासियों में परस्पर एकता की भावना उत्पन्न नहीं होती। इस एकानुभूति की चेतना के कारण कोई जन समुदाय राज्य के नष्ट होने पर भी राष्ट्र का रूप धारण किए रखता है। यदि इस एकता की भावना का लोप हो जायगा तो राष्ट्र का अस्तित्व ही संकट में आता है। अतः राष्ट्र को बनाये रखने के लिए एकता की भावना की नितान्त आवश्यकता है।

राष्ट्र की परिभाषा

यदि इस बात पर विचार किया जाय कि राज्य अथवा राष्ट्र का प्रादुर्भाव कब और कैसे हुआ, तो हमें कल्पना तथा मनोविज्ञान का आश्रय लेना पड़ेगा। मानव सभ्यता के इतिहास के प्रारम्भिक काल को दृष्टि में रखते हुए बहुत से विद्वानों ने अपनी-अपनी खोज के अनुसार भिन्न भिन्न सिद्धान्तों की स्थापना की है। पहले पहल कुछ मनुष्यों ने मिलकर एक परिवार के रूप में रहना प्रारम्भ किया होगा। तत्पश्चात् कुछ परिवार मिलकर एक कुल में रहने लगे होंगे। ज्यों-ज्यों नैसर्गिक सामुदायिक मनोभावना का विकास होता गया इन कुलों ने मिलकर कबीला और इसी प्रकार अनेक कबीलों का संयुक्त रूप जब किसी निश्चित स्थान पर बस गया तो राज्य कहलाया। उस राज्य पर शासन द्वारा प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए राजनैतिक चेतना का विकास ही राष्ट्र निर्माण में सहायक हुआ। अर्थात् यह सारी प्रगति कोई एक दिन का काम नहीं है, वरन् वर्षों के धीरे धीरे होनेवाले मनोवैज्ञानिक परिवर्तन का फल है जिसका मूलभूत आधार मनुष्य की सहज सामुदायिक भावना ही है। इस सहयोग तथा मिल जुल कर रहने की मनोवृत्ति को जाति तथा धर्म की एकता में पर्याप्त पुष्टि मिली जिससे मनुष्यों के समूह ने अपने आप को एक विशेष भाषा, सामान्य रीति रिवाजों तथा धर्म विश्वासों में बांध लिया। सामूहिक जीवन व्यतीत करने में उन्हें आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ा और इसीलिए समाज की व्यवस्था को स्थिर रखने के लिए उन्होंने कुछ नियमों का बंधन निर्धारित कर लिया। अन्त में अपनी जीवन रक्षा तथा प्रगति के लिए जिस राजनीतिक एकता की आवश्यकता का अनुभव हुआ उसने ही राष्ट्र को सच्चे अर्थ में जन्म दिया। बर्गेस ने राष्ट्र के विषय में लिखा है—'एक जनसमुदाय जिसकी भाषा एवं साहित्य, रीति रिवाज तथा भले-बुरे की चेतना सामान्य हो और जो भौगोलिक एकता युक्त प्रदेश में रहता हो राष्ट्र कहलाता है। इस परिभाषा की त्रुटियाँ स्पष्ट हैं। आज कल समान भाषा एवं साहित्य भौगोलिक एकता-युक्त की भी आवश्यकता नहीं है। पाकिस्तान को भौगोलिक एकता प्राप्त नहीं है और भारत में अनेक

बोली जाती है । यह परिभाषा धार्मिक एकता को अधिक महत्त्व प्रदान करती है इसीलिए यह वर्तमान युग में अपना विशेष महत्त्व नहीं रखती । कारण आज शुद्ध वंश अथवा एक वंश के जनसमुदाय अस्तित्व में हैं ही नहीं ।

कुछ विद्वान सांस्कृतिक एकात्म होने वाले समाज को राष्ट्र मानते हैं किन्तु राष्ट्र निर्माण के लिए केवल सांस्कृतिक एकता पर्याप्त नहीं होती । डा० सुधीन्द्र ने लिखा है भूमि भूमिवासी जन और जन संस्कृति का समन्वय 'राष्ट्र' है और 'राष्ट्र' के उत्थान और प्रगति के संयोजक तत्त्वों का समीकरण राष्ट्र धर्म है ।'[1] परन्तु इस कथन से भी राष्ट्र के सम्बन्ध में स्पष्ट धारणा नहीं बनती ।

डा० विनयमोहन शर्मा के अनुसार राष्ट्र जाति धर्म एवं भाषा की एकता का नाम नहीं है वह भावना की एकता का नाम है ।'[2] यहाँ हम ध्यान में रखना चाहिए कि इस कथन में भावना की एकता की बात सत्य होते हुए भी केवल यही तत्त्व राष्ट्र बनने में सहायक नहीं है । इसके लिए अन्य बातें भी आवश्यक है ।

एक सूत्रता ही राष्ट्र के प्राण है । इसी विचारधारा को व्यक्त करते हुए जूलियन हक्सले ने राष्ट्र शब्द की व्याख्या प्रस्तुत की है—

बहुत से मानव क्रिया कलाप महत्वाकांक्षाएँ और भाव स्वाभाविक या कृत्रिम रूप में परस्पर मिलकर उस वृहद संयोग की सृष्टि करते हैं जिसे हम राष्ट्र शब्द द्वारा प्रकट करते हैं । भाषा धर्म कला विज्ञान, आहार भाव भंगिमा मिलना-जुलना वेश भूषा खेल-कूद भी इसमें योगदान देते है । इस परिभाषा में अतिव्याप्ति का दोष प्रमुखतया लक्षित होता है ।

आजकल अधिकांश मान्य परिभाषा इस प्रकार है राजनैतिक स्वातंत्र्य तथा प्रभुसत्ता एवं प्रादेशिक अखंडता प्राप्त समाज ही राष्ट्र है । कारण 'राष्ट्र एक ऐसी आत्मा है जिसकी जड़ मनुष्य के हृदय की गहराइयों में है न कि देश जाति भाषा संस्कृति और धर्म इन पाँचों की एकता में है । यदि ये पाँच तत्त्व सहायक न मानकर अनिवार्य मान जायें तो अमरिका स्विट्जरलैंड आदि देश राष्ट्र की संज्ञा नहीं पा सकेंगे ।'[3] इससे स्पष्ट होता है कि केवल भौगोलिक इकाई पर बसा हुआ जनसमुदाय जिसकी अपनी ही संस्कृति तथा सभ्यता हो अपनी ही भाषा तथा धर्म हो एवं अपना ही विधिनिषेध की

---

१ डॉ० सुधीन्द्र—हिन्दी कविता में युगान्तर पृ० २७ ।

२ डॉ० विनयमोहन शर्मा—साहित्य शोध समीक्षा पृ० ८ ।

३ वही पृ० १० ।

परम्परा हो, राष्ट्र है ऐसा नही कहा जा सकता। वतमान युग म इससे अनक देश राष्ट्र सज्ञा स वचित हा जायेंगे। अत विभिन्न वश, धम, जाति का जन समुदाय होकर भी जब समाज म एकता और प्रभुसत्ता होती है, तो उस भूमि विशेष प्रदश का वह समाज राष्ट्र की सज्ञा पाता है।

भारत राष्ट्र है

भारत की विविधता क कारण बार-बार यह प्रश्न उठाया जाता है कि भारत एक राष्ट्र है या नही। कारण—

भारत म अनक धर्मों का भाषाओं का, सस्कृतियों का वर्गों का, आचारो का समन्वय हुआ है तथा रहन सहन खान पान भौगोलिक तत्त्व वेश भूषा आदि म विविधता है। इस विविधता को देखकर विदेशी, जो भारतीय सस्कृति स अत्यत अपरिचित होत हैं, भारत को एक राष्ट्र के बदल अनेक राष्ट्रों का समूह मानत हैं। परन्तु यह कल्पना नितान्त भ्रामक है। भारत की इस विविधता का तह म आश्चर्यजनक एकता है। पराधीनता के काल म य विभिन्न धम जाति वर्ग के जन समुदाय एकत्र होकर स्वाधीनता प्राप्ति क लिए लडें। ह्वा ए स्मिथ भी भारतवष को एक राष्ट्र मानते है कारण यहाँ सदा राजनतिक एकता की भावना व्याप्त रही है। आधुनिक परिभाषा के अनुसार भी भारत राष्ट्र की सज्ञा पाता है क्योंकि यहा राजनीतिक स्वातत्र्य तथा प्रभुसत्ता एव प्रादेशिक अखडता प्राप्त समाज है। अत नि सन्देह कहा जाता है कि भारत राष्ट्रों का समूह न होकर एक राष्ट्र हा है।

राष्ट्रीयता का स्वरूप

राष्ट्र के प्रति तीव्र अपनत्व तथा ममत्व का भावना म राष्ट्रीयता का जन्म हुआ है। और आज राष्ट्रीयता एक प्रबल शक्ति एव प्रभावशाली प्रेरणा है। प्रगत और अप्रगत राष्ट्रों के इतिहास से देखा जा सकता है कि इस भावना न अपूव काय किया है। इग्लैंड अमरिका, जमनी आदि यूरोपीय राष्ट्रों म जो आर्थिक सामाजिक राजनीतिक क्राति क प्रयोग हुए, उनके पीछे न्यूनाधिक मात्रा म राष्ट्रीयता की भावना ही कार्यरत थी। साम्प्रतकाल म एशिया और अफ्रीका म अथवा अप्रगत राष्ट्रों म सामाजिक पुनरुत्थान का जो प्रचड लहर व्याप्त हो रही है उसका प्राणतत्त्व भी राष्ट्रवाद है। वतमान कालीन भीषण एव बबर जगत म सुरक्षा पान क लिए राष्ट्रवाद का ही आश्रय लना पडता है। राष्ट्रीयता का प्रसार रोकन म सोशलिस्ट अथवा कम्युनिस्ट राष्ट्र भी असफल रहें। द्वितीय विश्वयुद्ध (सन १९३९–१९४५) के समय तो साम्यवादी स्टालिन को भी रूस की राष्ट्रीयता तथा रूस के अतीत

से राष्ट्र को प्ररणा प्रदान करन का काय करना पडा। आज चीन रूस आदि कम्युनिस्ट राष्ट्र मार्क्स के सिद्धान्तानुसार विश्ववादी न बनकर अधिकाधिक राष्ट्रवादी बनकर राष्ट्रवाद को प्रधानता दे रहे हैं।

राष्ट्रवाद का रूप सब देशा म सदव समान राति स प्राप्त नही होता। राष्ट्रीयता तो एक ऐतिहासिक अद्‌भुतता है और राजनीतिक कल्पनाओ से तथा सामाजिक सगठनो स उस निर्धारित किया जा सकता है जिसम उसकी जडें जमी हुई हैं। राष्ट्रीयता का सम्बन्ध बाह्य शरीर अथवा जड भूमि मात्र स न होकर आन्तरिक होता है। अपने देश क अगाध प्रम म अपनी सस्कृति सभ्यता एव धम के प्रति गौरव म अपन दश की सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक दशाओ म सुधार के प्रयत्न आदि म यह राष्ट्रीय भावना प्रस्फुटित होती है। राष्ट्रीयता का काय व्यापक समाज म चलता है जिसकी उपेक्षा अथवा महत्ता अमान्य नही की जा सकती। राष्ट्रीयता एक एसी भावना है जो जन्म के साथ ही पदा होती है और जिसका सम्बन्ध रागात्मिका वत्ति से होता है। राष्ट्रीयता एक सामूहिक भाव है। राष्ट्रीयता की यह भावना कभी कभी इतनी वेगवती हो जाती है कि वह लाख बधन बाधाओ को लाघती हुई अपने लक्ष्य की ओर तबतक अग्रसर होती रहती है जबतक वह अपनी इष्ट सिद्ध को प्राप्त नही करती। राष्ट्रीय भावना का पराकाष्ठा तब होती है जब किसी राष्ट्र विशेष पर कोई बलपूवक आक्रमण करता है। उस समय उस देश क सदस्यो म एकत्व की भावना सुदढ हो जाती है और वे भेद भाव मिटा कर परकीयो के सतत सघष करने के लिये उद्युक्त हो जात है और विरोधियो से लोहा लेने के लिये बडे से बडा त्याग और बलिदान करना अपना कतव्य समझते हैं। जीवित रहते उनकी मातृभूमि को कोई आँख उठाकर भी देख नही सकता उस भू भाग पर रहने वाले लोगो को पीडित नही कर सकता तथा उनकी सस्कृति एव सभ्यता को कोई पददलित नही कर सकता ऐसी दढ धारणा उनके मन म जाग्रत हो जाती है। चीन और पाकिस्तान ने जब भारत पर आक्रमण किया तो भारतीयो की राष्ट्रीय भावना चरमोत्कष पर पहुँच गई थी।

राष्ट्रीयता की भावना व्यक्ति को अपन राष्ट्र के लिए उच्चकोटि के शौय तथा बलिदान क लिय प्ररणा दन वाली सामूहिक भावना की एक एसी उच्चतम अभिव्यक्ति है जिसका ससार के इतिहास निर्माण म बहुत बडा हाथ है। राष्ट्रीयता एक मानसिक अनुभूति अथवा मन का एक स्थिति है। सामान्यत जीवन यापन करन की समान पद्धतिया समान परम्पराएँ समान ..., समान आर्थिक हेतु समान इतिहास होने से शीघ्र ही राष्ट्रवाद

की भावना विकसित होती है। रेनन के अनुसार राष्ट्रीयता की विशेषता आध्यात्मिक रूप में है। आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के जनक मौजिनी हैं। उनके अनुसार भगवान में प्रदत्त राष्ट्र हमारे घर जैसा है। भारतीय मनीषी अरविंद घोष ने राष्ट्रीयता को कोई राजनीतिक कार्यक्रम नहीं वरन भगवान से आया हुआ धर्म माना है। डार्विन के अस्तित्व के लिये संघर्ष वाले सिद्धान्त ने भी राष्ट्रीयता को शक्तिशाली बनाने में बड़ा योगदान दिया है।

राष्ट्रीयता के कारण समाज में ऐसी स्नेहशीलता निर्माण हो जाती है जिसकी वजह से लोग एकता के सूत्र में बंद होते हैं। राष्ट्रीयता के लिये देश की अथवा राज्य की इकाई होना आवश्यक है। यह बात दूसरी है कि विभिन्न युगों में देश अथवा राज्य की सीमाएँ घटती-बढ़ती हैं। इन सीमाओं के अनुपात में ही राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण में अंतर आ जाता है। राष्ट्रीयता के कारण ही जन्मभूमि को स्वर्गादपि गरीयसी मानकर एक भावनात्मक लगाव उसके प्रति रहता है। वस्तुतः राष्ट्र के सब मानवों की एकता ही राष्ट्रवाद की आधारशिला है। राष्ट्रीयता की भावना निर्माण होने के पश्चात कुछ दिनों में दृढ़ हो जाती है। अन्य समाज की भिन्नता से परिचित तथा राजनीतिक आकांक्षा से प्रेरणा पाने वाला समाज अन्यों का प्रभुत्व मान्य नहीं करता।

इतिहास के साथ ही राष्ट्रीयता के अर्थ में परिवर्तन आता है। राष्ट्रीयता के भिन्न भिन्न अर्थ किये जाते हैं। उदारतावादी ब्रिटिश स्वातंत्र्य एवं मुक्ति को राष्ट्रीयता का अंग समझते हैं। जर्मन नाजी आक्रमण और जनतंत्र के विरुद्ध राष्ट्रवाद को शस्त्र समझते हैं तो रूसी कम्युनिस्ट उसे पूंजीपतियों का एक साधन समझते हैं। किन्तु आज हमारे जीवन में राष्ट्रीयता की भावना एक अत्यंत प्रबल शक्ति हो गई है। व्यक्ति, परिवार, सम्प्रदाय और संकुचित धर्म भावना इस नूतन राष्ट्रवादी सर्वव्यापक सर्वग्राह्य और सर्वमान्य भावना के सामने गौण और तुच्छ हो रही है। आधुनिक राष्ट्रवाद ही धर्म का स्थान ग्रहण कर रहा है। इस चेतना ने हमें अपने विशाल और भव्य रूप की कल्पना करना सिखाया है और देश के दुःख दारिद्र्य अशिक्षा अज्ञान अशक्तता और अधोगति के कारणों को नष्ट कर देने की प्रबल प्रेरणा को हमारे हृदय में उत्पन्न करने का श्रेय भी इसी को है। संक्षेप में राष्ट्रीयता ने न केवल जन समुदायों के भावनाओं को प्रभावित किया बल्कि मानवता के बौद्धिक राजनीतिक सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं आर्थिक सम्बन्धों को भी प्रभावित किया है।

---

१ डा० रामकुमार वर्मा धर्मयुग २० अक्टूबर १९६३।

राष्ट्रवाद के दो रूप हैं—एक शाश्वत दूसरा सामयिक। शाश्वत रूप को हम राष्ट्रवाद का सांस्कृतिक पक्ष कह सकते हैं इसमें राष्ट्र के नैतिक और सांस्कृतिक तत्त्वों का समावेश होता है। सामयिक रूप को हम राष्ट्रवाद का ऐतिहासिक पक्ष कह सकते हैं। राष्ट्र की प्रगति की दिशा में समाज के भौतिक तत्त्वों का विकास सामयिक रूप के अन्तर्गत आता है।

भारतीय राष्ट्रवाद की विशेषता

भारतीय राष्ट्रवाद अपनी एक अलग विशेषता रखता है। प्रथमतः ही हमारी राष्ट्रीयता की यह सराहनीय विशेषता है कि वह अहिंसात्मक है। हमारी राष्ट्रीयता रंग भेद जाति भेद धर्म और सम्प्रदाय पर आश्रित नहीं है। वह सत्य अहिंसा और समता एवं स्वतन्त्रता की एकसूत्रता पर आश्रित है। जियो और जीने दो हमारे पंचशील का मूलसूत्र है। हमारी राष्ट्रीयता अनेकता में एकता लाने के लिए है। हमारी राष्ट्रीयता ने सर्वभद्राणि पश्यतु का पाठ पढ़ाया है और वह विश्वमैत्री पर आधारित है।[1] हमने बराबर ध्यान रखा है कि हमारी राष्ट्रीयता आक्रमणशील, संकुचित न होने पाये। हमारी आधुनिक राष्ट्रीय चेतना का बौद्धिक अंश बर्क मिल ग्लैडस्टन और ब्रिकन के द्वारा निर्मित हुआ है और भाव प्रधान अंश रूसो और मैजिनी के द्वारा अपनी राजनीतिक पद्धतियों के लिये हम अमरीका क्रान्ति इटली के नेताओं प्रमुखतः गैरीबाल्डी और आयरिश राष्ट्रवादियों के ऋणी बने। अमरीका फ्रांस इटली और आयरलैंड की ओर हमारी दृष्टि बराबर लगी रही। एक प्रकार से हमारी राष्ट्रीय-चेतना सर्वग्राही और सामाजिक रही है।[2]

तात्पर्य यह है कि प्राचीनकाल से ही भारतीय राष्ट्रीयता सहिष्णु सर्वग्राही सर्वसमावेशक, सर्वव्यापक अनासक्त वर्ग जाति धर्म हीन तथा सामासिक रही है। हमारी राष्ट्रीयता के आदर्श शान्ति विश्वमैत्री अन्तर्राष्ट्रीय एकता विश्वबंधुत्व समता सहयोग इत्यादि आत्मिक गुणों पर आधारित है। भारत के लिए राष्ट्रीयता विलास की वस्तु न होकर सदैव आवश्यकता की वस्तु रही है। वह हमारे अस्तित्व की नींव है। इस देश में राष्ट्रीयता का दृष्टिकोण सदैव ही संस्कृति से सम्बन्धित रहा है। इस प्रकार समन्वय पर आधारित भारतीय राष्ट्रीयता दुनियाँ में अपनी विशिष्टता का परिचय देती है।

---

१ श्री गुलाबराय–राष्ट्रीयता (प्रथम संस्करण १९६१) पृ० १५।

२ डा० रामरतन भटनागर–निराला और नवजागरण–पृ० १२१।

राष्ट्रवाद और देशभक्ति

राष्टवाद और देशभक्ति इन शब्दा को एक म मिलाने का प्रयत्न किया जाता है जो भ्रामक है। देशभक्ति, देश के प्रति एक प्रकार का अनुराग है और राष्टवाद मस्तिष्क के तक से उत्पन्न विचार है। राष्टवाद के मूल म देशभक्ति बीज रूप म सुरक्षित रहती है। अनेक अन्य प्रकार की भक्ति की भाति देशभक्ति भी देश की रज के प्रति भक्ति की भावना है।[1] देशभक्ति का मूल मन्त्र है—हमारा देश, हमारा राष्ट, अन्य राष्ट्रों से श्रेष्ठ सुदर तथा समद्ध है। देशभक्ति मानव सगठन के समान ही प्राचीन भाव है, जिसका *विकास वंश, जमात, नगर राज्य के प्रति निष्ठा म* विकसित हुआ है। देश भक्ति वैयक्तिक न होकर समष्टिगत चेतना है। वह जनक्य, जन-सस्कृति तथा जन-सेवा की भावनाओ से ओत प्रोत रहती है। '*राष्ट अथवा राष्टवाद के अभाव मे भी देशभक्ति वतमान रह सकती है।*[2] राष्टीयता की भावना सापेक्ष सघटना है जो इतिहास क द्वारा निर्धारित होती है। राष्टवाद जाति, वण रक्त भेद को भुलाकर राष्ट्र के कल्याण की भावना से अभिप्रेरित होता है। राष्टीयता तो हमारे विकास की विजय है। अत राष्ट्रीयता से देशभक्ति का मौलिक अत है। इन शब्दो को एक अथ म प्रयुक्त करना असगत है।

राष्ट्रीयता की विकति

राष्टवाद क साथ भिन्न भिन्न राष्टो की विभिन्न सभ्यता तथा सस्कृतियाँ आइ और गौरव गाथाओ का गान हुआ तथा राष्टो के अभ्युदय व विकास की योजनायें बनी। इसके विकास के साथ विभिन्न राष्टो म स्वाथवश स्पधा तथा प्रतिद्वद्विता की मात्रा बढ़ती गई। फलत विकृतिया आइ जिनका प्रत्यक्ष प्रमाण है--प्रथम तथा द्वितीय महायुद्ध। अतराष्टीय मुक्त व्यापार राष्टवाद का भावना के कारण सामित हो गया। राष्टीयता अत्यत प्रबल एव आक्रामक रूप साम्राज्यवाद का रूप धारण करता है। वज्ञानिक यातायात के कारण विश्व के सभी भाग निकट आ गय है लेकिन राष्टीय प्रतिबन्धो के कारण सम्पूण विश्व के आर्थिक उत्पादन का मानव मात्र के लिए अधिक से अधिक उपयोग असभव हो गया। राष्टवाद के कारण अतर्राष्टीय स्तर पर हम विचार

---

१ डा० सुषमा नारायण—भारतीय राष्टवाद के [विकास की हिन्दी साहित्य म अभिव्यक्ति प० ७।

२ डा० सुधीन्द्र-हिन्दी कविता म युगातर प० २३६।

नही भर सकते । असहिष्णुता एवं अहंभाव को बढ़ावा मिलता है। राष्ट्रवाद में स्वार्थ भावना अधिक प्रबल होती है । इसकी प्रबलता अन्य राष्ट्रों के लिए घृणा की भावना का संचार करती है जिसमें मानव-जाति के कल्याण की अपेक्षा ध्वंस ही अधिक होता है। निरीह मानवता संकीर्ण एवं विकृत राष्ट्रवाद की चक्की में बुरी तरह पिस जाती है। साम्यवाद का जन्म इसकी विकृति की प्रतिक्रिया स्वरूप है । विकृत राष्ट्रवाद के परिणाम स्वरूप उन्नत, समृद्ध तथा शक्तिशाली राष्ट्र पराधीन राष्ट्रों के साथ बर्बर और नृशंस व्यवहार करने में तनिक भी संकोच नहीं करते । इस विकृत राष्ट्रवाद से क्षुब्ध होकर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है कि मानवता की रक्षा के लिए राष्ट्रीयता की ध्वंसात्मक रोगवृत्ति के विरोध में सबको सजग करना चाहिए जिससे मानवता की नैतिकता की शक्ति का ह्रास हो रहा है। ऐसे विकृत आक्रामक राष्ट्रवाद को उन्होंने मानवता के लिए बड़ा खतरा माना है। कारण वे मानवतावादी राष्ट्रीयता के समर्थक थे।

राष्ट्रीयता का आक्रामक और विकृत रूप विश्वशांति एवं मानव कल्याण का ध्वंस करने वाला है जबकि सच्चे अर्थ में राष्ट्रीयता विश्व कल्याण का एक सोपान ही है । राष्ट्रीयता शांति देशभक्ति आदि को प्रोत्साहन देने वाली है । यथा नीति से अलग होकर राजनीति भ्रम है वैसे ही मानवता से च्युत राष्ट्रीयता भी बंधन है। यह ध्यान में लेना आवश्यक है कि राष्ट्रीयता से अंतर्राष्ट्रीयता का अंकुर प्रस्फुटित होता है । जब तक राष्ट्रीयता सुदृढ़ नहीं है तब तक अंतर्राष्ट्रीयता पनप नहीं सकती। राष्ट्रीयता का त्याग कर विश्व बंधुत्व का राग अलापने का तात्पर्य घोड़े के आगे गाड़ी जोड़ देने के समान ही होगा। महात्मा गांधी जी ने इसी को लक्ष्य करके कहा है कि राष्ट्रीयतावादी हुए बिना अंतर्राष्ट्रीयतावादी होना असम्भव है। राष्ट्रीयता बुराई नहीं है । बुराई है संकीर्णता स्वार्थपरता जो आधुनिक राष्ट्रों के लिए विष है ।—राष्ट्रीयता की मेरी यह धारणा है कि मेरा देश इसलिए मर सके कि मानव जाति जीवित रह सके ।'[1]

निष्कर्ष रूप में कहा जाता है कि राष्ट्रीयता ने आधुनिक युग में राष्ट्रों के उत्थान उन्नति एवं उत्कर्ष के लिए महान् कार्य किया है । इतिहास ने इसके पूर्व ऐसी अद्भुत अपूर्व शक्ति को कभी नहीं देखा जो आज युगधर्म बन गई है। यह विश्व शांति एवं कल्याण में बाधा नहीं है वरन् सहायक है।

राष्ट्रीयता की परिभाषा

राष्ट्रीयता की परिभाषा को शब्दों में बांधना कठिन है कारण राष्ट्रीयता

१ महादेव भाई देसाई–गांधी जी इन इंडियन विलिजेस—पृष्ठ १७०

एक ऐसी भावना है जिसका सम्बन्ध अन्तश्चेतना से है, जो अनिर्वचनीय होने के कारण केवल अनुभूति का विषय है। राष्ट्रीयता की कल्पना सुस्पष्ट नहीं है वह तो गतिशील और अनेक विश्वासो एवं स्थितियो का सयोग है। अनेक ब्रिटिश, फ्रेंच, जर्मन, इटालियन, रूसी, अमेरिकन, हिन्दी विद्वानो ने राष्ट्रीयता की भिन्न भिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया परन्तु वे समीचीन परिभाषाएँ प्रस्तुत करने म असमर्थ रहे। कोलियर, स्नायडर हैरोल्ड लास्की जैसे प्रकाड पडितो ने भी मान्य किया है कि राष्ट्रीयता की परिभाषा करना दुष्कर कार्य है। फिर भी राष्ट्रीयता की कल्पना स्पष्ट करने के लिए विद्वानो ने परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं।

जी० पी० गुच ने आत्म जागृति को राष्ट्रीयता कहा है। इसमे राष्ट्रीयता की कल्पना बिल्कुल स्पष्ट नही होती। यह अत्यन्त सकीर्ण एव अव्याप्ति के दोष से युक्त है।

हैंस कोहन ने जो व्याख्या की है वह एन सायक्लोपिडिआ ऑफ ब्रिटानिका ने भी स्वीकार कर उद्धृत की है—"राष्ट्रीयता वह मानसिक स्थिति है जिसमे व्यक्ति की सर्वश्रेष्ठ निष्ठा राष्ट्र के प्रति होती है। यह परिभाषा सुप्रसिद्ध है किन्तु इसम भी त्रुटियाँ हैं। यह मानसिक स्थिति एव निष्ठा के सम्बन्ध म चर्चा करती है। इससे राष्ट्रीयता के आन्तरिक भावो का स्पष्टीकरण हो जाता है किन्तु राष्ट्रीयता का इसस अधिक विस्तृत रूप होता है। मानसिक स्थिति इसका एक अश मात्र है। अत अत्यन्त प्रसिद्ध होते हुए भी राष्ट्रीयता को पूर्णतया व्यक्त करन म यह असमर्थ है।

जे० एच० हेज ने राष्ट्रीयता के सम्बन्ध म कहा है—'लोगो का वह सास्कृतिक समुदाय जो समान भाषा बोलता है (अथवा उस अत्यत निकट मे सम्बन्धित बोलिया) और जिसके पास समान ऐतिहासिक परम्पराएँ हैं। (धार्मिक, प्रादेशिक, राजनीतिक सैनिकी, आर्थिक, कलात्मक एव बौद्धिक)" हेज ने समान भाषा एव ऐतिहासिक परम्पराओ पर अधिक बल दिया है। अमेरिका के पास ऐतिहासिक परम्परा नही है और स्विजरलैण्ड म समान भाषा बोली नही जाती। इसम राष्ट्रीयता की कल्पना स्पष्ट नहीं होती।

रेम्ज म्योर ने अपनी पुस्तक नेशनेलिज्म म राष्ट्रीयता के सम्बन्ध म इन तत्वो का उल्लेख किया है—जाति की एकता सास्कृतिक एकता, शासन की एकता आर्थिक एकता राजनैतिक लक्ष्यो की सकता तथा महापुरुषो की जीवन गाथाओ व विजय गाथा की मान्यता आदि। उन्होने इन तत्वो के सम्बन्ध म स्पष्ट कर दिया है कि एक या अनेक के सयोग से राष्ट्रीयता सम्भव रेम्ज म्योर की परिभाषा इतनी व्यापक है कि उसम किसी भी

राष्ट्रीयता का आधार गुणता में ढूँढा जा सकता है। वस्तुतः उन्होंने राष्ट्रीयता की कोई सार एवं निश्चित परिभाषा नहीं दी है।

रामजे म्योर ने अपनी पुस्तक 'इण्टरनेशनल पालिटिक्स' में लिखा है कि राष्ट्रवाद जातिवाद का विकसित रूप है जिसमें एक वृहद् भूखंड में बसने वाली जाति विशेष की सामाजिक एकता का आधार भाषा और संस्कृति की सीमाओं में व्याप्त रहती है। स्पेन्सर की परिभाषा सीमित और संकीर्ण है। वर्तमान युग का राष्ट्रवाद जातिवाद का विकसित रूप नहीं कहा जा सकता। जातिवाद अथवा जातीय एकता तो उसका एक अंग मात्र हो सकता है।

ग्रेन्स ने राष्ट्रीयता की परिभाषा इस प्रकार किया है— राष्ट्रीयता मूल रूप में वह मनोवैज्ञानिक भावना है जो उन लोगों में ही उत्पन्न होती है जिनके सामान्य गौरव तथा विपत्तियाँ हों, जिनकी सामान्य परम्पराएँ हों तथा पैतृक सम्पत्तियाँ एक ही हों। ग्रेन्स की परिभाषा उन्हीं सामान्यताओं की ओर संकेत करती है जो राष्ट्रीय भावना के निर्माण में सहायक होती हैं। यह मनुष्य के अन्तःकरण की एक सर्वोत्तम भावना है जो राष्ट्र के कल्याण के लिए सदा उत्तेजित करती रहती है। वर्तमान युग में सामान्य परम्पराएँ तथा पैतृक सम्पत्तियाँ एक न होकर भी राष्ट्रीयता का विकास होता है।

राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद की विभिन्न परिभाषाओं का सूक्ष्म विवेचन करने पर उसके विकासशील तत्त्वों के सम्बन्ध में निश्चित मत स्थापित करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। प्रायः सभी विद्वानों ने राष्ट्रीयता की परिभाषा तथा उसके तत्त्वों का निरूपण अपने ढंग से किया है। इनमें राष्ट्रीयता के किसी एक अंग पर अधिक बल दिया गया है और अन्य तत्त्वों को छोड़ दिया है या उनकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

इन परिभाषाओं की अपूर्णता को देखते हुए हम अनेक तत्त्वों से समन्वित एक परिभाषा प्रस्तुत करने की धृष्टता करते हैं। हमारी अल्पमति के अनुसार निम्नलिखित रूप में राष्ट्रीयता के भाव को स्पष्ट करने का यह अल्प सा प्रयास है—

जन समूह की वह भावना जो ऐतिहासिक विशिष्ट परम्पराओं से प्रेरणा पाती है, और जो अपने समाज को एक इकाई मानकर उसके विविध अंगों को व्यवस्थित शासित स्वाधीन एवं समृद्ध बनाने की कार्यशीलता प्रदान करती है, राष्ट्रीयता है।

इसका स्पष्टीकरण यह है कि राष्ट्रीयता व्यक्तिगत भावना न होकर समष्टिगत चेतना है। अतः राष्ट्र की उन्नति के लिए जन समूह की भावना

सहायक होती है। अकेले महान् तथा असामान्य व्यक्ति की अत्यंत प्रबल भावना भी राष्ट्रोत्थान के लिए तब तक कार्यरत नहीं होती जब तक वह जन समूहों की भावना की सहायता नहीं लेती। इसीलिए जन समूह की भावना राष्ट्रीयता का एक अंग माना जाता है।

यह जन समूह की भावना ऐतिहासिक विशिष्ट परम्पराओं से प्रेरणा पाती है। संसार के अनेक देशों की अपनी विशिष्ट परम्पराएँ होती हैं। ऐतिहासिक परम्पराएँ न होने की सम्भावना नव निर्मित राष्ट्रों में कम होती हैं। अतएव इतिहास पर अधिक बल देना भी उचित नहीं है। परन्तु आपत्ति के समय वीर-पूजा, देश गौरव गान आदि परम्पराएँ पुराने देशों में तथा नव-निर्मित राष्ट्रों में अवश्य विद्यमान होंगी। इन विशिष्ट परम्पराओं से राष्ट्र को संकट में अपार सामर्थ्य तथा शांति के समय विकास के लिए प्रेरणा प्राप्त होती है।

जन समूह की भावना अपने समाज को इकाई मानकर ही उसे व्यवस्थित, स्वतन्त्र और समृद्ध बनाने में कार्यरत होती है। अस्तव्यस्त पराधीन समाज रहे तो राष्ट्रीयता का ह्रास ही होगा। स्वाधीन, व्यवस्थित समृद्ध समाज में संस्कृति के विविध अंगों का विकास होता है। साहित्य, संगीत, नृत्य, चित्रकला, शिल्पकला आदि कलाओं द्वारा संस्कृति का प्रस्फुटन होता है। सांस्कृतिक अंगों के समान ही राजनीतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, सामाजिक अंगों से भी राष्ट्र की समृद्धि अभिप्रेत है। इन विविध अंगों के द्वारा राष्ट्र को उत्कर्ष पूर्ण वैभवशाली बनाने का भाव राष्ट्रीयता के अंतर्गत है और राष्ट्र को क्षति पहुँचाने वाला कोई भी भाव राष्ट्रीयता के विरोधी है।

यह परिभाषा राष्ट्रीयता के विविध अंगों, समाज, स्वाधीनता एवं समृद्धि को समन्वित कर राष्ट्रीयता की कल्पना सुस्पष्ट करने का प्रयास करती है। अतएव इसे स्वीकार करना समीचीन होगा।

राष्ट्रीयता के तत्त्व

राष्ट्रीय एकता के निर्माण के लिए राजनीतिशास्त्र के विद्वानों ने कुछ तत्त्वों का होना आवश्यक बताया है। यद्यपि समय समय पर परिस्थितियों के अनुसार राष्ट्रीयता के स्वरूप में अंतर आता रहता है और इन तत्त्वों में से कोई एक अथवा एक से अधिक भी उस स्वरूप निर्माण के लिए अनिवार्य नहीं होते, परन्तु प्रत्येक तत्त्व की एक निजी विशेषता है जो मुख्य अथवा गौण रूप में राष्ट्रीयतत्त्व के लिए नितान्त सहायक होती है। ये तत्त्व हैं—भौगोलिक एकता, ऐतिहासिक एकता, जातीय एकता, भाषिक एकता, धार्मिक एकता तथा आर्थिक एवं राजनीतिक तत्त्व। इन तत्त्वों पर हम विचार करेंगे।

भौगोलिक एकता

राष्ट्रीयता के आधारों में से एक प्रमुख तत्त्व है देश का होना। राष्ट्र बनने के लिए किसी भी जन समूह के पास प्राकृतिक सीमाओं से युक्त क्षेत्र होना आवश्यक है। ऐसा क्षेत्र उस राष्ट्र का भौतिक आधार होता है। कोई भी जाति अपनी भूमि के बिना राष्ट्रीयत्व को प्राप्त नहीं हो सकती चाहे वह कितना ही वैभवशाली तथा सम्पन्न क्यों न हो। एक जमाने में यहूदी और आज भी पारसी अपना देश खो देने के बाद राष्ट्रीयता को भी खो बैठे हैं। बिना देश के राष्ट्र की कल्पना करना ही निरर्थक है। भ्रमणशील जातियों का अब तक राष्ट्र बना नहीं है। प्रभावी राष्ट्र बनने के लिए सुसगठित प्रदेश होना आवश्यक है कारण प्राकृतिक सीमाएँ राष्ट्रवाद के विकास में अपना विशेष महत्त्व रखती हैं। प्रदेश सुसगठित न होने के कारण पाकिस्तान की स्थिति विचित्र सी हो गई है।

जन साधारण में अपने भू खण्ड के प्रति श्रद्धा होना राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक है। भौगोलिक एकता का प्रभाव व्यक्तियों के शारीरिक गठन सामाजिक जीवन तथा चरित्र पर पड़ता है। कभी कभी भौगोलिक परिस्थिति राष्ट्रीय उत्थान में योग देती है। इग्लैड जापान अमेरिका की भौगोलिक परिस्थितियाँ उनकी प्रगति में सहायक हुई हैं।

अत सिद्ध होता है कि अपने भौगोलिक सीमाबद्ध प्रदेश से निःस्वार्थ प्रेम राष्ट्रीय चेतना का निर्माण करने में बहुत सहायक होता है।

ऐतिहासिक एकता

प्रादेशिक अखण्डता के साथ ऐतिहासिक एकता राष्ट्र के लिए आवश्यक है। प्रत्येक राष्ट्र को अपने स्वर्णिम अतीत पर गर्व होता है। अतीत का गौरव भुला देने से राष्ट्र की चेतना शक्ति को क्षति पहुँचती है। इतिहास वर्तमान युग को अपने वैभव, गौरव द्वारा प्रेरणा देता है तथा राष्ट्रीयता को बढ़ावा देने में सहायक होता है। ऐतिहासिक वीरों की शौर्य गाथाएँ तथा अतीत की समृद्धि राष्ट्र की एक असामान्य निधि है। पराधीन एवं आपत्ति के काल में इतिहास के तेजस्वी चरित्र राष्ट्र को तेजस्विता का सदेश देकर राष्ट्र में ओज गुण भर देते हैं। भारत के अतीत ने राष्ट्रीयता के विकास में बड़ा योगदान दिया है।

जातीय एकता

नसल अथवा जाति उस समुदाय को कह सकते हैं जिसके सदस्यों में परस्पर समझने की प्रवृत्ति हो। कुछ वर्षों पूर्व अधिकांश यूरोपियन राजनीति

विचारकों की यह धारणा थी कि 'जाति ही राष्ट्रीयता का निचोड है। नाजीवाद के अनुसार जाति की पवित्रता रक्त की पवित्रता है। आज किसी भी सभ्य समुदाय म शुद्ध रक्त की पवित्रता नही रही है। आज हम किसी भी देश म एक ही जाति का निवास नहीं पाते वरन् प्रत्येक राष्ट्र म भिन्न भिन्न जातियों का समावेश है। सभी राष्ट्रो म जाति मिश्रण है। इग्लड को लीजिए—वहाँ आई बरियन, रोमन और ऐंग्लो सेक्सन आदि अनेक जातियो का सम्मिश्रण है। कोई भी प्राचीन यूरोपीयन राष्ट्र जातिय शुद्धता पर अधिकार नहीं रख सकता।'[1] भारत म आर्य-जाति ने मात जाति का स्थान प्राप्त किया था। अनक विदेश से आई हुई अनेक जातियो तथा उप जातियो से बने भारतीय जनो को प्राचीन काल म भारतीयता में ढालने का काय आर्य सभ्यता ने तथा आदर्शों ने किया है। जातीय एकता राष्ट्रीयता का एक प्रमुख सूत्र है। वही जाति गौरव का अनुभव कर सकती है जो सदव राष्ट्र कल्याण एव समृद्धि के लिए योगदान देती है।

भाषा की एकता

भाषा को राष्ट्र निर्माण म एक प्रमुख साधन माना है। भाषा राष्ट्र की वाणी है। जीवित भाषा राष्ट्र के जीवन दशन को प्रकट करने म समथ होती है। किसी राष्ट्र की भाषा का नाश करने स राष्ट्र का नाश होने की सभावना बढती है। यही कारण है कि भारत म अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए अग्रेजो ने भारतीयो पर अपनी भाषा थोपने का प्रयत्न किया था। भाषा के माध्यम स राष्ट्र की सस्कृति की अभिव्यक्ति होती है। भाषा की एकता राष्ट्र निर्माण म प्रभावशाली साधन होती है। कई देशो म एक से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं परतु उनके निवासियो म प्राय राष्ट्रीयता की अनुभूति विद्यमान रहती है। स्विटजरलैंड म जमन फ्रेंच और इटालियन तीन भाषाएँ बोली जाती हैं फिर भी उनके निवासियो म राष्ट्रीयता की भावना लुप्त नही हुई। प्रत्यक देश को अपनी भाषा का गव होता है। यद्यपि आज भी बडे बडे देशो म एक स अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं परन्तु फिर भी उनकी एक सवमान्य भाषा होती है, जिसका महत्व सभी को स्वीकार करना पडता है। उदाहरणतया रूस म अनेक भाषाएँ बोली जाती है परन्तु प्रधानता रूसी भाषा को प्राप्त है। भारत म भी अनेक भाषाएँ बोली जाती है। एक युग था जब कि अखिल भारतीय चेतना की प्रवाहिका के रूप म संस्कृत भाषा

---

१ जी० पी० गूच—नेशनलिज्म पेज ६।

धर्म की एकता

धर्म ने युगयुगान्तर से जाति अथवा समाज के जीवन को प्रभावित किया है। इतिहास इसका साक्षी है कि धार्मिक एकता ने सामूहिक चेतना को जगाने का महत्त्वपूर्ण काम किया है। यूरोप के अधिकांश देशों को अभी तक धार्मिक एकता ने एक सूत्र में पिरोया है। परन्तु वैज्ञानिक चेतना का विकास एवं धार्मिक उदारता बढ़ जाने के कारण पश्चिम के अधिकांश देशों में धर्म राष्ट्र निर्माण में प्रमुख नहीं रह गया। भारत में भी राष्ट्रीय एकता के लिए धार्मिक एकता अनिवार्य नहीं मानी जाती। जितने मस्तिष्क उतनी सूझ यह भारत की धार्मिक विचार धारा का आदर्श रहा है। परन्तु मुस्लिम देशों में धर्म ने राष्ट्रीय जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है।

धर्मान्धता के कारण जातियों का इतिहास रक्तपात से भरा हुआ है। धर्म के नाम पर युद्ध खेले गए जिसका क्रूसेड्स उत्तम उदाहरण है। धर्म की कट्टरता के कारण भारत का विभाजन हो गया है। अतः इस वैज्ञानिक युग में धार्मिक उदारता को बरतते हुए भी धर्म को व्यक्तिगत जीवन में केवल स्थान मिले। और आज अनेक सभ्य देश—जैसे चीन भारत आदि धर्म की अनेकता के कारण राष्ट्रीयता पर आँच आने नहीं देते। धर्म की उदारता ही वर्तमान युग में राष्ट्रीय एकता में सहायक हो सकती है।

साधारणतया संस्कृति भाषा एवं धर्म तीनों का राष्ट्र निर्माण में सम्मिलित योगदान रहता है। वे संयुक्त रूप में राष्ट्र की आत्मा अथवा आध्यात्मिक आधार की स्थापना करते हैं।

आर्थिक राजनीतिक तत्त्व

कुछ विद्वान सामूहिक-चेतना के जागरण में आर्थिक और राजनीतिक

---

१ डा० भगीरथ मिश्र—हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य धारा (डा० लक्ष्मीनारायण दुबे) आमुख पृष्ठ क० प्रथम सं० सन् १९६७।

२ हैरोल्ड जे लास्की—ए ग्रामर ऑफ पालिटिक्स पेज २१९।

कारणों का हाथ मानते हैं। वास्तव में जन साधारण के आर्थिक हितों के आधार पर आर्थिक संधियाँ हो सकती हैं, किन्तु राष्ट्र नहीं बन सकता। राष्ट्र का भावात्मक पक्ष आर्थिक पक्ष की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है।

कुछ विद्वान तो राजनैतिक एकता को ही राष्ट्र का नाम देते हैं। किन्तु आर्थिक पक्ष के सम्बन्ध में जो कहा है कि राष्ट्र का भावात्मक पक्ष अधिक महत्वपूर्ण रहता है यह राजनैतिक धारणा के विषय में भी सत्य है। राष्ट्रीय चेतना और एकता के लिए किसी एक सरकार के अधीन मिलनेवाली राजनीतिक एकता महत्वपूर्ण है, प्रत्युत वह केवल सहायक कार्य करता है।

संक्षेप में किसी जन समुदाय में राष्ट्रीयता की भावना का निर्माण करने में अनेक तत्त्व सहायक हो सकते हैं—यथा समान वंश, भाषा रूढ़ि परम्परा, इतिहास धर्म देश संस्कृति, आर्थिक राजनीतिक आकांक्षा आदि। परन्तु इन तत्त्वों में राष्ट्रीयता के अस्तित्व बनाए रखने में कोई भी एक तत्त्व अनिवार्य माना नहीं जा सकता। जिसके अभाव में राष्ट्रीयता का निर्माण हो नहीं हो सकेगा। इनमें से कुछ तत्त्वों के अभाव में भी राष्ट्रीयता का निर्माण होता है। स्विटजरलैण्ड में समान भाषा नहीं है, अमेरिका में समान वंश नहीं है, भारत में समान धर्म नहीं है तो भी इन देशों में राष्ट्रीयता विद्यमान है। अन्त में यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीयता के अनेक तत्त्व हैं जिनमें से अनेक के संयोग से राष्ट्रीयता का विकास होता है।

राष्ट्रीयता का विकास

वर्तमान युग की प्रबल गतिशील और सर्वव्यापी राष्ट्रीय चेतना को प्राचीन-युग से उद्भूत मानने का मोह अनेक सँवार नहीं सके। राष्ट्रीयता की भावना की जड़ें भले ही वंश, जाति नगर, सामन्तशाही, चर्च, धार्मिक समूह के प्रति निष्ठा में खोजी जायें तो भी 'राष्ट्रीयता की कल्पना प्राचीन न होकर अर्वाचीन है। राष्ट्रवादी भावना को १८ वीं शताब्दी से पुराना नहीं माना जा सकता। वह फ्रेंच राज्यक्रांति की उपज है। फ्रांस की राज्य-क्रांति ने राष्ट्र की समस्त शक्ति कार्यशील करने में सफलता पाई और स्वाधीनता समता और विश्वबंधुता का उद्घोष कर राष्ट्रीयता को एक ठोस धरातल पर खड़ा कर दिया। विश्व इतिहास ने प्रथमतः ही सामन्तशाही एवं राजा के विरोध में राष्ट्रीय चेतना को प्रतिकार करते देखा। विश्व के इतिहास ने फ्रांस राष्ट्र की यह अपूर्व अद्भुत एकता प्रथम बार देखी थी।

इस राज्यक्रान्ति ने राजनीतिक और धार्मिक संस्थाओं की स्थापना राष्ट्रीयता की नींव पर की और राष्ट्रीय-कल्याण का लक्ष्य रखा। राष्ट्रीयता की भावना को प्रबलता से समर्थन करने वाली बातों को प्रधानता दी गई।

राष्ट्रध्वज राष्ट्रीय संगीत उत्सव इत्यादि को प्रथम बार अपनाया गया तथा शिक्षा पद्धति में राष्ट्रीय भावना के प्रसार का समावेश कर लिया गया। राष्ट्राभिमान के प्रसार के हेतु और सभाओं का निर्माण हुआ। फ्रांस (सन् १७८९) क्रांति ने राष्ट्रीयता की आवाज़ों एवं उग्र राष्ट्रवादी रूप लिया। इसके पूर्व पश्चिम में मकदूनिया और यूनानियों में राष्ट्रीयता की कुछ भाव धारायें प्राप्त होती थीं किन्तु वे आधुनिक राष्ट्रवाद से सर्वथा भिन्न थीं। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में यूरोपियन राष्ट्र राष्ट्रीयता के मूल्य के लिए युद्ध नहीं करते थे। फ्रांस राज्य क्रांति ने ही राष्ट्रीयता की नींव डाली है। और जो राष्ट्रीयता १९ वीं शताब्दी में साकार हो रही थी उस अर्वाचीन राष्ट्रवाद के रूसो जनक थे।[1] रूसो का सामाजिक कान्ट्रैक्ट ग्रंथ १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में राष्ट्रीय आन्दोलन की एक शक्ति बन गया था।

फ्रांस राज्यक्रांति से ही पराक्रमी और महत्त्वाकांक्षी सम्राट नेपोलियन का उदय हुआ जिसकी राज्यलिप्सा यूरोप पर आक्रमण कर शान्त हुई। किन्तु यूरोप ने नेपोलियन के आक्रमण का डटकर सामना किया। अनेक राष्ट्र नेपोलियन का प्रतिकार करने में उद्यत हुए। नेपोलियन के आक्रमण से यूरोप का एक लाभ हुआ है वह है राष्ट्रीय भावना का प्रसार। स्वदेश की रक्षा के लिए यूरोपियन राष्ट्रों में राष्ट्रीयता की प्रबल लहर व्याप्त हो गई। इसी समय दक्षिण अमरीका में भी राष्ट्रीयता का प्रभात काल हो रहा था।

फ्रांस राज्यक्रांति से प्रेरणा लेकर इटली हंगरी पोलैंड ग्रीस रूमानिया बलोरिया, फिनलैंड, लिथुआनिया एस्टोनिया में राष्ट्रीय आन्दोलनों का प्रारम्भ हुआ। १९ वीं शताब्दी के अन्त तक अनेक राष्ट्र स्वाधीन बन गये और प्रथम महायुद्ध के बाद स्वतन्त्र हो गये। इस राष्ट्रीयता की लहर को मध्य तथा पूर्व यूरोप में पहुँचाने में और एक तत्त्व सहायक रहा है। वह था पूँजीवाद। पूँजीवाद ने भी राष्ट्रीय चेतना को अपने लाभ के लिए उत्तेजना दी।

जर्मनी तो प्रखर राष्ट्रवादी राष्ट्र माना जाता है। प्रिन्स विस्मार्क के अविरत परिश्रम के कारण जर्मनी में राष्ट्रीय एकता को बल मिला। जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक काँट ने जर्मन राष्ट्रीयता को एक प्रकार की विशेषता प्रदान की। जर्मनी के उग्र राष्ट्रवाद ने सांस्कृतिक राष्ट्र के सिद्धान्त में भी योग दिया।

इटली की भी अपनी राष्ट्रीयता की विशेषता रही है। इसका श्रेय

---

१ ई० एच० कार—नेशनलिज्म अण्ड आफ्टर पेज २।

मजिना का है। मजिनी ने "यंग इटली" संघटना स्थापित कर आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का समर्थन किया। मजनी ने कहा है कि वास्तव में अपना देश जो ईश्वर से प्रदत्त है अपना घर है जिसमें रहने वाले सदस्य परस्पर प्रेम तथा सहानुभूति के कारण दूसरों की अपेक्षा शीघ्रता से एक दूसरे को समझने-बूझने में सफल होते हैं।[1]

कुछ विद्वान् इंग्लैण्ड को तो आधुनिक राष्ट्रीयता का मूलस्थान मानते है। हम फ्रेंच राज्य क्रांति को ही आधुनिक राष्ट्रीयता का जनक मानते है। इंग्लैंड को राष्ट्रीयता का मूल स्थान मानना समीचीन नहीं लगता। इंग्लैंड के राष्ट्रवाद का स्वरूप निर्धारित करने का १७ वीं शताब्दी में मिल्टन हॉब्ज, लाक और १८ वीं शताब्दी में बालिंग, बर्क, ब्लैकस्टोन, बर्क आदि ने प्रयास किया था।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एशिया में राष्ट्रीयता के आंदोलन प्रारम्भ हुए। इसका कारण था। यूरोपीय साम्राज्यवाद ने एशिया पर आक्रमण कर शोषण करना। वस्तुतः एशिया मे संस्कृति साहित्य आदि की समृद्ध परम्परायें थी किन्तु सामन्तयुग के प्रभाव के कारण राष्ट्रीय भावना का उदय नहीं हुआ था। साम्राज्यवाद ने इस प्रदेश में यातायात के साधन टेलिफोन, रेलगाड़ियां पोस्ट आधुनिक शिक्षा आदि का प्रसार किया, जिनसे राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ।[2]

प्रथम महायुद्ध के बाद एशिया के चीन तुर्किस्तान, ईरान अफगानिस्तान देश स्वतंत्र हुये। द्वितीय महायुद्ध के बाद भारत आदि अनेक देश भी स्वाधीन हो गये। आज राष्ट्रीयता की लहर विशेष रूप से अफ्रीका में व्याप्त है।

संक्षेप में अठारहवीं शताब्दी में राष्ट्रीयता का उदय हुआ उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में उसका विकास तथा प्रसार हुआ और बीसवीं शताब्दी में एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रों में वह युगधर्म बनी जिसके सहारे वे अपनी उन्नति और उत्कर्ष कर रहे है। अब उल्लेखनीय बात यह है कि वर्तमान युग में साम्यवादी चीन रूस आदि विश्वैक्य का प्रचार करने वाले कम्युनिस्ट राष्ट्र भी कट्टर राष्ट्रीयतावादी बनते जा रहे हैं।

भारतीय राष्ट्रीयता के विकास का विवरण अन्य प्रकरणों में किया है, अतएव फिर से उसे यहाँ देना अवांछनीय होगा।

---

१ उद्धृत डा० विद्यानाथ गुप्त हिन्दी-कविता में राष्ट्रीय भावना, पृ० ११।
२ श्री य० कोल्हटकर–राष्ट्रवाद, पृ० ५७।

राष्ट्रवाद के प्रकार

राष्ट्रीयता के विकास के साथ ही राष्ट्र के विशेष भौगोलिक आर्थिक और राजनीतिक परिस्थिति के अनुसार राष्ट्रवाद का स्वरूप बनता है। वह स्वरूप एक समान न होकर विभिन्न होता है। इसका विवरण नीचे दिया है—

आक्रामक राष्ट्रवाद

आक्रामक राष्ट्रवाद में अपने देश की विशेषताओं की ओर ध्यान आकर्षित नहीं किया जाता बल्कि अपने देश की भाषा संस्कृति साहित्य शक्ति आदि अन्य राष्ट्रों में श्रेष्ठ है हमारा देश ही सर्वश्रेष्ठ है का प्रचार किया जाता है। अपनी श्रेष्ठता को प्रस्थापित करने के लिए अन्य राष्ट्रों की ओर घृणा का दृष्टिकोण रखा जाता है और सैनिक शक्ति से दुर्बल राष्ट्रों को विजित कर अपनी साम्राज्यवाद की लालसा पूर्ण की जाती है। इस आक्रामक राष्ट्रवाद के उदाहरण थे जर्मनी जापान आदि राष्ट्र।

स्वयंतृप्त राष्ट्रवाद

इस राष्ट्रवाद में भौतिक सांस्कृतिक उन्नति को प्राधान्य मिलता है। अपनी स्वाधीनता की रक्षा करते हुए चतुर्दिक उन्नति इन राष्ट्रों का लक्ष्य रहता है। स्विट्जरलैण्ड अफगानिस्तान भारत आदि इस राष्ट्रवाद के अंतर्गत आते हैं। भारत के सम्बन्ध में यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि भारतीय राष्ट्रवाद मानवता पर आधारित है। उसका अन्तर्राष्ट्रीयता से विरोध नहीं है। भारतीय राष्ट्रवाद को मानवतावादी राष्ट्रवाद से सम्बोधित करेंगे तो भी अत्युक्ति नहीं होगी।

उदारमतवादी राष्ट्रवाद

इस राष्ट्रवाद का स्वरूप बाह्यतः शान्तिवादी तथा दुर्बल राष्ट्रों की स्वाधीनता के लिए सहायता करने वाला ऐसा लगता है किन्तु मूलतः वह आक्रामक है और दुर्बल राष्ट्रों की स्वाधीनता का अपहरण करने वाला है। अमरिका ब्रिटेन फ्रांस आदि आर्थिक उपायों से तथा शोषण से अन्य राष्ट्रों के स्वातंत्र्य का अपहरण कर सकते हैं, इसके लिए सैनिकी कारवाई की आवश्यकता नहीं होती।

साम्यवादी राष्ट्रवाद

इस राष्ट्रवाद का लक्ष्य होता है कि सब राष्ट्रों के साथ समानता से व्यवहार करें दुर्बल राष्ट्रों की स्वाधीनता प्राप्ति अथवा आर्थिक उन्नति के लिये स्वाधीनता से सहायता करें और सांस्कृतिक उन्नति के लिए प्रयत्न कर राष्ट्रोत्थान में राष्ट्रीयता की सहायता लें। सोविएट रूस का राष्ट्रवाद इस राष्ट्रवाद का प्रमुख उदाहरण है।

स्वाधीनतावादी राष्ट्रवाद

विदेशी सत्ता के कारण जो पराधीन, दुर्बल गौरवहीन बन गए हैं, वे राष्ट्र अपने आत्म सम्मान, गौरव तथा उन्नति के लिये दासता से मुक्ति चाहते हैं और विदेशी सत्ता समाप्त कर स्वतंत्र होने की अभिलाषा रखते हैं उनमें इस राष्ट्रवाद का स्वरूप देखने को मिलता है।

डा० एच० हेज के अनुसार 'मानवतावादी राष्ट्रीयता, धार्मिक जकोबियन राष्ट्रीयता, बर्क की प्रादेशिक राष्ट्रीयता, इंग्लैंड की उदारतावादी राष्ट्रीयता एकतापूर्ण राष्ट्रीयता" आदि भी राष्ट्रवाद के प्रकार हैं। इन राष्ट्रवादों में व्यापकता का अभाव है तथा इनके उदाहरण भी बहुत कम प्राप्त होते हैं। वे प्रातिनिधिक रूप में भी प्रस्तुत नहीं हो सकते अतः राष्ट्रवाद के प्रकार के रूप में इनको स्वीकार करना उचित नहीं लगता।

भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय भावना का विकास

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता के व्यापक क्षेत्र में विभिन्न तत्त्व आते हैं जो कि राष्ट्रीय कविता के विषय बन जाते हैं। डा० सुधीन्द्र ने लिखा है कि जिस कविता में समग्र राष्ट्र की चेतना प्रस्फुट हो वह राष्ट्रीय कविता है—इससे स्पष्ट है कि राष्ट्र के रूप पर ही राष्ट्रीय कविता का स्वरूप अवलम्बित है।[1] साहित्य जातीय जीवन के उत्थान और पतन की प्रतिच्छाया है और कविता में राष्ट्र की आत्मा ऊर्ध्वमुखी होती है। भारतीय साहित्य भी इससे अपवाद नहीं है। प्राचीन काल से ही भारत में राष्ट्रीयता की भावना किसी न किसी रूप में प्राप्त होती है। डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने तो यहां तक लिखा है कि जब राष्ट्रीय विकास की अवस्थाओं का यूरोप में अरुणोदय भी नहीं हुआ था तब पुष्ट राष्ट्रवाद का संदेश भारत के सार्वजनिक जीवन में एक सजीव बल बन चुका था।[2] इस प्रवृत्ति को तीन कालखंडों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) पुरातन युग।
(२) मध्य युग।
(३) आधुनिक युग।

यहाँ हम पुरातन काल एवं मध्ययुगीन काल की राष्ट्रीय कविता के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

---

१ डा० सुधीन्द्र–हिंदी कविता में युगान्तर पृ० १६७।
२ डा० राधाकुमुद मुकर्जी–हिंदू संस्कृति में राष्ट्रवाद (सन् १९५७)।

पुरातन युग के साहित्य में राष्ट्रीय भावना

पुरातन काल में राष्ट्रीय चेतना संस्कृत साहित्य के द्वारा अभिव्यक्त हुई है। उस समय भारतीय संस्कृति की एकता तथा अखिल भारतीय विद्वत्ता की भाषा संस्कृत मानी जाती थी।[1] हिमालय से कन्याकुमारी पर्यन्त भारत वर्ष का अखण्ड राष्ट्र है इस भावना का जन समुदाय में प्रसार करने का श्रेय संस्कृत भाषा को है। भारतीयों के परम पवित्र ग्रंथ वेदों में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। ऋग्वेद में अग्नि इन्द्र मरुत का ही केवल गायन नहीं किया गया बल्कि इसके साथ तत्कालीन समाज के चित्र भी उपस्थित किए गए हैं। वैदिककालीन समाज के राष्ट्रीय नेता थे इन्द्र। इन्द्र ने आर्य जाति के बलशाली विरोधक वृत्र बल और अहि आदि असुरों का संहार किया फलस्वरूप असुरों की पीड़ा से बची हुई आर्य जाति ने इन्द्र का ऋण माना और राष्ट्र पुरुष के रूप में इन्द्र की प्रशस्ति का गान किया। सामान्यतः सभी देवताओं के सूक्तों में शत्रुओं एवं विघ्नों के विनाश की कामना की है। ऋग्वेद में वीर पूजा की भावना मिलती है। अथर्ववेद के बारहवें काण्ड में सूक्तकारों ने पूर्वजों के पराक्रम का वर्णन किया है—

जहाँ हमारे पूर्वजों ने अद्भुत कार्य किए जहाँ देवताओं ने असुरों का विध्वंस किया वही गौ पशु अश्व पक्षियों की माता हमारी जन्मभूमि है जो हमें ऐश्वर्य और तेज प्रदान करे। अश्विनी विष्णु महेन्द्रों के विक्रमों का संबंध इस भूमि से है। हे शत्रुमर्दिनी भूमाता जो हमारा द्वेष करते हैं सेना लेकर हम पर आक्रमण करते हैं हमारा अमंगलता का चिंतन करते हैं इनको तू नष्ट कर दे। इसी भूमि पर हमारे सामर्थ्य सपन्न ऋषियों ने यज्ञ-तपस्या और दीर्घसत्र के अंत में मंत्रोच्चार किए।[2]

---

१ द० के० केलर—संस्कृति संगम पृ० ३०१।

२ यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां
देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं
वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥५॥
यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।
इन्द्रो यां चक्र आत्मने नमित्रां शचीपतिः ॥१०॥
यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्यात्।
योऽभिदासान्मनसा यो वधेन
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥१४॥
यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥३९॥

अथव वेदो मे विजय-वणनो के साथ मातृ भूमि की वदना भी मिलती है। भारत भूमि के दिव्य प्राकृतिक स्वग से स्पर्धा करन वाले सौंदय को देखकर सूक्तकार अत्यत प्रभावित हो गए। सुजला सुफला भारतवष के प्रति सूक्तकार अपने भाव अथववेद के बारहवें काण्ड मे व्यक्त करता है—

"जिस की चार दिशाएँ हैं जहाँ किसान खेती करते हैं अनेक प्रकार के पदार्थों की पूर्ति करती हुई जो प्राणी मात्रा का पोषण करती है वह हमारी मातृ भूमि हम गोधन और अन्न से सम्पन्न करे। नानाविध वनस्पतियाँ धारण करने वाली भू माता प्रसन्न होकर हमारा पोषण करे। सागर तथा सागर सम विशाल नद और बडी नदियो के द्वारा सुजला हमारी भूमि हमारा पोषण करे। विश्व का पोषण करन वाली सपत्ति का आगार सुवण हृदया विश्वा धार अग्नि इन्द्रादि देवताओ का श्रेष्ठ स्थान जो यह भूमाता है वह हम सपन्न करे। कृषि द्वारा सव प्रकार की सपत्ति निर्माण करने वाली, सस्य श्यामला पज य पत्नी भूमाता को हमारा प्रणाम। जो अपनी हृदय-गुफाओ मे नाना विध रत्न सुवण एव वभव धारण करती है वह भू माता हमे विभव-सम्पन्न बनाए।[१]

---

१ यस्याश्चतस्र प्रदिश पथिव्या यस्यामन्न
कृष्टय सम्बभूवु । या बिभाति बहुधा
प्राणदेजत् सा नो भूमि गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४॥
नानावीया ओषधीर्या बिभर्ति पथिवी न
प्रथता राध्यताम ॥
यस्या समुद्र उत सिन्धुरा पो यस्यामन्न
कृष्टय सम्बभूवु ।
यस्यामिद जिन्वति प्राणदेजत सा नो
भूमि पूवपेये दधातु ॥३॥
विश्व भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा
जगतो निवेशनी ।
वश्वानर बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्र ऋषभा
द्रविणे नो दधातु ॥६॥
यस्यामन्न व्रीहियवौ यस्या इमा पचकृष्टय ।
भूम्य पज य पत्न नमोऽस्तु वषमेद से ॥४२॥
निधि बिभ्रती बहुधा गहावसु मणि
हिरण्य पथिवी ददातु मे
वसूनि नो वसुदारास माना देवी

भू माता की प्रशस्ति करने वाला सूक्तकार स्वय को पृथ्वी पुत्र कहने म गव का अनुभव करता है—

माता भूमि पुत्रोऽह पृथिव्या ।[1]

आज की भारत माता की कल्पना इसी पृथ्वी सूक्त से ली है। इस पृथ्वी माता से रोग भय क्षय से मुक्ति मागते हुए दीर्घायु की कामना अभिव्यक्त की है और फिर पृथ्वी का प्रशस्ति गान किया है।

यजुर्वेद के छत्तीसवें अध्याय म अनेक मत्र इस विषय म उपलब्ध हैं जिनका सदेश मनुष्य मात्र म भ्रात भाव स्थापित करना है।

मित्रस्याह चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्ष ।[2]

अर्थात मैं सब प्राणियो को मित्र दृष्टि से देखूं। मानव मात्र म समदर्शिता की भावना भारतीय सस्कृति म व्यापक और तीव्र है कि वह वसुधा भर के प्राणियो म एक सूत्रता तथा आत्मीयता स्थापित करती चली जाती है।

प्राचीन काल से ही यह देश आर्यावत और जाति आय कहलाती चली आई है। आर्यो का अपना एक सामाजिक जीवन था जिसम परस्पर सहयोग तथा सहानुभूति की भावना रहती थी। वेदो म कई स्थानो पर सामूहिक जीवन व्यतीत करने का सदेश मिलता है जो राष्टाय चेतना की एकता का प्रमाण है—

'सग-सग चलो सग म बोलो तुम्हारे मन एक हो जसे देवता पहले से करते आए हैं, उसी प्रकार बराबर भाग करो।'[3] आय केवल बाह्य एकरूपता तक की समता पर बल नहा देते थे वरन मन और हृदय की एक सूत्रता भी इसके लिए अनिवाय समझते थ। उपयुक्त सूक्त के अगले मत्रो म ये भाव सुन्दर रूप म प्रकट किए गए है—

तुम लोगो के सकल्प समान हो समस्त हृदय एक हो और अन्त करण समतुल्य हो जिसस तुम म परम एकत्व हो जाए हो।[4]

---

१ अथववेद—काण्ड १२ सूक्त १।१२

२ यजुर्वेद ३६ अध्याय मन्त्र १८

३ सगच्छध्व सवदध्व सवो मनासि जानताम ।
देवा भाग यथा पूर्वे सजानाना उपासते ।
ऋग्वेद म० १० सू० १९१ म० २।

४ समानो व आकूति समाना हृदयानि व ।
समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति ॥
—ऋग्वेद म० १० सू० १९१ म० ४।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रभक्ति से युक्त ऐसा उज्ज्वल स्वरूप वेद संहिता में व्यक्त हुआ है। यह स्वरूप विशेष रूप से अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त जो शौनक संहिता के १२ वें काण्ड में प्रथम सूक्त है। प्रथम सूक्त में ६३ मंत्र हैं और हरएक मंत्र राष्ट्रभक्ति का उज्ज्वल गीत है। वेदों में वीरपूजा भूमि रक्षा के गीतों के साथ-साथ सम्पन्न जीवन की कामना की प्रार्थना मिलती है।[1] जाय निर्धनता तथा आर्थिक आपत्ति से बचने के लिए पशुधन की वृद्धि एवं व्यापार द्वारा जीवन को सुखमय बनाने की इच्छा प्रकट करते हैं—

हे मित्रो! आओ इकट्ठे होकर हम लोग धन देने वाला व्यापार करें और गौओं के बड़े बड़े व्रज बनायें॥[2]

संक्षेप में वेदों में राष्ट्रीयता की भावना मातृभूमि का स्तवन इंद्रादि देवताओं का कीर्तिगान और सम्पन्न एवं सामूहिक जीवन की अभिलाषा करने तक सीमित है।

उपनिषद् काल तथा ब्राह्मण काल में भी राष्ट्रीय चेतना की झलक मिलती है। हमारी धार्मिक भावना राष्ट्रीय जीवन को सुदृढ़ बनाने के लिए सदा ही विकासोन्मुख रही है। 'चरैवेति चरैवेति' अर्थात् आगे बढ़ो ही इस का मूल मंत्र था। प्रगतिशीलता की यह तीव्र आकांक्षा निरन्तर आजतक अक्षुण्ण रूप में भारतीय संस्कृति का प्राण रहा है। उपनिषद् का क्रांतिकारी संदेश जातीय जीवन के उत्थान के लिए किसी भी युग में विस्मृत नहीं हो सकता—

उठो जागो और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सदा संघर्षशील रहो।[3] इतना ही नहीं वे संगठित जीवन व्यतीत करने के लिए एक ही रूप में रक्षण पोषण और शिक्षण चाहते थे। जातीय एकता का सन्देश देती हुई उपनिषद का यह मार्मिक ध्वनि कितना प्रभावोत्पादक है—

हम दोनों का साथ-साथ ही रक्षण पोषण हो संगठित शक्ति और विद्या तेजस्वी और महान हो तथा परस्पर विरोध में शक्ति क्षय न करें।[4]

---

[1] इनाविय तृणवामा मलाया प या माता शृणुत व्रज गौ।
यथा मर्तविनिग्रि जिगाय यथा वणिग्वद् कुराय पुरीयम॥
ऋग्वेद म० ५ सूक्त ४५ म० ५।

[2] अथर्ववेद काण्ड १ सूक्त १५

[3] उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
—कठ उपनिषद्—अध्याय प्रथम वल्ली ३।१४।

[4] ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।
—कठ उपनिषद्—दूसरा अध्याय वल्ली ६।१९।

हे गंगा यमुना गोदावरी सरस्वती, नर्मदा तथा कावेरी, तुम मेरे इस जल में प्रविष्ट हो जाओ।[1] इन नदियों का नाम उच्चारण उत्तर दक्षिण की सीमाओं का अतिक्रमण करता हुआ सम्पूर्ण भूमिभाग की एकता को प्रदर्शित करता है।

अपनी भूमि के प्रति प्रेम प्रकट करना केवल वैदिक साहित्य की ही विशेषता नहीं वरन् इसके बाद के संस्कृत साहित्य में भी यह भावना अनेक स्थानों पर व्यक्त की गई है। पुराणों में अपनी भूमि को सर्वश्रेष्ठ तथा देवों से निर्मित मानते हुए इसे देवभूमि स्वर्गभूमि इत्यादि कई नामों से सम्बोधित किया गया है। इसकी रमणीयता से मुग्ध होकर देवता भी इस भूमि पर आने के लिए तरसते हैं और अपना सौभाग्य समझते हैं—

जो लोग भारत भूमि में जन्म ग्रहण करते हैं वे धन्य हैं। देवता लोग भी उनका कीर्तिगान करते हैं क्योंकि भारतवर्ष ही ऐसी भूमि है जहाँ जन्म ग्रहण करके ही स्वर्ग या अपवर्ग प्राप्त किया जाता है। देवताओं को भी अपवर्ग प्राप्त करने के लिए इस भारत में ही आना पड़ेगा। अतएव भारतवासी स्वर्ग के देवताओं से भी अधिक भाग्यशाली हैं। केवल हमारा ही नहीं अन्य देश अपने देश को मातृभूमि अथवा पुण्य भूमि कहते हैं किन्तु संस्कृत साहित्य में भारत भूमि को मातृभूमि तथा पुण्य भूमि के साथ ही कर्मभूमि कहा है—

अखिल विश्व में भारत की एक विशेषता है। वह है—भारत वर्ष कर्म भूमि है और अन्य देश भोग भूमियाँ हैं।[2]

इस कर्म भूमि भारत की ओर कुछ विशेषताएं हैं—उनमें प्रमुख हैं—यज्ञ और तीर्थ यात्रा जिन्होंने राष्ट्रीय एकता में योग दिया है।

भारतीय लोग स्वभाव से ही राजनैतिक एकता तथा स्वतन्त्रता का उपभोग करने की प्रवृत्ति रखते थे। राजनैतिक एकता की स्थापना के लिये

---

१ गंगा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदा सिंधु कावेरी जलेऽस्मिन सन्निधिं कुरु॥

आह्निक सूत्रावलि स्नानप्रसंग १०६।

२ गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

—विष्णु पुराण अ० २ ३ श्लोक २५।

३ अत्रापि भारतं वर्षं जम्बूद्वीपे विशेषतः।
यतो हि कर्म भू रेषा अतोऽन्या भोग भूमयः॥

—उद्धृत—साहित्याचार्य पावगीशास्त्री हरदास वदातीत राष्ट्र दर्शन पृ० २१—२२।

राजाओं में परस्पर युद्ध भी हुआ करते थे। वेदों में दाशराज्ञ युद्ध का वर्णन उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा सकता है। अश्वमेध यज्ञ भी इसी उद्देश्य की पूर्ति है। चक्रवर्ती बनने की अभिलाषा बड़े-बड़े राजाओं में उद्वेलित रहती थी और समस्त देश को एक शासन के आधीन देखने की भावना से ही अन्य राजाओं को पराजित करने के लिए यज्ञ का घोड़ा छोड़ा जाता था। जब आर्यों के महान वीर राजा रामचन्द्र ने लंका पर विजय पायी और हिमालय से कुमारी अन्तरीप तक समस्त पृथ्वी पर अपना आधिपत्य जमा लिया तब फिर सब राज्य एक चक्रवर्ती आर्य राज्य में शामिल हो गए। जब अश्वमेध यज्ञ के उपरान्त राम ने समस्त भारत की परिक्रमा करके अयोध्या में प्रवेश किया वह राष्ट्रीय दिन था क्योंकि हनुमान, सुग्रीव, विभीषण आदि मध्य भारत और सुदूर दक्षिण से आये थे हिन्दू राज्य के झण्डे के नीचे आये और सबने मिलकर एक राष्ट्रीयता को जन्म दिया।[1] इन चक्रवर्ती राजाओं के अश्वमेध एवं राजसूय यज्ञ का वर्णन संस्कृत साहित्य में पाया जाता है जिसका सम्बन्ध राष्ट्रीय चेतना से है। यहाँ हमें ध्यान में रखना चाहिए कि भारत की प्राकृतिक सीमा के बाहर जाकर अन्य देशों पर आक्रमण करने का प्रयत्न यहाँ के चक्रवर्ती राजाओं ने भी नहीं किया। अश्वमेध यज्ञ के कारण एक सम्राट के आधिपत्य में सारा देश आ जाता था अतः यही कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में चक्रवर्ती राजा का आदर्श रखा है।

सांस्कृतिक एकता के सम्बन्ध में राष्ट्रीय एकता के प्रतीक तीर्थस्थान भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। समाज के समस्त वर्ग इन तीर्थस्थानों के प्रति श्रद्धा रखते थे और उनके दर्शन की उन नगरियों—जिनको तीर्थस्थान माना जाता था आदर से एवं धार्मिक भाव से नामोच्चरण करते थे।

अयोध्या मथुरा माया काशी काची अवन्तिका
पुरी द्वारिकावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका।

इतना ही नहीं तो सुदूर ग्राम स्थानों पर स्थापित तीर्थस्थानों का पुण्य स्नान माँ की यात्राओं को लाघन हुए करते थे। इन तीर्थस्थानों का राष्ट्रीय चरित्र पर बड़ा प्रभाव पड़ता था। इसमें भारत के करोड़ों अनपढ़ लोगों के मन आप से आप संकुचित प्रान्तीय या स्थानीय दृष्टिकोण से सीमा बन्धनों से मुक्त होता है।[2] देश के सन्तों और वीरों ने देश को आम संस्कृति और परम्परा को लेकर एक राष्ट्रीय संगठन इन तीर्थ यात्राओं द्वारा करने का प्रयत्न किया।

---

१ वीर सावरकर— हिन्दुत्व पृ० १०।

२ डा० राधाकुमुद मुकर्जी — हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद हि० सं० पृ० ४३

यह राष्ट्रीयता आज की राष्ट्रीयता से भिन्न थी राजनीतिक दृष्टि से यद्यपि यह निर्बल थी पर सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से यह सशक्त थी। तीर्थयात्राएं भी भारत की चार दिशाओं में मठ स्थापित करना भारतीय एकता की भावना को उत्तेजना देती। इस प्रकार तीर्थयात्रा राष्ट्रीय एकता में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। तात्पर्य जितना देश प्रेम का भव्य वर्णन इस देश के संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है उतना विश्व के उस युग के किसी साहित्य में मिलना दुर्लभ है। कारण वैदिक काल से लेकर मध्ययुग तक के संस्कृत साहित्य में मातृभूमि वन्दना वीर पूजा धार्मिक तथा सांस्कृतिक एकता आदि का वर्णन मिलता है। अर्थात् वर्तमान काल की राष्ट्रीयता की तुलना में इतना कह सकते हैं कि संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना को अपने व्यापक रूप में प्रस्फुटित होने का अवसर नहीं मिल सका। तो भी संस्कृत साहित्य का राष्ट्रीय एकता में योगदान कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

मध्ययुगीन साहित्य मे राष्ट्रीयता

पुरातन काल के पश्चात् हम मध्ययुगीन राष्ट्रीयता की जो साहित्य में अभिव्यक्ति मिलती है उस पर विचार करेंगे। हिन्दी और मराठी की प्राचीन कविताओं में राष्ट्रीयता का स्वर सुनाई देता है।

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का बहता हुआ स्रोत आदिकाल से मिलता है। हिन्दी साहित्य का वीरगाथा काल हमारे देश के इतिहास मे घोर राजनीतिक अशांति संघर्ष एवं विप्लव का समय था। सातवीं शताब्दी में सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात भारत मे हिन्दू राज्य की केंद्रभूत सत्ता का ह्रास होने लगा था। संपूर्ण उत्तरी भारत छोटे छोटे कई राज्यो में विभक्त हो गया था। ये छोटे राजा पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष के कारण आपस मे लड कर अपनी शक्तियों को नष्ट कर रहे थे। हिन्दू राजपूत राजा विदेशी आक्रमणों का सामना करने के लिये अलग अलग प्रयत्न कर रहे थे। किन्तु पारस्परिक भेद भाव के कारण सामूहिक रूप से विदेशी आक्रमणकारियों से लोहा लेने को तैयार न थे। उनका ध्येय तो लोक कल्याणार्थ क्षत्रिय जाति में साहस तथा वीरता का संचार कर उन्हें सद्धर्म एवं सन्मार्ग पर चलना था।"[1]

'पृथ्वीराजरासो' 'हमीर रासो' + 'बीसलदेव रासो' आल्हाखंड मे व्यापक एवं विशुद्ध राष्ट्रीय भावना को उन मे स्थान नहीं मिल सका।

१ डा० उदयनारायण तिवारी—वीर काव्य (प्रथम संस्करण) पृ० ३९।

वीरगाथा काल की राष्ट्रीय भावना पूर्णतया जातिगत या सामूहिक न होकर व्यक्तिगत अथवा साम्प्रदायिक अधिक है। उसमें आदर्श एवं व्यापक राष्ट्रीय भावना का अभाव है।[1] इस काल के चारण कवियों ने अपनी ओजस्विनी कविताओं द्वारा अपने आश्रयदाता राजपूत वीरों तथा जनता के हृदय में उत्साह का संचार करते हुये उन्हें विदेशी आक्रमणकारियों से युद्ध करने के लिये सन्नद्ध बनाने का प्रयास अवश्य किया किन्तु फिर भी राष्ट्रीय भावनाओं को उनकी रचनाओं में स्थान न मिल सका। इस काल के कवियों का उद्देश्य अपने आश्रयदाताओं का यशोगान करना था। यशोगान के माध्यम से राष्ट्रीय उत्थान अथवा सारे देश के गौरव की रक्षा का प्रयत्न उन्होंने नहीं किया। उनकी कविता में 'जिसका खाना उसका गाना' वाली प्रवृत्ति का प्राधान्य रहा है। देशवासियों को सामूहिक रूप से सुसंगठित होकर देश की रक्षा के लिये सन्नद्ध होने की प्रेरणा उससे नहीं मिलती। कभी-कभी तो उनकी कविता वीर राजपूतों को पारस्परिक गृह-युद्ध के लिये प्रेरित करती हुई देश की एकता को छिन्न भिन्न करने में योग देती थी। काव्य में जातीय गौरव प्रादेशिक भावना अपने निजी राज्य की स्वाभिमान की भावना और अपना राज्य छोड़ देशभक्त तथा अपमानित न कर ये भाव निहित हैं। इस काव्य के कवियों की जातीय चेतना भी परिष्कृत एवं व्यापक नहीं है फिर भी उनके काव्य में संकीर्ण भी क्यों न हो राष्ट्रीय भावना को स्थान अवश्य मिला है।

उत्तर भारत के समान वीरगाथा युग में महाराष्ट्र की राजनीतिक दुर्दशा नहीं हुई। पारस्परिक कलह ईर्ष्या लड़ाइयों का स्थान नहीं मिला था। उस समय विदेशी आक्रमण दक्षिण में नहीं हुआ था एतद्देशीय राजा ही राज्य करते थे। फलस्वरूप मराठी कविता के उषाकाल में वीर काव्य निर्माण होने का प्रश्न ही नहीं उठा। विदेशी शत्रु के विरुद्ध तथा आपस में लड़ाइयाँ नहीं होती थीं अतः उत्साह प्रेरणा संचार के लिये चारण काव्य का निर्माण होना असम्भव था। उस युग में चक्रधर के महानुभाव पंथ ने सामाजिक क्रांति करने का असफल प्रयत्न किया और वह पंथ भी अपने विशिष्ट संगठन पद्धतियों एवं व्यवहार के कारण महाराष्ट्र में समाप्त नहीं हो सका।'[2] परन्तु

---

१ (१) गोविन्दराम शर्मा—हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ— पृ० ६७।

(२) डा० गणपतिचन्द्र गुप्त—साहित्यिक निबन्ध, पृ० ८४४।

२ प्रा० ग० भा० निरंतर—मराठा वाङ्मयाचा परामर्श—पृ० २९-३१।

ध्यान देने की बात है कि महाराष्ट्र में राष्ट्रीय चेतना का प्रसार सामाजिक क्रांति द्वारा करने का यह प्रथम प्रयास था।

वीरगाथा कालीन राजनीतिक स्थिति में सन्त तथा भक्त कवियों के युग में परिवर्तन आ गया। मुस्लिम उत्तर भारत के सम्राट बन चुके थे। मुस्लिम शासन संस्कृति कलाओं का प्रसार हो रहा था। मुसलमान भारतवर्ष में आक्रमणकारी के रूप में आए। इस में सन्देह नहीं कि उन्होंने हिन्दुओं के धर्म तथा धर्म स्थानों पर प्रहार किए परन्तु अपनी सत्ता स्थापन करने के लिए प्रायः प्रत्येक विदेशी शासक अथवा जाति को ऐसा व्यवहार करना ही पड़ता है, इतिहास इसका साक्षी है। परन्तु समय पाकर कुछ ऐसी परिस्थितियां और कारण बनते गए कि वे विदेशी एक समय के पश्चात भारतीय होते गए और इसी देश को अपना देश समझने लगे।[1] धीरे धीरे वे इस देश के निवासियों के जीवन में ऐसे समा गए कि दोनों जातियों ने बहुत सी बातों का आदान प्रदान कर एक ऐसी संस्कृति को जन्म दिया जो दोनों जातियों की संस्कृतियों के सम्मिश्रण का परिणाम कही जा सकती है। इस कार्य को सफल बनाने के लिए तत्कालीन भक्ति साहित्य ने बहुत सहयोग दिया।

भक्ति का आन्दोलन पहले दक्षिण में ही प्रारम्भ हुआ। परमात्मा के सामने श्रेष्ठ कनिष्ठ ऊंचा नीचा कोई नहीं है इस आध्यात्मिक समता को भक्त कवियों ने स्थापित किया। भक्तों की दृष्टि में भगवान की प्राप्ति के लिए जात पात का बन्धन निर्मूल था—

जात पात पूछे नहीं कोई।
हरि को भजे सो हरि का होई।

मुस्लिम इस देश में बस चुके सगुण उपासना उनके धर्म के विरुद्ध थी। अतः आवश्यकता थी ऐसी भक्ति पद्धति की जो दोनों जातियों को अनुकरणीय हो। इससे निर्गुण भक्ति का स्रोत प्रवाहित हुआ जिसके प्रणेता थे कबीर। उस निर्गुण भक्ति के स्रोत आगे बढ़ाने वाले नानक दादू रैदास पलटू आदि अनेक सन्त हुए। इनके द्वारा चलाई गई भक्ति पद्धति पर हिन्दू मुस्लिम दोनों जातियों में विषमता उत्पन्न होने की सम्भावना थी उसका परिहार इन सन्तों ने आवश्यक समझा। जहाँ सन्तों ने हिन्दुओं की मूर्ति पूजा तीर्थव्रत आदि का खण्डन किया वहीं मुसलमानों के रोजा नमाज आदि का भी विरोध किया। इनकी भक्ति का प्रवाह क्रमशः ऐसा विस्तृत और प्रबल होता गया

---

१ जे० एल० नेहरू— डिस्कवरी आफ इण्डिया पेज २३७

कि उसकी लपेट में केवल हिंदू जनता ही नहीं, देश में बसने वाले सहृदय मुसलमानों में से भी न जाने कितने आ गए।[1] सन्त काव्य में समाज-सुधार का पक्ष प्रबल है। संत कवियों ने पुरानी रूढ़ियों और मिथ्या आडम्बर का घोर विरोध किया। संतों ने तिलक लगाना माला फेरना व्रत और रोजा रखना नमाज पढ़ना आदि क्रियाओं की निंदा की और साधना के क्षेत्र में मन की शुद्धता पर बल दिया। हिंदू मुस्लिम एकता का प्रचार करने के कारण डा० इन्द्रनाथ मदान ने कबीर को उस युग का गांधी कहा है।[2] सन्तों के पास भेद भाव नहीं था। कबीर ने लिखा है—

एक बूँद एक मल मूतर एक चाम एक गूदा।
एक जाति थे सब उपजा कौन ब्राह्मन कौन सूदा॥[3]

कबीर की दृष्टि में जातिगत तथा वर्गगत प्रतिष्ठा का कुछ महत्व नहीं था। सभी मनुष्य उन्हें समान थे नाम भेद उनकी दृष्टि में व्यर्थ था। कबीर ने ये सभी भाव अपनी क्रांतिकारी वाणी द्वारा स्पष्ट रूप में प्रकट किए हैं—

वही महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदिम कहिए।
कोई हिंदू कोई तुर्क कहावे एक जमी पर रहिए॥[4]

इसी प्रकार सन्तों ने सत्य, समता दया धर्म नम्रता क्षमा तथा सन्तोष आदि अनेक मानवी सद्‌गुणों को अपनाने तथा उच्च-नीच स्पृश्यास्पृश्य आदि के भेदभाव को मिटाने का प्रयत्न किया। सन्तों के द्वारा प्रेरित यह साम्य भाव अधिक टिकाऊ था क्योंकि वह आर्थिक ऐहिक या बाह्य साम्य की भित्ति पर टिका नहीं वरन् वह आंतरिक साम्य पर आधारित था।[5] सन्त साहित्य की प्रखर धारा ने समाज के उन स्तरों को जगाया जो सब से पीड़ित थे और संस्कृति से वंचित थे सन्त साहित्य की यह ऐतिहासिक विशेषता है कि उसने सामंती बंधनों का विरोध करके सहज मानवता की प्रतिष्ठा की उसने जनता की जातीय और जनवादी चेतना को पुष्ट किया और उसके क्रोध आशा और विजय कामना को वाणी दी।[6] संक्षेप में आध्यात्मिक एकता एवं धार्मिक एकता के लिए संत कवियों ने विशेष प्रयत्न किए हैं।

---

१ आ० रामचन्द्र शुक्ल—हिंदी साहित्य का इतिहास आठवाँ सं० पृ० ६२
२ डा० इन्द्रनाथ मदान हिन्दी कलाकार द्वि० सं० पृ० ११
३ कबीर ग्रंथावली (पाँचवाँ संस्करण) पृ० १०६
४ कबीर वचनावली सम्पा० अयोध्यासिंह उपाध्याय द्वि० सं० पृ० १३५
५ डा० भगीरथ मिश्र—कला साहित्य और समीक्षा, पृ० ८०
६ डा० रामविलास शर्मा—स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य पृ० ९८

सन्त कवियों के समान ही भक्तिकालीन भक्त कवियों ने राष्ट्रीय भावना की रक्षा में महत् योगदान दिया है। तुलसी और सूरदास तो वाल्मीकि एव व्यास के समान हो गये हैं जो अन्त में समादृत किये जाते हैं। हम देख चुके हैं कि छोटे छोटे राज्यों में विभाजित भारत राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त दुर्बल हो गया था। युद्ध विभीषिकाओं से साधारण जनता ऊब उठी थी और वह राजनीतिक स्थिति के सम्बन्ध में उदासीन हो उठी थी—

कोउ नृप होउ हमहिं का हानि
चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी।[1]

इस राजनीतिक दुर्दशा के कारण होने वाली दुरवस्था और मानसिक गुलामी से सामान्य जनता जब मूढ़ बनी हुई थी तब इससे मुक्त करने का श्रेय भक्ति आन्दोलन को है। राजाश्रय भक्त कवियों का काम्य-क्षेत्र नहीं रहा था। उस समय राजाश्रय का अधिक महत्त्व भी लोगों के जीवन में नहीं था। तुलसीदास ने अपने काव्य के विविध प्रसंगों में राष्ट्रीय भावना को व्यक्त किया है। राम की अपनी जन्मभूमि के प्रति अनन्य अनुराग जाति को मातृ भूमि के प्रति कर्तव्य की प्रेरणा देता है। राम अंगद तथा सुग्रीव को अपनी जन्मभूमि के प्रति गौरव प्रकट करते हुए इस गर्वोन्नत बनाते हुए कहते हैं—

जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना। वेद पुराण विदित जगजाना।
अवधपुरी सम प्रिय नहीं सोऊ। यह प्रसंग जाने कोउ कोऊ।[2]

तुलसीदास जी के रामचरितमानस ग्रंथ ने मध्यकालीन कठिन परीक्षा के समय एक विचित्र प्रभाव डालकर जाति को सचेत किया। इसलिए इस काव्य की गणना 'शान्तिकारी काव्यों' में करनी ही उपयुक्त होगी।[3]

भक्त कवियों ने भगवद्गीता से भी प्रेरणा प्राप्त की है। उन्होंने

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥[4]

इस घोषणा के आधार पर शास्त्र प्रामाण्य और जाति-व्यवस्था को क्षति न पहुँचाते हुए स्त्री शूद्रादि को आत्म विकास का मार्ग प्रशस्त किया। तुलसी सूरदास ज्ञानेश्वर तुकाराम नामदेव आदि भक्त कवियों ने भक्ति के क्षेत्र में समता प्रस्थापित करने का और सामाजिक विषमता को नष्ट करने का

---

१ तुलसीदास–रामचरितमानस अयोध्या काण्ड १४–३
२ तुलसीदास रामचरितमानस–उत्तर काण्ड ३–३
३ रामनरेश त्रिपाठी–तुलसी और उनका काव्य पृ० २०३
४ श्रीमद्भगवद्गीता–९ ३२

प्रयत्न किया था। कम काड, अनान धर्मांधता दरिद्रता और फूट से ग्रस्त समाज म स्वत्व स्वधम और स्वभाषा के सम्बन्ध म आत्मीयता का निर्माण करने का काय भक्त कविया ने किया था। महाराष्ट्र म हिंदू समाज के निम्न वग म जारजाई जोखाई, विरोबा म्हसोबा आदि अनेक देवताओं का पूजन होता था भक्त कविया ने इस बहु देवता पूजन का विरोध किया पडित वर्गो के कोर नान का पर्दाफास किया वण जाति वश का अहकार को आध्यात्मिक क्षेत्र म समाप्त कर आ यात्मिक ममता स्थापित की। उन्होने जनता की भाषा म धार्मिकता का प्रसार किया और जनक छोटी जातिया म समन्वय कर एक ही सस्कृति का परिचय कराया। 'भक्ति आन्दोलन मे धम सुधार और समाज-जागति की चेतना है परतु समाज क्राति की चेतना नही है। इसने समाज की सुप्त शक्ति को जागत किया और पराजित वत्ति का लोप किया।'[1] समाज मे स्वाभिमान तज स्वसस्कृति एव प्रेम जगाने के लिए भक्त कविया न अवतारवाद का आश्रय लिया तथा विदेशी अत्याचारी और अन्यायी सत्ता को नष्ट करने वाले तथा राष्ट्र को एकसूत्र म पिरान वाले आदश चरित श्रीराम और श्रीकृष्ण क आदश देश के सामन रख।

सक्षेप म मध्ययुगीन दार्शनिक म ता तथा कविया ने देश को सास्कृतिक विघटन और ह्रास म बचाया।[2] इतना ही नहीं वरन विदेशी इस्लामी सस्कृति के प्रभाव को रोकना और अपनी सस्कृति का रक्षा करन का श्रेय भक्त कवियो को ही है।[3] इस युग के भक्त कवि रामदास स्वामी का राष्ट्र काय विस्मत नही किया जा सकता। मुगल साम्राज्य काल मे दक्षिण भाग के कतिपय सत और कवि भारतीय राष्ट्र भावना को पनपाते लक्षित होते हैं।[4] इनम घर घर मे राष्ट्र भक्ति का अलख जगाने वाले राष्ट्र गुरु रामदास प्रमुख हैं।

यह तो सत्य है कि शिवकालीन राजनीतिक आन्दोलन की वचारिक पृष्ठ-भूमि भक्त कविया क कार्यों से सिद्ध हो गयी थी। महाराष्ट्र के सास्कृतिक इतिहास म भगवत पथ के कविया का यह काय महत्त्वपूण है। समथ रामदास इन कविया म राष्ट्र चेतना की जाग्रति करन म सवश्रेष्ठ कवि हैं। इन्होने

---

१ ग० वा० सरदार—सत वाङमयाचा सामाजिक फलश्रुति प० १८

२ सुमित्रानन्दन पन्त—चिदम्बरा—प्रस्तावना

३ श्री वा० र० सुठणकर—सत चलवलीच मूल्यमापन

नवभारत—आक्टोबर १९५५ प० . ।

४ विनयमोहन शर्मा—साहित्य, शोध और समीक्षा पृ० ८।

दो तरह अपनाए थे। एक था राष्ट्र में राजनीतिक जागृति करना और दूसरा समर्थ सामर्थ्य के साथ स्वाधीनता संग्राम के लिए राष्ट्र को सज्ज करना। इसका यथार्थ साधना को सामाजिक पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय राष्ट्रगुरु रामदास को ही है। श्री समर्थ रामदास की राजनीतिक कार्यों और विचारों की तुलना स्वाधीनता प्राप्ति के हेतु संघर्ष करने वाले भगिनी श्री अरविन्द तिलक सावरकर म० गांधी आदि युगपुरुषों के साथ की जा सकती है। रामदास ने भगवान के रूप में लोगों को राम राज्य बताया और आन्दोलन के लिए प्रेरणा दी। राष्ट्र में चेतना जगाई की एक अद्भुत शक्ति निर्माण कर कल्याणकारी कार्यों में लोगों को प्रवृत्त करने की में शक्ति उनके पास थी। रामदास ने धर्म राज्य एवं राज्य बुद्धियोग संगठन प्रयत्नवाद के द्वारा महाराष्ट्र की शक्ति को जगाया। ओजस्विता एवं क्षात्रतेज के प्रसार के लिए रघुकुल श्रेष्ठ श्रीराम एवं हनुमान के पराक्रम की प्रशंसा की और सुन्दर काण्ड एवं युद्ध-काण्ड की रचनाओं द्वारा वीर रस की भावना का संचार किया। राष्ट्र के स्वर्णिम अतीत का गौरवगान करना पराधीनता के लिए खेद व्यक्त करना स्वाधीनता प्राप्ति के प्रयत्नों की प्रशंसा करना पराक्रम को प्रोत्साहन देना तथा अत्याचार अन्याय अज्ञान दुष्टता दुर्बलता निष्क्रियता एवं राष्ट्र प्रेम अभाव की भर्त्सना करके राष्ट्र को इनके विरोध में संघर्ष करने के लिए कटिबद्ध करना—ये उनके काव्य के प्रमुख उद्देश्य रहे हैं। उनका दासबोध काव्य ग्रंथ आधुनिक गीता है।

जब विदेशियों के अत्याचारों से धर्म नष्ट हो रहा था तीर्थ क्षेत्रों का ध्वस हो रहा था हिंदू प्रजा की अत्यंत दयनीय अवस्था हो गयी थी तब अस्मानी सुल्तान शाही परचक्र निरूपण में रचनाओं द्वारा रामदास ने ओजस्वी संदेश दिया—

मरते हुये पूरी तरह मार। कारण देवताओं का ध्वस किया गया है स्वधर्म का नाश हुआ है इस अवस्था में जाने की अपेक्षा मरना ही अच्छा है। कभी परतंत्र मत बनो स्वाधीनता पर आँच न आने दो और निरपेक्षता को मत छोड़ो।'

इस वीर वाणी को सुनकर महाराष्ट्र के सह्याद्रि की शिखाएं सुलग उठीं। महाराष्ट्र में शिवाजी–औरंगजेब को उस युग में राम रावण के रूप में देखा जा रहा था। इस औरंगजेब रूपी रावण के नाश के लिये संगठन आत्म तेज पराक्रम स्वाभिमान स्वदेश और स्वधर्म की शिक्षा रामदास ने दी। शक्ति उपासना के हेतु हरेक गाव में हनुमान–मंदिर स्थापित किया। अत्याचारी मुगलों के संहार तथा स्वराज्य स्थापना पर रामदास ने हर्ष व्यक्त

किया।[1] वे शिवाजी के पराक्रम एवं शौर्य को राष्ट्र के प्रमुख आदर्श रूप में रखना चाहते थे। शिवाजी का पुत्र संभाजी को उपदेश देते हुये वे कहते हैं—

इस देश में शिवाजी ने जो पराक्रम, कृति की है उसे सदैव स्मरण करने चाहिए।

संक्षेप में फ्रेंच राज्यक्रांति के उद्गाता के रूप में प्रख्यात रूसो और व्हाल्टेअर विचारकों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण एवं ठोस कार्य स्वराज्य स्थापना के हेतु रामदास ने किया था। रामदास और भजनी इन दो सत्पुरुषों के चारित्रों में एवं उपदेशों में इतना प्रखर तेज है कि आज भी दुर्जन भयभीत हो जायेंगे, देशद्रोही डर जायेंगे मृत जी उठेंगे अशक्तों में बल का संचार हो जायगा और वत्त्वहीन भी अद्वितीय शौर्य दिखाएंगे।[2] मध्ययुगीन इतिहास में ऐसा अद्भुत एवं अपूर्व राष्ट्रीय एकता कार्य करने का श्रेय केवल भक्त कवि राष्ट्रगुरु रामदास को ही है जिसे कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जाता है कि कबीर तुलसी रामदास आदि संत कवियों ने जो भक्ति का एक व्यापक सर्वजनिक रूप प्रशस्त किया वह मूलतः देश के उदात्त चरित्र के उत्थान द्वारा अपनी राष्ट्रीय संस्कृति और समाज की रक्षा करने के उद्देश्य से ही किया था। उनकी यह भावना उनके युग की एक प्रकार से राष्ट्रीय भावना थी।

भक्तियुग के अनंतर रीतिकाल के प्रारंभ में विचित्र प्रकार की सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियां देश में व्याप्त हो रही थी। नैतिक एवं बौद्धिक पतन में धर्म का रूप विकृत हो गया था। दरबारी कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की विलासी मनोवृत्ति को संतुष्ट करने के लिए घोर शृंगार रस प्रधान काव्य की रचना की। यहाँ तक वर्णन किया गया कि 'दनुजदलन लोकरक्षक मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र अब सरयू किनारे काम क्रीडा करने लगे। धनुष उनका शृंगार बन गया, सीता के व्यक्तित्व का मार्दव और आदर्श युग की शृंगारिकता में लिप्त हो गया और सीता का रमणीय रूप ही केवल शेष रह गया।'[3] ऐसा कामवासना से युक्त अश्लील काव्य ने तत्कालीन जनता का

---

१ रामदास स्वामी काव्य—आनन्द भुवन ७ ३३,३६।

२ डा० स० दा० पेंडसे—मराठी संत काव्य आणि कर्मयोग, पृ० ११६। व्हीनस प्रकाशन सप्टें १९६१।

३ डा० नगेन्द्र—हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास—ष० भाग (रीतिकाल) नागरी प्रचारिणी सभा काशी वि० २०१५, पृ० १८।

मनोरञ्जन तो खूब किया परन्तु वह सामाजिक विकास में बाधक सिद्ध हुआ। अतः इन काव्यों का परिमाणिक तथा साहित्यिक महत्त्व भले ही हो परन्तु सामाजिक तथा नैतिक महत्त्व सर्वथा शून्य है क्योंकि इनमें व्यापक जीवन दर्शन नहीं मिलता। इसमें कोई सन्देह नहीं रीति काव्य वास्तव में यौवन का मादक विलासपूर्ण काव्य है। [1]

इस घोर शृंगार विलासित युग में भी निस्पृह वीर राष्ट्र नेता औरंगजेब से अत्याचारी शासन से जाति को मुक्त करने के लिये संघर्ष कर रहे थे जिनके वीरोचित कार्यों की प्रशंसा भूषण, लाल, सूदन आदि कतिपय कवियों ने अपनी ओजस्विनी कविताओं द्वारा गाई जिससे सोई हुई हिन्दू जाति के हृदय में उत्साह का संचार किया। इन कवियों में भूषण राष्ट्रीय कवि के रूप में सामने आते हैं। वे रीतिकालीन धारा के कवि होते हुए भी वीर रस के कवियों में एक प्रकार से अग्रणी हैं। छत्रपति का नाम स्मरण आते ही भूषण का स्मरण अनिवार्य सा हो जाता है। हिन्दू राष्ट्र के निर्माण के लिये महाराजा शिवाजी का नाम भारतीय इतिहास में जिस प्रकार अमर रहेगा उसी प्रकार उनके कीर्तिगायक सुकवि भूषण की कविता हिन्दी काव्य के पाठकों के लिए सदा वीर भावों की प्रेरणा और स्फूर्ति का उपकरण हो बनी रहेगी। [2] कारण औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीति के विरुद्ध विद्रोह करने वाले नायकों में शिवाजी अग्रगण्य हैं। भूषण ने मुगल साम्राज्य के विरुद्ध शिवाजी द्वारा किये गये युद्धों तथा उनके जीवन की अन्य प्रमुख घटनाओं को ओजस्वी वाणी का पुट देकर सजीव किया है। उनकी दृष्टि में शिवाजी केवल युद्धवीर ही नहीं वरन दानवीर, दयावीर तथा श्रेष्ठ कर्मवीर भी थे जिनके जीवन का क्षण क्षण देश तथा जाति की निःस्वार्थ सेवा में ही व्यतीत हुआ। भूषण इनके चरित्र से प्रभावित होकर उन्हें अवतार तक कहने में अत्युक्ति नहीं समझते थे—

> दशरथ जू के राम भे वसुदेव के गोपाल।
> सोइ प्रगटे साहि के श्री सिवराज भुआल। [3]

शिवाजी ने श्रीराम जैसे अवतार सदृश ही कार्य कर अपनी जाति एवं धर्म की रक्षा की। भूषण लिखते हैं—

---

१ डा० भगीरथ मिश्र—हिन्दी रीति साहित्य पृ० १३।
२ उदयनारायण तिवारी—वीर काव्य—प्रथम संस्करण, पृ० २०८।
३ भूषण भारती (हरदयालसिंह)—प्रथम संस्करण पृ० १९५।

'राखी हिंदुवानी हिंदुवान को तिलक राख्यो
अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मैं ।
राखी रजपूती रजधानी राखी राजन की
धरा मे धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी हैं ।'[1]

भूषण के काव्य मे देश की रक्षा एव हिंदू जाति के उत्थान की भावना का प्राधान्य है । शिवाजी और छत्रसाल जैसे देश रक्षक एव लोकहितैषी वीर नायको का आलम्बन बनाकर भूषण के कण्ठ से जो ओजस्विनी कविता प्रवाहित हुई उसमे केवल भूषण का ही नही सारी हिंदू जाति तथा सारे भारत का स्वर गूजता है । देश मे आक्रमण कारी मुसल्मानो के प्रभुत्व की प्रतिष्ठा हो जाने पर भूषण ने सर्वप्रथम विधर्मी एव विदेशी सत्ता के विरुद्ध आवाज उठाई और देशवासियो को सामूहिक रूप मे अपने देश, धर्म एव संस्कृति रक्षा के लिए प्रोत्साहित किया ।

भूषण के काव्य मे यह राष्ट्रीयता की भावना मुख्यतया विदेशी शासको के अत्याचार के प्रति विद्रोही भावना जाग्रत करने हिन्दू धर्म और हिंदू संस्कृति के प्रति गौरव के चित्रण हिंदू जनता को अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए प्रोत्साहित करने एव शिवाजी जैसे वीर-नायको के गौरव गान मे प्रस्फुटित हुई । उनके काव्य मे राष्ट्र के उत्थान की भावना विद्यमान है ।

कुछ आलोचको के अनुसार भूषण की कविता मे राष्ट्रीय भावना की अपेक्षा हिंदू धर्म का भाव प्रबल है । उन पर जो साम्प्रदायिक होने का दोषारोपण किया जाता है वह उचित नही है । कारण यहाँ हम ध्यान रखना चाहिए कि राष्ट्रीयता के सम्बन्ध मे आज की बदली हुई परिस्थितियो के अनुरूप हमारी मान्यताएँ भी बदल चुकी हैं । आज का भारत हिन्दू नही है अपितु हिंदू मुसलमान सिख पारसी ईसाई आदि विभिन्न जातियो का निवास स्थान बन चुका है । भूषण के समय मे मुसलमान विदेशी आक्रमण कारी थे उस समय हिन्दुत्व का सदेश ही भारतीयता का सदेश था । जिस प्रकार अंग्रेजो के शासनकाल मे राष्ट्रीय भावना का स्फुरण विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह के रूप मे हुआ उसी प्रकार भूषण के समय की राष्ट्रीयता मुसलमानी राज्य मे होने वाले अत्याचारो के विरुद्ध प्रतिक्रिया रूप मे व्यक्त हुई । भूषण जाति द्वेष के शिकार नहीं थे वरन एक सच्चे राष्ट्र भक्त थे । शिवाजी राष्ट्र के प्रतिनिधि थे और जनता उन्हे श्रद्धा का अर्घ्य देती थी ।

---

१ भूषण भारती (हरदयाल सिंह) प्रथम संस्करण (शिवा बावनी) पद ४८ पृ० २२८ ।

भूषण ने शिवाजी को आदर्श वीरवर तथा राष्ट्रीय भावनाओं का प्रणयन किया। तत्कालीन परिस्थितियों में हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति की रक्षा तथा देश की उन्नति में जो भूषण ने जो कार्य किया वह निश्चय ही राष्ट्रीय महत्व का था।

अन्त में रीतिकालीन कविताओं के सम्बन्ध में हम यह कह सकते हैं कि तत्कालीन कविताओं में एक ओर शृंगारिक काव्य की रचना हो रही थी तो दूसरी ओर वीर रस प्रधान काव्य की रचना हो रही थी। दूसरी कोटि में आने वाले काव्यों में ही किसी न किसी रूप में राष्ट्रीयता के दर्शन होते हैं। इस काल में कोई ऐसा कवि दृष्टिगोचर नहीं होता जिसने व्यापक रूप में राष्ट्रीयता का प्रचार कर सम्पूर्ण देश को एक सूत्र में अनुस्यूत करने का प्रयास किया हो। परन्तु जो कार्य उन्होंने सीमित रूप में किया वह भी राष्ट्रीय भावों से प्रेरित होकर ही किया और राष्ट्रीय गौरव से खाली नहीं है।[1]

हिन्दी काव्य में रीतिकालीन युग में जिस प्रकार शृंगार एवं वीर रस की प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं उसी प्रकार वे प्रवृत्तियाँ मराठी कविता में भी शृंगार कालीन युग में प्राप्त होती हैं। इस वीर रस प्रधान कविताओं को गायन करने वाले शायर थे। इन शायरों ने प्रथम आलंकारिता शृंगारिकता को छोड़कर महाराष्ट्र जन के सुख दुख हर्ष शोक को तथा वीरता पराक्रम की कृतियों को वाणी दी। शिवाजी के पूर्व काल में इस्लामी चाँद का ध्वज फहराया हुआ था तब शायर, वीर साहसी नायक के अभाव में मूक बैठे थे। शिवाजी का राजनीतिक क्षेत्र में उदय एवं उसके अद्वितीय कर्तृत्व से शायर प्रभावित हो गए। उन्होंने शौर्य पराक्रम वीरता की प्रशस्ति गान के लिए एक अभिनव काव्य की विधा अपनाई वह थी पवाडा। पवाडा वीर गाथा माना जाता है। शिवाजी ने विदेशी आक्रमण मुसलमानों को करारी हार देकर हिन्दू संस्कृति की रक्षा की थी इससे सह्याद्रि प्रदेश का कण कण शिवाजी की वीर गाथा में अपने को कृतकृत्य समझने लगा था। समाज में आवेश ओज अस्मिता एवं वीरवृत्ति आदि भावनाओं का संचार हुआ था। एक नए युग का प्रभात हो गया था। उत्साह तेज पराक्रम एवं शौर्य के इस युगीन चेतना से कवि अछूते नहीं रह सके। युग प्रवृत्तियों की पूर्णरूपेण अभिव्यक्ति मराठी शायरों की कविता में प्राप्त होती है। शिवाजी के उदार आश्रय में पवाडा रचनाओं को प्रोत्साहन मिला तथा उसका विकास हुआ। राजनीतिक

---

१ डा० विद्यानाथ गुप्त–हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृ० १८८।

इतिहास पर आधारित तथा व्यक्तियो का एव सामूहिक शौय का गुणगान शायरा ने कविताओ द्वारा किया । कुल मिलाकर तीन सौ 'पवाडे' उपलब्ध है। अगीनदास का– अफजलखानाचा वध', तुलसीदास का तानाजी मालुसरा, जीरखान का उमाजी नाईकाचा पोवाडा आदि पवाडा म वीरा का तेजस्वी गान है जिनसे समाज म वीरवत्ति तथा शौय का सचार होकर, समाज को असीम पराक्रम एव स्वराज्य रक्षा की प्रेरणा मिली थी ।

रामजोशी प्रभाकर हानाजी सगनभाऊ अनतफदी, परशुराम आदि शायरा ने केवल शौय का ही वणन नही किया वरन् समाज की दुदशा भीषण अकाल दरिद्रता दुख आदि का भी बडे प्रभावशाली ढग से चित्रण किया है। शायरो की कविता म समाज की आर्थिक दुदशा नतिक पतन एव कीर्ति काय के रूप म राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्त किया गया है। अर्थात इसम व्यापक राष्ट्रीय भावना का अभाव है। हिन्दी कवि भूषण, लाल आदि के समान इन शायरा मे जातीय राष्ट्रीयता की भावना प्राप्त होती है किन्तु तत्कालीन परिस्थिति को देखते हुए उसे भी राष्ट्रीय गौरव म हीन नही माना जाता । इन शायरा की कविताओ को साम्प्रदायिक सकीण अथवा हिन्दू जाति का काव्य नाम से सम्बोधित करना उन पर अन्याय करना है, कारण तत्कालीन सीमित युगानुकूल राष्ट्रीय चेतना को ही उन्होने वाणी दी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सस्कृत भाषा म राष्ट्रीयता की भावना किसी न किसी रूप म अवश्य विद्यमान थी इसके पश्चात और आधुनिक युग के पूव हिन्दी कविता म भी उस राष्ट्रीय भावना का प्रवाह बहता ही रहा, वह कभी क्षीण हुआ, परन्तु मिट नही सका । वीरगाथा काल म साम्प्रदायिकता का परिचय देने वाली कविता भक्ति युग म हिन्दू मुस्लिम एकता एव आध्यात्मिक समानता पर बल देकर राष्ट्रीय चेतना को पुष्ट कर रही थी। रीतिकाल म वीर रस प्रधान कविता ने राष्ट्रीयता, तथा वीरा के गायन से राष्ट्र म तेज एव स्वराज्य की भावना का सचार करने का काय किया। वदिक ऋषियो और सस्कृत के महाकाव्यो के ऋषि समान ज्ञानेश्वर तुकाराम राष्ट्रगुरु रामदास सूरदास तुलसीदास भूषण एव मराठी शायरा का राष्ट्रीय चेतना का एकता म योगदान विस्मृत नही किया जा सकता। अर्थात आधुनिक युग के पूव नि सदेह भारतीय साहित्य म राष्ट्रीयता की भावना म व्यापकता युगपरिस्थिति के कारण नही मिलती । आधुनिक युग म राष्ट्रीय चेतना का जो प्रचड प्रभावशाली प्रबल प्रवाह प्रवहमान हुआ है, वसा पूववर्ती साहित्य म नही मिलता।

आधुनिक राष्ट्रीय कविता की पृष्ठभूमि

भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना और विशेष रूप से लगभग सन् १८५७ के बाद हिन्दी साहित्य का इतिहास अनेक अंशों में अपने प्राचीन इतिहास से भिन्न है। हिन्दी में आधुनिकता का सूत्रपात लगभग इसी समय से होता है। किन्तु साथ ही कविता पाश्चात्य शिक्षा और नवीन राजनीतिक आर्थिक सामाजिक और धार्मिक शक्तियों के फलस्वरूप नए-नए विषयों की ओर मुड़ रही थी। हिन्दी साहित्य के इस नवीन, विशद पूर्ण और विविध विषय सम्पन्न स्वरूप के निर्माण का श्रीगणेश दो सभ्यताओं के सांस्कृतिक संपर्क के फलस्वरूप १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। भारतीय सभ्यता शताब्दियों के बाद से स्थिर और शिथिल हो चुकी थी।[1] उसी समय वह एक यन्त्र सज्ज विजेता जाति के सम्पर्क में आ गयी। अंगरेजी सभ्यता में शक्ति एवं गति थी। अंग्रेज लोग यान्त्रिक औद्योगिक सभ्यता के अग्रदूत तथा नवीन ऐतिहासिक शक्ति के प्रतिनिधि होने के कारण प्रभावपूर्ण बन गये। इस पाश्चात्य संपर्क के परिणाम स्वरूप ही भारत में राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ।[2] उसमें सजीवता उत्पन्न हुई[3] और राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का विकास हुआ।

अंग्रेज जब इस देश के शासक बन चुके थे। उन्होंने भारतवर्ष में अंग्रेजी शिक्षा का संचालन किया। नवीन शिक्षा का परिणाम यह हुआ कि देश के नवयुवक नवीन साहित्य तथा विज्ञान से परिचित हुए। वे इतिहास भूगोल गणित तथा अन्य विषयों के अध्ययन द्वारा मानसिक तथा बौद्धिक विकास करने लगे। उनके जीवन में नये आदर्श नयी उमंगें तथा नये विचारों का

---

१ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय–आधुनिक हिन्दी साहित्य (सन् १८५०–१९००) संस्करण १९४८ पृ० १।

२ डा० भगीरथ मिश्र रामबहोरी शुक्ल–हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, पृ० १८५।

३ डा० प्रेमनारायण शुक्ल–हिन्दी साहित्य में विविधवाद–पृ० २१६।

४ प्रा० नलिनी पंडित–महाराष्ट्रातील राष्ट्रवादाचा विकास पृ० २।

विकास होने लगा । एक ओर वे सरकारी नौकरियां प्राप्त कर अपनी जीविका कमाने लगे दूसरी ओर उन्हें यह भी अनुभव होने लगा कि अन्य प्रगतिशील देशों के समान भारत को उन्नतिपथ पर बढ़ना चाहिए । उन्हें देश की दुरवस्था खलने लगी । फ्रांस में क्रांति हो चुकी थी तथा इटली और स्पेन में वैधानिक राज्य स्थापित हो चुके थे । नवीन शिक्षा के प्रभाव में देश में एक नवीन वातावरण निर्माण हो गया । अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से भारतवासियों में एक ऐसा परिवर्तन आने लगा कि वे अपने समाज तथा धर्म में आवश्यक सुधार करने को लालायित हो उठे । दूसरी ओर भारतीयों को प्राचीन भारतीय गौरव को अपनाने की रुचि निर्माण हो गई । अपने वीर पुरुषों का ओज अपने प्राचीन दर्शनों के सिद्धांत एवं अपने प्राचीन कलाकारों की कृतियाँ उनमें उत्साह भरने लगीं । कारण राष्ट्रीयता के प्रथम उत्थान में सन १८५७ का राजनैतिक स्वातन्त्र्य समर को बुरी तरह से कुचल दिया गया था और दमन एवं भेदनीति के कारण राष्ट्रीयता की भावना खुलकर प्रवाहित नहीं हो रही थी। पराधीनता के कारण प्रत्येक मनस्वी भारतीय को आंतरिक ग्लानि थी । इस क्षतिपूर्ति के लिए वह अपने प्राचीन गौरव का आह्वान करता रहा ।

भारतीय संस्कृति की यह प्रधान विशेषता रही है कि सभी कार्य व्यक्तिगत सामाजिक तथा राजनीतिक धर्म द्वारा शासित होते हैं । पाश्चात्य राष्ट्रों में धर्म को गौण स्थान प्राप्त हुआ है, जबकि भारत में प्रमुख । भारतीय धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन धर्मच्युत नहीं बल्कि धर्मसापेक्ष रहा है । हिंदू समाज के प्रमुख विभाजन धर्म भेद, जाति भेद वर्णव्यवस्था आदि धर्म द्वारा स्वीकृत रूप हैं इसी से भारतीय धार्मिक सामाजिक सुधारवादी आंदोलन के प्रवर्तकों को धार्मिक पुनरुत्थान के कार्यक्रम में प्रवेश करने के पूर्व सामाजिक व्यवस्था में सुधार की ओर उन्मुख होना पड़ा । भारत में धार्मिक सुधार आधुनिक युग के पूर्व भी हुए । बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार शंकराचार्य द्वारा हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान रामानुज का व्यापक भक्ति-आंदोलन हिंदू-मुस्लिम तथा अन्य धर्मों के समन्वय के लिए कबीर नानक के उत्कृष्ट आन्दोलन आदि में सामाजिक तथा धार्मिक विचार प्रभावित हुए । हमारी राष्ट्रीय जागृति अर्थात नव जागृति की अभिव्यंजना प्रथम इन सुधारवादी आन्दोलनों के रूप में हुई । इन्हीं आंदोलनों का विकास क्रमशः होता गया जिसके परिणाम के रूप में राष्ट्रीय-स्तर पर जागृति हुई । इसी धार्मिक सांस्कृतिक-पृष्ठभूमि का आधार लेकर राजनीतिक चेतना का प्रसार एवं प्रचार हुआ । तात्पर्य यह है कि भारतवर्ष में राष्ट्रीयता संस्कृति की कुक्षि से

उत्पन्न हुई ।[1] इस पुनरुत्थान सस्कनि क लोक नायक थे राममोहन राय स्वामी दयान द रामकृष्ण परमहस विवेकान न्द या० रानडे, आगरकर आदि।

इन सास्कृतिक आदोल्ना के नायक सास्कृतिक और सामाजिक परतत्र के बधना का शिथिल कर रह थे । ब्राह्मो समाज आय समाज प्राथना समाज थिओसिफिकल सोसायटी आदि सास्कृतिक एव वचारिक आन्दोल्ना न भारत म सुधार का नवयुग प्रारम्भ किया ।

इस सास्कृतिक आदोल्न क अतिरिक्त नेतागण आर्थिक विषमता से भी दुखी थ । सन १९१७ की रूस की राज्यक्रा त न आर्थिक समानता का उदघोष किया। मावसवाद आधुनिक युग की गीता बन गया। आर्थिक प्रश्नो को विषमता को लकर गाधी दशन समाजवाद आदि का निर्माण हुआ ।

आर्थिक विपन्नता स विषमता स ग्रस्त समाज तथा सास्कृतिक नवचतना ने भारतीया क मन म दासता के सबध म घणा निर्माण कर दी । सामान्य व्यक्ति म भी पराधीनता से क्षोभ हान लगा । भारतीय समझन लगे कि पार तत्र्य काल म भारत की गुलामी स मुक्ति ही राष्टीयता है ।[2] स्वाधीनता के विराट आदालन तिलक तथा गाँधी जी क नतत्व म सचालित हुए । अनक विराट राजनीतिक राष्टीय आदोलनो के पश्चात भारत ने स्वातन्त्र्य सूय क दशन किए ।

इन सभी तत्वा न राष्टीय कविता धारा को अत्यन्त प्रभावित किया है । इन स्वातत्र्य-आकाक्षी आदोल्न के स्वर का मुखरित करन वाला राष्टीय कविता प्रस्तुत काल म अवश्यम्भावी थी। इन आन्दोल्नो का प्रबल स्वर राष्टीय कविता मे सुनाई देता है । अतएव इन तत्वदशना को, जिन्होन इस राष्टीय कविता की पष्ठभमि का काय किया है उनको हम तीन भागा म विभाजित करक दखेंगे—

१) सास्कृतिक आदोल्न
२) आर्थिक आदोल्न
३) राष्ट्रीय आन्दोल्न ।

प्रथमत हम सास्कृतिक आन्दोलन पर विचार करेंगे । ब्राह्मो समाज आय समाज ब्रह्मविद्या समाज प्रायना समाज विवकानन्द तथा वेदान्त आदि का समावेश सास्कृतिक आन्दोलना म होता है ।

---

१ दिनकर—सस्कृति क चार अध्याय—प० ५ २ ।
२ डा० रामकुमार वमा—धमयुग अक्तू० १९६३ ।

ब्राह्मो समाज

भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है। देश की धार्मिक अधोगति एवं ह्रास होने पर यहां महापुरुषों ने समयानुकूल जन्म लेकर धर्मोद्धार किया है। १९ वीं शताब्दी में धर्म पतन की चरम सीमा को प्राप्त होकर अनेक प्रकार की कुप्रथाओं अन्ध परम्परा और मायाजाल में ग्रस्त हो रहा था, कुरीतियों को धर्म का रूप दे दिया गया था। एकेश्वरवाद के स्थान पर अनेक कल्पित देवी देवता ही नहीं अपितु कब्र परस्ती और गाजीमियाँ की पूजा भी हिंदुओं में प्रचलित हो गई थी। ईसाई मिशनरियों का आन्दोलन प्रबल वेग से चल रहा था और राजनीतिक कारणों से भी अंगरेज शासक पूर्णरूपेण इन संस्थाओं की सहायता कर रहे थे। फलतः हिंदू अपने धर्म को निकृष्ट समझने लगे और उनमें हीनता के भाव उत्पन्न हुए।[1] अविद्यान्धकार वश अपनी-अपनी बुद्धि प्रयोग में असमर्थ हिंदू मूढ और पथभ्रष्ट हो रहे थे ऐसे समय में बंगाल में एक प्रकाश की रेखा दृष्टिगोचर हुई। वह थी राजाराममोहन राय। १९ वीं शताब्दी के नवभारत के अग्रगण्य तथा नवजागरण के अग्रदूत राजाराममोहन राय (सन् १७७४ १८३३) थे। वे संस्कृत, अरबी फारसी, हीब्रू ग्रीक और अंगरेजी भाषाओं के ज्ञाता थे। स्वयम् उन्होंने हिंदू, बौद्ध ईसाई और इस्लाम धर्मों के मूल ग्रंथों का गहन अध्ययन किया था। वे भारतवर्ष को स्वतंत्र ब्रिटेन का मित्र तथा एशिया का प्रकाश देने वाले के रूप में देखना चाहते थे। नवजागृति के पुरोधा राजाराममोहन राय का स्थान उस महासेतु के समान है जिस पर चलकर भारतवर्ष अपने अथाह अतीत से अनात भविष्य में प्रवेश करता है। प्राचीन जाति प्रथा और नवीन मानवता के बीच जो खाई है अंधविश्वास और विज्ञान के बीच जो दूरी है स्वेच्छाचारी राज्य और जनतंत्र के बीच जो अंतराल है तथा बहुदेववाद एवं शुद्ध ईश्वरवाद के बीच जो भेद है उन सारी खाइयों पर पुल बाँधकर भारत को प्राचीन से नवीन की ओर भेजने वाले नवयुग निर्माता, युगपुरुष राममोहन राय है। उनकी बुद्धि निष्पक्ष निरहंकार और सर्व संग्राहक थी। हिंदू समाज का उद्धार करने की *प्रेरणा उन्हें उपनिषदों से मिली थी।*

हिंदुओं के बीच नये धर्म के मत प्रचार करने के उद्देश्य से ब्राह्मो समाज के पूर्व इन्होंने वेदान्त कालेज आत्मीय सभा तथा कलकत्ता यूनिटेरियन सोसायटी स्थापित की थी। इन समितियों से इनके हृदय को संतोष नहीं

१ डा० लक्ष्मीनारायण गुप्त–हिंदी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन पृ० ७

हुआ । वे हिन्दू धर्म में जो सुधार लाना चाहते थे उसके लिए वे समाएं बिल्कुल अयोग्य थीं । राममोहन राय ने एक ऐसी सभा स्थापित करने का विचार किया जो शुद्ध औपनिषदिक ग्रन्थों पर आधारित हो। तदनुसार २० ८ १९२८ ई० ने उन्होंने ब्राह्मो समाज की स्थापना कलकत्ते में की । इस समाज का रूप निर्विवाद रूप से भारतीय था । प्रथमतः इस सभा के अधिवेशन में दो तेलुगू ब्राह्मण वेद पाठ करते थे । कभी राममोहन राय रचित उपदेशों का पाठ किया जाता था ।

ईसाई धर्म से सम्मोहित होकर इन्होंने हिन्दू धर्म को भी नवीन बौद्धिक और आध्यात्मिक भूमिका में ढालने का प्रयत्न किया । ब्राह्मो समाज का उद्देश्य था हिन्दुत्व का नव संस्कार और सच्चे ईश्वर की आराधना की प्रतिष्ठा । अपने धर्म प्रथा में जाति भेद अस्पृश्यता बहुविवाह सती प्रथा मूर्ति पूजा कुलीन प्रथा (बंगाल में इस प्रथा के अनुसार एक पुरुष कई सौ स्त्रियों से विवाह कर सकता था) पशु-बलि आदि कर्म काण्डों का कोई विधान न देखकर इन्होंने इन मिथ्याचारों का उच्छेद करने का उपक्रम किया था । रूढ़िवादिता के स्थान पर बुद्धिवादी और सुधारवादी चेतना का प्रसार इन्होंने किया । राजाराममोहन राय का सबसे सामाजिक सुधार का कार्य है सती प्रथा का उन्मूलन करना । अकबर ने सतीप्रथा को रोक दिया था परन्तु मुस्लिम शक्ति के अस्त होने के उपरान्त यह फिर से जीवित हो गयी । सती प्रथा के उन्मूलन का श्रेय राममोहन राय तथा विलियम बेंटिक दोनों को है ।

राजाराममोहन राय एकेश्वरवादी हिन्दू थे ।[1] एकेश्वरी धर्म का सर्वत्र प्रचार करके यह बताया जाय कि सब धर्मों का अंतरंग एक ही है और इस तरह संसार के धर्म भेदों का अंधकार दूर करने वाले सार्वत्रिक विश्व धर्म के सूर्य का प्रकाश सर्वत्र फैलाना उनकी एक महत्त्वाकांक्षा थी ।

यह स्पष्ट है कि राजाराममोहन राय की आस्था ईश्वर की एकता में है और अनास्था मूर्तिपूजन में है । उनका उपासनालय बिना भेद भाव के लोगों का सम्मिलन स्थल है । ब्राह्मो समाज के सिद्धान्त संक्षेप में ये विचार थे— ईश्वर का अवतार नहीं होता । ईश्वरोपासना की विधि आध्यात्मिक होनी चाहिए । उसके लिए त्याग और वैराग्य मठ मन्दिर और पूजा पाठ की आवश्यकता नहीं है और ईश्वरोपासना का अधिकार सभी वर्गों और जातियों के समान है । प्रकृति और अन्तर्चेतना ईश्वर ज्ञान के स्रोत हैं ।

---

१ राजाराममोहन राय ने सन १८०४ में फारसी में तुहफात उल्मुवाह दीन नामक ग्रंथ लिखकर उसमें एकेश्वरवाद का समर्थन किया ।

ब्राह्मो समाज वेदों की अपौरुषेयता पर विश्वास नही करता था । ब्रह्मो समाज और आय समाज के एक सूत्र म आबद्ध होने म मुख्य बाधा यही थी कि प्रथम सस्था को वेद माय नही थे । यदि ब्राह्मो समाज को वेद माय हो जाते तो शायद ही दयानन्द के आय समाज की अलग स्थापना हो जाती । स्वामी दयान द ने वेद को मूलाधार मानकर वदिक धम का विकसित, माय और सामयिक रूप जनता के समक्ष रखा । योगी अरविंद के कथनानुसार राजाराममोहन राय केवल उपनिषदो तक पहुँच पाय परन्तु स्वामी दयानन्द ने उसस आगे बढकर वद धम का प्रतिपादन किया ।

ब्राह्मो समाज के दो भाग हो गये—एक आदि ब्राह्मो समाज और दूसरा ब्राह्मो समाज । महर्षि देवेन्द्रनाथ ब्राह्मो समाज को हिन्दू सस्था की तरह रखना चाहते थे । केशवचन्द्र सन ईसाई धम स प्रभावित और सामाजिक क्रान्ति के प्रबल समथक थ जो हिन्दू धम को भी ईसायत की दिशा मे ले जाना चाहते थे । अत केशवचन्द्र द्वारा सन १८६६ म स्थापित समाज ब्राह्मो समाज और देवेन्द्रनाथ के द्वारा सचालित आदि ब्राह्मो समाज नाम स सबोधित किये जाने लगा ।

भारत म जो नवोत्थान के आन्दोलन हुए उनम ब्राह्मो समाज अपना विशेष महत्त्वपूण स्थान रखता है । भारत म ईसाई धम का प्रचार उनके द्वारा भारतीय धर्मों की निन्दा, यूरोप के क्रान्तिकारी बुद्धिवादी विचार, अंग्रेजी शिक्षा म दीक्षित सुशिक्षितो द्वारा हिंदुत्व की भत्सना य कुछ कारण थे जिन स हिन्दुत्व की नीद टूटी उसकी पहली अगडाई ब्राह्मो समाज म प्रकट हुई । राजाराममोहन राय न धार्मिक सुधारो की बात शायद इसलिए उठायी होगी कि एक ओर उन्ह जहा ईसाइयो का सामना करना था वहा दूसरी ओर उन्ह हिन्दू समाज की कुरीतियो और अन्धविश्वासो के विरुद्ध सचेत करना था । यह बडे मार्के की बात है कि १९ वी शताब्दी का यूरोप जहा नवोत्थान के जोश मे धम स दूर जा रहा था वहा भारत के नवोत्थान का आधार धम था राममोहन राय हिन्दू धम को रूढियो से मुक्त कर उस एक नया रूप देना चाहते थ । हिन्दू जनता धम के विषय म बिल्कुल पौराणिक सस्कारो स दबी हुई थी उस चट्टान को तोडकर वे हिन्दू हृदय को शुद्ध धम के आलोक स भरना चाहते थ । राजाराममोहन राय के ये विचार वस्तुत महान मानसिक क्रान्ति के चिह्न थे । धम के क्षेत्र म बग भूमि म ब्राह्मो समाज न नवयुग का द्वार खोल दिया था । और ज्यो ज्यो यह लहर अन्य प्रान्तो की ओर बढी त्यो त्यो शुभ परिणाम भारत के सामाजिक और सास्कृतिक नव सजन के रूप म घटित हुआ ।

तथापि हिन्दू समाज के निम्न स्तर को ब्राह्मो समाज प्रभावित नहीं कर सका। निम्न श्रेणी के हिन्दू जहाँ उच्च वर्ग के हिन्दुओं के असमान व्यवहार से ईसाई हो रहे थे वहाँ अपने ही धर्म में निम्न कथित निम्न वर्ग प्राप्त श्रद्धा से श्रद्धा करते था। यदि ब्राह्मो प्राचीन समस्या को सम्मान करते हुए ब्राह्मो समाज निम्न वर्ग से समता का व्यवहार करता तो आज अधिक सफल होता। ब्राह्मो समाज ने उच्च पठित वर्ग को हिन्दू समाज के इस महत्वपूर्ण अंग की ओर ध्यान नहीं दिया और हिन्दू शास्त्रों प्रेमी निम्न वर्गों ने ईसाई और ब्राह्मो समाज को समान समझा।

ब्राह्मो-समाज के उपदेशों में विश्व-बन्धुत्व और विश्व प्रेम पर बल दिया जाता था। कवि-कुल गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गीतों में विश्वबन्धुत्व और विश्व प्रेम ही गूँजा है। उनके गीतों में उपनिषद् के आध्यात्मवाद की आत्मा सन्निहित है जिसने आगे चलकर सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं को संस्कृति के पुनर्निर्माण का सदेश दिया। भारतेन्दु अपनी बंगाल यात्रा (१८६३ ई०) में बंगला के साहित्य से प्रभावित हुए थे। इसलिए ब्राह्मो समाज का प्रभाव भी उन पर पड़ा होगा। परन्तु हिन्दी पर ब्राह्मो समाज का कोई प्रभाव नहीं है। हिन्दी साहित्य पर जिस संस्था का प्रत्यक्ष सबसे अधिक और व्यापक प्रभाव पड़ा है वह है आर्य समाज।[1]

आर्य समाज

आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द ने बम्बई में सन् १८७५ में की। ब्राह्मो समाज और प्रार्थना समाज के पीछे बहुत कुछ पाश्चात्य विचार धारा की प्रेरणा थी। इन आन्दोलनों ने पाश्चात्य बुद्धिवादी विचारधारा को भारतीय संस्कृति में आत्मसात कर लेने का प्रयत्न किया। इसके विपरीत आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन के आन्दोलन मुख्यतः भारत के अतीत से अनुप्रेरित थे और उनके आधार भूत सिद्धान्त भी प्राचीन शास्त्रों से लिए गये थे। दयानन्द स्वामी राजा राममोहन राय की तरह न फारसी अरबी अंग्रेजी पढ़े थे। तथापि संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित होते हुए अपनी प्रतिभा से उन्होंने पादरियों और मौलवियों को मात दी और वेदों की प्रतिष्ठा से वैदिक साहित्य और संस्कृति के अध्ययन की जो रुचि राष्ट्र में जागृत की वह उनकी बड़ी देन है।

उन्नीसवीं सदी के हिन्दू नवोत्थान का पृष्ठ पृष्ठ बतलाता है कि जब

---

१ डा० केसरीनारायण शुक्ल—आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत पृ० २९।

यूरोप वाले आए तब यहा धर्म और संस्कृति पर रूढि की परतें जमी हुई थी, एवं यूरोप के मुकाबले में उठने के लिए यह आवश्यक हो गया था कि ये परतें एकदम उखाडकर फेंकी जाय और हिंदुत्व का रूप प्रकट किया जाय, जो निर्मल और बुद्धिगम्य हो। किंतु यह हिंदुत्व पौराणिक कल्पनाओं के नीचे दबा हुआ था उस पर अनेक स्मृतियों की धूल जम गयी थी। वेद के बाद के सहस्रों वर्षों में हिंदुओं ने जो रूढियां और अंधविश्वास अर्जित किये थे, उनके नीचे यह धर्म दबा पड़ा था। राममोहन राय रानडे तिलक से भिन्न स्वामी दयानंद की विशेषता यह रही कि उन्होंने धीरे धीरे पपडियां तोडने का काम न करके उन्हें एक ही चोट से साफ कर देने का निश्चय किया।

भारतीय संस्कृति और ज्ञान को संस्कृत साहित्य के द्वारा हृदयंगम कर लेने पर इस आधुनिक ऋषि के हृदय में दर्शन की नव ज्योति उदभासित हुई। वेद ही उनकी मूल प्रेरणा थी और "वेदों की ओर" उनका मंत्र था। हिंदू पुराणों और स्मृतियों ने वैदिक तत्त्व को धूमिल और विकृत कर दिया था अतः हिंदुत्व का पुनरुद्धार उन्होंने वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा से करने का उपक्रम किया था। आर्य समाज के प्रचलित दस नियमों की जो सन १८७७ में की गयी, उनमें तीसरा नियम था "वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक हैं, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"[1] वेद के सत्यार्थ पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने हिंदुत्व के आर्यत्व का प्रतिपादन किया था।

दयानंद स्वामी क्रांति के वेग में आये। उन्होंने घोषणा कर दी कि हिंदू ग्रंथों में केवल वेद ही मान्य हैं अन्य शास्त्रों और पुराणों की बातें बुद्धि की कसौटी पर कसे बिना नहीं मानी जानी चाहिए। छः शास्त्रों और अठारह पुराणों को उन्होंने एक झटके में साफ कर दिया।[2] वेदों में मूर्तिपूजा, अवतार तीर्थों श्राद्ध और अनेक पौराणिक अनुष्ठानों का समर्थन नहीं था अतएव स्वामी जी ने इन सारे कृत्यों और विश्वासों को गलत घोषित किया। दयानंद स्वामीजी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के एकादश और द्वादश समुल्लास में तो भारतवर्ष में प्रचलित विभिन्न मतमतांतरों अर्थात शैव वैष्णव आदि की बखिया उधेड़ गयी है और कबीर दादू नानक बुद्ध चार्वाक जैन एवं हिंदुओं के

---

१ डा० लक्ष्मीनारायण गुप्त—हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन पृ० ४५।

२ स्वामी दयानन्द—सत्यार्थ प्रकाश पृ० २३६–२३७।

३ वही० पृ० २१७, २२०, २२२ २२६।

तथापि हिंदू समाज के निम्न स्तर को ब्राह्मो समाज प्रभावित नही कर सका। निम्न श्रेणी के हिंदू जहाँ उच्च वण के हिंदुओ के असमान व्यवहार से ईसाइ हो रहे थ, वहाँ अपन हो धम म स्थित कथित निम्न वग प्राचीन प्रथा म श्रद्धान्वित था। यदि वेदादि प्राचीन धमग्रथो का सम्मान करते हुए ब्राह्मो समाज निम्न वग से समता का व्यवहार करता तो आज अधिक सफल होता। ब्राह्मो समाज क उच्च पठित वग ने हिंदू समाज के इस महत्त्वपूण अग का ओर ध्यान नही दिया और हिंदू शास्त्री प्रेमी निम्न वर्गो म ईसाई और ब्राह्मो समाज को समान समझा।

ब्राह्मो समाज के उपदेशो मे विश्व-बधुत्व और विश्व प्रम पर बल दिया जाता था। कवि कुल गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गीतो मे विश्वबधुत्व और विश्व प्रेम की गूज है। उनके गीतो म उपनिषद् के आध्यात्मवाद की आत्मा सन्नि हित है जिसने आगे चलकर सम्पूण भारतीय भाषाओ की सस्कृति के पुनर्नि र्माण का सदेश दिया। भारतेन्दु अपनी बगाल यात्रा (१८६३ ई०) मे बगला के साहित्य से प्रभावित हुए थे। इसलिए ब्राह्मो समाज का प्रभाव भी उन पर पडा होगा। परन्तु हिंदी पर ब्राह्मो समाज का कोई प्रभाव नही है। हिंदी साहित्य पर जिस सस्था का प्रत्यक्ष सबसे अधिक और व्यापक प्रभाव पडा है वह है आय समाज।[1]

आय समाज

आय समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द ने बम्बई म सन १८७५ म की। ब्राह्मो समाज और प्राथना समाज के पीछे बहुत कुछ पाश्चात्य विचार धारा की प्रेरणा थी। इन आन्दोलनो ने पाश्चात्य बुद्धिवादी विचारधारा को भारतीय सस्कृति म आत्मसात कर लने का प्रयत्न किया। इसके विपरीत आय समाज और रामकृष्ण मिशन क आन्दोलन मुख्यत भारत क अतीत स अनुप्रेरित थे और उसक आधार भूत सिद्धान्त भी प्राचीन शास्त्रो म लिए गय थे। दयानन्द स्वामी राजाराममोहन राय की तरह न फारसी अरबी अग्रेजी पढे थ। तथापि सस्कृत के प्रकाण्ड पडित होत हुए अपनी प्रतिभा स उन्होंने पादरियो और मौलवियो को मात दी और वदो की प्रतिष्ठा स वदिक साहित्य और सस्कृति क अध्ययन का जो रुचि राष्ट्र म जागृत की वह उनकी बडी दन है।

उन्नीसवी सदी क हिंदू नवोत्थान का पृष्ठ पृष्ठ बतलाता है कि जब

1 डा० कमलानारायण गुप्त—आधुनिक काव्यधारा का सास्कृतिक स्रोत पृ० २१।

यूरोप वाले आए, तब यहाँ धर्म और संस्कृति पर रूढ़ि की परत जमी हुई थी, एवं यूरोप के मुकाबले में उठने के लिए यह आवश्यक हो गया था कि ये परतें एकदम उखाड़कर फेंकी जायँ और हिंदुत्व का रूप प्रकट किया जाय जो निर्मल और बुद्धिगम्य हो। किंतु यह हिंदुत्व पौराणिक कल्पनाओं के नीचे दबा हुआ था उस पर अनेक स्मृतियों की धूल जम गयी थी। वेद के बाद के सहस्रों वर्षों में हिंदुओं ने जो रूढ़ियाँ और अंधविश्वास अर्जित किये थे, उनके नीचे यह धर्म दबा पड़ा था। राममोहन राय रानडे तिलक से भिन्न स्वामी दयानन्द की विशेषता यह रही कि उन्होंने धीरे धीरे पपड़ियाँ तोड़ने का काम न करके उन्हें एक ही चोट से साफ कर देने का निश्चय किया।

भारतीय संस्कृति और ज्ञान को संस्कृत साहित्य के द्वारा हृदयगम कर लेने पर इस आधुनिक ऋषि के हृदय में दर्शन की नव ज्योति उदभासित हुई। वेद ही उनकी मूल प्रेरणा थी और वेद की ओर' उनका मंत्र था। हिंदू पुराणों और स्मृतियों ने वैदिक तत्त्व को धूमिल और विकृत कर दिया था अतः हिंदुत्व का पुनरुद्धार उन्होंने वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा से करने का उपक्रम किया था। आर्य समाज के प्रचलित दस नियमों की जो सन १८७७ में की गयी उनमें तीसरा नियम था वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।[1] वेद के सत्यार्थ पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने हिंदुत्व के आर्यत्व का प्रतिपादन किया था।

दयानन्द स्वामी क्रांति के वेग से आये। उन्होंने घोषणा कर दी कि हिंदू ग्रंथों में केवल वेद ही मान्य हैं अन्य शास्त्रों और पुराण की बातें बुद्धि की कसौटी पर कसे बिना नहीं मानी जानी चाहिए। छः शास्त्रों और अठारह पुराणों को उन्होंने एक झटके में साफ कर दिया।[2] वेदों में मूर्तिपूजा 'अवतार तीर्थों श्राद्ध और अनेक पौराणिक अनुष्ठानों का समर्थन नहीं था, अतएव स्वामी जी ने इन सारे कृत्यों और विश्वासों को गलत घोषित किया। दयानंद स्वामीजी ने सत्यार्थ प्रकाश' के एकादश और द्वादश समुल्लास में तो भारत-वर्ष में प्रचलित विभिन्न मतमतांतरों अर्थात शैव वैष्णव आदि की बखिया उधेड़ गयी है और कबीर दादू नानक बुद्ध चार्वाक जैन एवं हिंदुओं के

---

१ डा० लक्ष्मीनारायण गुप्त—हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन पृ० ४५।

२ स्वामी दयानन्द—सत्यार्थ प्रकाश, पृ० २३६–२३७।

३ वही० पृ० २१७, २२० २२२ २२६।

और पुराणों पौराणिक देवताओं में से एक भी बचाव नहीं छूटा है। वल्लभाचार्य और कबीर पर तो स्वामीजी द्वारा बरसे हैं कि उनकी आलोचना पढ़कर सहनशील लोगों को भी धीरज छूट जाती है। हिन्दुत्व के साथ स्वामीजी ने सत्यार्थ प्रकाश के त्रयोदश और चतुर्दश समुल्लास में क्रमश ईसाई मत की और इस्लाम मत की कड़ी आलोचना की। इस्लाम की कड़ी आलोचना एवं शुद्धि आन्दोलन से स्वामी दयानन्द की गिनती प्रताप, शिवाजी और गुरु गोविन्द की श्रेणी में की जाने लगी। किन्तु दयानन्द स्वामी मुसलमान के विरोधी नहीं थे। वास्तव में स्वामीजी ने बुद्धिवाद की एक कसौटी बनायी और हिन्दुत्व, इस्लाम और ईसाइयत पर निष्पक्ष भाव से लागू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि पौराणिक हिन्दुत्व तो इस कसौटी पर खंड खंड हो गया, इस्लाम और ईसाइयत की भी सैकड़ों कमजोरियाँ लोगों के सामने आयीं। स्वामीजी ने सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्दश समुल्लास के अन्त में निष्पक्षता के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'मेरा कोई नवीन कल्पना मत या मतान्तर चलाने का लेशमात्र अभिप्राय नहीं है। किन्तु जो सत्य है उसे मानना मनवाना और जो असत्य है उसे छोड़ना छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त के प्रचलित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता। किन्तु मैं आर्यावर्त वा अन्य देशों में जो अधर्मयुक्त मत चल सकते हैं उनको स्वीकार नहीं करता और जो धर्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता न करना चाहता हूँ क्योंकि ऐसा करना धर्म के विरुद्ध है।'[1]

वस्तुतः शंकराचार्य के बाद से भारत में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं हुआ जो स्वामी जी से बड़ा, संस्कृतज्ञ उनसे बड़ा दार्शनिक, अधिक तेजस्वी वक्ता तथा कुरीतियों पर टूट पड़ने में उनसे अधिक निर्भीक रहा हो। दयानन्द के आर्य समाज के दार्शनिक धार्मिक संस्कार के साथ सामाजिक पुनरुद्धार के द्विविध कार्यक्रम ने उत्तरापथ के हिन्दू समाज को चेतना जाग्रत और जागरूक तथा जातीय दृष्टि से प्रगतिशील बनाया। उन्होंने जाति भेद, छुआ छूत, बाल हत्या, बालविवाह, परदा, दहेज, सती प्रथा और पशुबलि की रूढ़ियों के विरोधी कार्यक्रम अपनाकर स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, विदेश गमन, शुद्धि आंदोलन का आवेश के साथ समर्थन किया।

भारत को हिन्दू देश के रूप में सामाजिक धार्मिक और राष्ट्रीय दृष्टि

---

१ स्वामी दयानन्द—सत्यार्थ प्रकाश चतुर्दश समुल्लास।

२ वही०, पृ० ४९।

मे पुन सगठित करन के लक्ष्य से शुद्धि का आन्दोलन चलाया। गतानुगतिका के विरोध और बौद्धिकता के समावेश म आय समाज ' और ब्राह्मो समाज समान हैं किन्तु जहाँ ब्राह्मो समाज के उच्चस्तर म बौद्धिक और आत्मिक चेतना ला सका वहाँ आय समाज न निम्न स्तर म भी जागरण को जन्म दिया। कुरीतिया के उच्छेदन म पुराणवाद के उन्मूलन से युगान्तर करने मे आय समाज सफल हुआ। भारतीय सभ्यता और शिक्षा के पुनरुद्धार म भी समाज का काय स्तुत्य है। उसन पुरुषो और स्त्रिया के लिए गुरुकुल, और दयानन्द एग्लो वैदिक कालिज स्थापित किया। जातीयता की भावना का उदबोधन सबसे पहले दयानन्द जी ने ही किया। वे केवल धार्मिक तथा सामाजिक उत्थान म ही व्यस्त नही रहे वरन अपनी सवतोमुखी प्रतिभा के कारण व देश की राजनतिक तथा आर्थिक दुदशा की अनुभूति सम्यक रूपेण करते रहें। वे पहले नेता थे जिन्होंने स्वराज्य का महत्व प्रस्तुत कर मातृभूमि की महान सेवा की और घोषित किया कि दूसरे का अच्छा शासन स्वशासन का स्थान नही ले सकता।"[1]

कुछ अर्थों मे ब्राह्मो समाज स भी अधिक व्यापक धम सांस्कृतिक जागरण लाने का श्रेय स्वामी दयानन्द (सन १८२४ १८८३) के द्वारा प्रवर्तित आय समाज को है। इस शताब्दी म होने वाले उत्तरा पथ के सामाजिक सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भूमिका आय समाज न ही प्रस्तुत की। आय समाज के काय के सम्बन्ध म यह कहा जा सकता है कि आय समाज के जन्म के समय हिन्दू कोरा फुसफुसाया जीव था। उसके मरुदण्ड की हड्डी नहा थी। चाहे कोई उस गाली द उसकी हसी उडायें देवताओ की भत्सना करे या उसके धम पर कीचड उछाले जिस वह सदिया से मानता आ रहा है, फिर भी इन सार अपमाना के सामने दात निपोर कर रह जाता था। आय समाज के उदय के बाद अविचल उदासीनता का यह मनोवृत्ति विदा हो गयी। हिन्दुओ का धम एक बार फिर जगमगा उठा। आज का हिन्दू धम अपने धम की निन्दा सुनकर चुप नहा रह सकता, जरूरत हुई तो धम रक्षाथ वह प्राण भी दे सकता है। प० नेहरु ने कहा है कि आय समाज इस्लाम और ईसाई धम के

---

१ दयानन्द सरस्वती–"सत्याथ प्रकाश अष्टम समुल्लास–प० १९५ (विरजानन्द वदिक सस्थान, गाजियाबाद–द्वि० सस्करण)
'कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अपनी प्रजा पर माता पिता के समान कृपा न्याय और दया के साथ विदेशियो का राज्य सुखदायक नही होता।"

विशेषत इस्लाम के हिन्दुत्व पर हुए प्रभाव की प्रतिक्रियात्मक शक्ति थी।

आय समाज के सस्थापक स्वामी दयानन्द केशवचन्द्र और रानड की तुलना मे वसे ही दीखते हैं जस गोखले की तुलना म तिलक। जस राजनीति के क्षेत्र म हमारी राष्ट्रीयता का सामरिक तज पहले पहल तिलक म प्रत्यक्ष हुआ वसे ही सस्कृति के क्षेत्र मे भारत का आत्माभिमान स्वामी दयानद मे निखरा। ब्राह्मो समाज और प्राथना समाज के नेता अपने धम म सुधार तो ला रहे थे किन्तु उन्हें बराबर खेद रहता था कि वह विदेश की नकल है। अपनी हीनता और विदेशियो की श्रेष्ठता के ज्ञान से उनकी आत्मा कही न कही दबी हुई थी। अतएव स्वामी दयानन्द के समान काय होते हुए भी आत्म हीनता के भाव के कारण व बोल नही सके। किन्तु यह स्वाभिमान दयानन्द मे चमक उठा। रूढियो और गतानुगतिकता म फसकर अपना विनाश कर लेन के कारण स्वामीजी ने देशवासियो की कडी निंदा की और उनसे कहा कि तुम्हारा धम पौराणिक सस्कारो की धूल म छिप गया है इन सस्कारो की गदी परतो को तोडकर फेंक दो। तुम्हारा सच्चा धम वदिक धम है जिस पर आरूढ होकर तुम विश्व विजयी बन सकते हो। किन्तु इससे कडी फटकार इन्होंने ईसाई और मुस्लिम धर्मावलबियो को सुनाई जो सदव हिन्दुत्व की निंदा करत थे। उन्होंने ईसाई और मुस्लिम पुराणा म घुसकर वस ही दोष दिखला दिय जिनके कारण ईसाई और मुसलमान हिन्दुत्व की निंदा करते थे। इससे दो बात निकली। एक तो यह कि अपनी निन्दा सुनकर घबराई हुई हिन्दू जनता को यह जानकर कुछ सतोष हुआ कि पौराणिकता के मामले म ईसाइयत और इस्लाम भी हिन्दुत्व स अच्छे नहीं हैं। दूसरी यह कि हिन्दुओ का ध्यान अपने धम के मूल रूप की ओर आकृष्ट हुआ और वे अपनी प्राचीन परम्परा के लिए गौरव का अनुभव करन लगे।

राममोहन राय और रानडे न हिन्दुत्व की पहल मोर्चे पर लडाई लडी थी जो रक्षा या बचाव का माग था। स्वामी दयानन्द ने आक्रमण नीति का श्रीगणेश कर दिया क्योंकि वास्तव म रक्षा का उपाय तो आक्रमण की ही नीति है। राममोहन राय और रानड स एक और बात म दयानन्द स्वामी आग बढ़े वह थी धमान्तरित अथवा अहिन्दू का शुद्धिकरण कर उन हिन्दू धम म प्रवेश देना।[1]

---

1 महाराष्ट्र म शुद्धिकरण शिवाजी युग स ही रहा था। बजाजी निंबालकर जो मुस्लिम बन गया था उसका शुद्धि करके उसे हिन्दू धम म प्रवेश किया गया था।

आर्य समाज की इसी शिक्षा नीति का देश पर गंभीर प्रभाव पड़ा और अप्रत्यक्ष रूप से देशभक्ति का पोषण हुआ। वेद के आधार पर जिस देशभक्ति और राष्ट्रीयता का संचार हुआ उसमें भारत के विविध समुदायों में एकीकरण की शक्ति थी। राष्ट्रीय जागरूकता और राजनीतिक चेतना के विकास और प्रसार में आर्य समाज का महत्त्वपूर्ण हाथ था। उन्नीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीयता के प्रथम मंत्रण का श्रेय स्वामी दयानन्द व आर्य समाज को है। समाज के प्रभाव स्वरूप जिस राष्ट्रीयता का जन्म हुआ उसमें अतीत के प्रति अनुराग और आत्मपूर्ण स्थान प्राप्त करने का आग्रह मुख्य था।[1] आर्य समाज ने जन समुदाय में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की नींव डालकर आगे विकसित होने वाली राष्ट्रीयता की भावना को कुछ सुदृढ़ भूमि प्रदान की।

आर्य समाज की राष्ट्रीय भावना का अमिट प्रभाव हिंदी साहित्य पर पड़ा। स्वामी दयानन्द स्वयं गुजराती होते हुए भी, उन्होंने अपनी सर्वोत्कृष्ट पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश हिंदी में लिखी तथा आर्य समाज के तत्त्वों का प्रचार भी हिंदी द्वारा किया। पंजाब तथा उत्तर प्रदेश आर्य समाज का मुख्य केन्द्र होने के कारण उत्तर प्रदेश के मध्यम तथा निम्न श्रेणी के व्यक्तियों पर आर्य समाज का बहुत प्रभाव पड़ा। समाज में वर्गों का प्राधान्य होता है अतः लगभग सम्पूर्ण समाज की विचारधारा को मोड़ने का कार्य आर्य समाज ने किया है। साहित्यकार भी सुधार आन्दोलनों में से इसी से सबसे अधिक प्रभावित हुए हैं। आर्य समाज के प्रभाव के कारण समाज सुधार की एकेश्वरवाद, नारीजागरण अछूतोद्धार बालविवाह गोरक्षा, भारतीय जागरण, आर्य समाज के तत्त्वों के समर्थन करने वाली कविताएँ लिखी जाने लगीं। शंकर जैसे महान् कवि आर्य समाजी ही रहे हैं। द्विवेदी युग के हिंदी साहित्य पर आर्य समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा है।[2] स्वामी दयानन्द द्वारा प्रवर्तित आर्य समाज की बौद्धिकता की छाप इस युग के सभी कवियों पर किसी न किसी रूप में पड़ी है। उपाध्याय जी के प्रिय प्रवास में राधा और कृष्ण का जो स्वरूप अंकित किया गया है वह आर्य समाज द्वारा किये गये पौराणिक और मध्य कालीन कवियों के विवेचन से पूरी तरह प्रभावित है।[3]

महाराष्ट्र में (बम्बई) स्थापित आर्य समाज का गहरा प्रभाव हिंदी पर पड़ा किन्तु मराठी कविता पर बिलकुल नहीं पड़ा, कारण महाराष्ट्रीय जन

---

१ डा० केसरीनारायण शुक्ल—आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत पृष्ठ ३७।

२ डा० शम्भुनाथ पांडेय—आधुनिक हिंदी कविता की भूमिका—पृ० २४।

३ आ० नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य (वि० सं० २०१८) —५९।

परमहंस के ही महामहिम शिष्य विवेकानन्द (ई० १८६३–१९०२) ने भारतीय संस्कृति के वेदान्त दर्शन की नव प्रतिष्ठा की। उन्होंने गुरु का संदेश देश देशान्तर मे पहुँचाया। जिस संस्था की उन्होंने स्थापना की उसका नाम भी 'रामकृष्ण मिशन' रखा। वेदान्त के अद्वैत दर्शन की व्यावहारिकता ही उनकी जीवन साधना बन गई थी। विवेकानन्द अधधर्म श्रद्धा अंध विश्वास का विरोध कर स्वाभाविक धर्म की स्थापना करना चाहते थे। नवयुवकों को व गीता के बदले फुटबाल के मैदान मे खेलने का संदेश देते थे। वज्रसम भारत बनाना उनका सपना था और नारियों का समुचित सम्मान किए बिना देश की उन्नति उन्हे असंभव सी लगती थी।

विवेकानन्द के भाषणों को बड़ी श्रद्धा से अमरिका मे सुना गया। ईसाई मिशनरियों का जोश आपके प्रभाव के कारण बहुत कुछ ठण्डा पड गया। भारतीय दर्शन की श्रेष्ठता को विदेशियों ने मुक्त कण्ठ से सराहा और पाश्चात्य देशों का अपनी भौतिक उन्नति के कारण जो एक प्रकार का सांस्कृतिक घमण्ड हो गया था वह वेदान्त की प्रभा में बहुत कुछ फीका पड गया। विवेकानन्द की सांस्कृतिक विजय का सबसे बडा लाभ यह हुआ कि पाश्चात्य सभ्यता की तडक भडक से आकर देश की शिक्षित जनता मे जो एक हीनता की भावना जागृत हो गई थी उसकी जडें देश के मानस मे अधिक गहरी न धस पाई। अंग्रेजों की अन्धी नकल एवं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे पाश्चात्य सभ्यता की श्रेष्ठता स्वीकार करने की भावना शिथिल पड गई। उनके उपदेशों से भारत वासियों को अपने उज्ज्वल महान अतीत का ज्ञान हुआ और देश ने उस पर गौरव एवं अभिमान का अनुभव किया। उनके उपदेशों से हमे ज्ञात हुआ कि हमारी प्राचीन संस्कृति प्राणपूर्ण एवं आज भी विश्व के लिए कल्याणप्रद है। विवेकानन्द के उपदेशों से देशवासी अपने पतन की गहराई भाप सके अपने शारीरिक दुर्बलता और आधिभौतिक विनाश का अपनी क्रिया विमुखता और आलस्य को तथा अपने पौरुष के भीषण ह्रास से परिचित हो सकें। विवेकानन्द बड़े तेजस्वी महान् पुरुष थे। इनकी वाणी मे आज था इनके व्यक्तित्व मे आकर्षण था स्वभाव मे स्फूर्ति था तथा इनके गर्जना एवं उपदेशों मे इनके हृदय का आवाज रहता था। इनकी गणना उन राष्ट्र निर्माताओं मे की जा सकती है जिनके प्रयत्नों मे देश का भाग्य ही बदल गया।

राममोहन राय, केशव चंद्र सेन, दयानन्द बार्मिक रामकृष्ण एवं अन्य चिन्तकों तथा सुधारकों ने भारत मे जो भूमि तैयार की थी विवेकानन्द उसमे अवश्य होकर उठे। अभिनव भारत को जो कुछ कहना था वह विवेकानन्द मुख मे उच्चरित हुआ। विवेकानन्द वह सेतु हैं जिन पर प्राचीन और अर्वाचीन

भारत आलिंगन करते हैं विवेकानन्द वह समुद्र है, जिसम धम और राजनीति, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता, उपनिषद् और विज्ञान सब समाहित हो जाते हैं। यदि कोई भारत को समझना चाहता है तो उसे विवेकानन्द को पढना चाहिए। वतमान भारत जिस लक्ष्य को लेकर जाग उठा उसका आख्यान विवेकानन्द कर चुके थ, बाद के महात्मा और नेता उस लक्ष्य को साकार रूप देने का प्रयत्न करते रहे। जिस स्वप्न के कवि विवेकानन्द रहे गांधीजी और प० जवाहरलाल जी उसके इंजीनियर हुए।

विवेकानंद के विचारों से देश म एक उच्च एव उदात्त विचारों की चेतना मय लहर फल गयी, जिसने राष्ट्रीय भावना को एक अमिट तेज एव प्रकाश प्रदान किया।

"हिन्दी के छायावादी कवियों को विवेकानन्द के दर्शन से बहुत प्रभावित किया है।[1] महाप्राण निराला पर तो विवेकानन्द के तेजस्वी विचारों का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। मराठी कवियों पर उनके दर्शन एव व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव लक्षित होता है जिसे उन्होंने वाणी दी है।

प्रार्थना समाज

उन्नीसवीं सदी के नवोत्थान की प्रेरणा सामाजिक थी किन्तु बंगाल म उसने धार्मिक रूप लिया था। सामाजिक सुधार के लिए सन् १८४९ ई० मे महाराष्ट्रियों ने परमहंस सभा की स्थापना की जो अधिक दिनों तक जीवित न रह सकी। इस संस्था का उद्देश्य जाति प्रथा का भजन था। इसके सदस्य गुप्त रीति स नीच जाति के हाथो स पकाया हुआ भोजन करते थे और समझते थ कि वे सामाजिक क्रांति का बीज बो रहे हैं। किन्तु इस रहस्य को समाज ने जान लिया और जन समाज के भय स फिर इस संस्था की ही इतिश्री कर दी गई।

१८६४ ई० म जब केशवचन्द्र सेन बम्बई गए तो उन्हान बहुत से व्यक्तियों को सुधार के लिए तयार पाया। केशवचन्द्र सेन के जाने से मुख्य प्रभाव यह हुआ कि समाज सुधार का आधार धम को बनाया गया और एक ईश्वरोपासना की संस्था निर्मित हुई। मार्च १८६७ ई० म प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। आधुनिक महाराष्ट्र के जनक'[2] श्री महादेव गोविन्द रानडे इसका नेतृत्व कर रहे थे। उन्होंने समाज की दशा को सुधारने के लिए उत्साहपूर्ण काय किया। वे बड़े विद्वान् और धम के महान सुधारक थे। उनके हृदय

---

१ डा० शम्भुनाथ पाण्डेय–आधुनिक हिंदी कविता की भूमिका–पृ० २५।
२ प्रा० नलिनी पंडित–महाराष्ट्रातील राष्ट्रवादाचा विकास–प० ४१।

में देश प्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ था। यद्यपि सुले रूप म राजनतिक क्षेत्र मं उन्होंने पदापण नहीं किया था परन्तु सास्कृतिक आधार पर उन्होंने जो काम किया था वह राष्ट्रीय भावनाओ के विकास म बहुत सहायक सिद्ध हुआ। बौद्धिक ऊँचाई म रानडे राममोहनराय के समकक्ष थ। अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखने के लिए इस सस्था न ब्राह्मो समाज म अपने को मिला देना उचित नहीं समझा और इसीलिये ब्राह्मो समाज का नाम स्वीकार न करके प्रार्थना समाज नाम रखा ऐसा कुछ विद्वानो का भ्रामक मत है। कारण ब्राह्मो समाज और प्रार्थना समाज के उद्देश्यो म पर्याप्त अन्तर है। प्रार्थना समाज न अपने समक्ष चार उद्देश्य रखे थे—जाति प्रथा विरोध विधवा विवाह समर्थन, नारी शिक्षा का प्रचार और बाल विवाह का विरोध करना। रानडे प्रार्थना समाज को मध्यकालीन भक्तियुग के आदोलन के समान जन समुदाय मे उसे प्रतिष्ठित होना देखना चाहते थे। ब्राह्मो समाज धनी विद्वान वग के व्यक्तियों तक सीमित रहा रानडे प्रार्थना समाज का प्रसार अशिक्षित, गरीब जन समूहो म भी देखना चाहते थ।

ब्राह्मो समाज तथा प्रार्थना समाज म दोनो प्रान्तो के व्यक्तियो के व्यक्तित्व का अन्तर ही प्रधान है। प्रार्थना समाज की स्थापना करने वाले व्यक्ति दयानद अथवा केशवचद्र सेन की तरह धम म रुचि रखनेवाले न थे। प्रार्थना समाज कभी भी बडी धार्मिक शक्ति के रूप म विकसित नहीं हुआ और न धम-सुधार का निश्चित कायक्रम ही इसने अपनाया। इस प्रकार से प्रार्थना समाज ने सामाजिक सुधार तक ही अपने कायक्रम सीमित रखा। सदस्यो के धार्मिक विश्वासो म अन्तर होने हुये भी इस समाज ने हिंदू समाज म अपनी स्थिति बनाये रखी। इसके सदस्यो ने अपने को महाराष्ट्र के नामदेव ज्ञानेश्वर तुकाराम रामदास जसे प्रसिद्ध वष्णव सतो की परम्परा मे माना और इसीलिए मानव सेवा म ही उन्होंने ईश्वर के प्रेम की अभिव्यक्ति देखी। पढरपुर म प्रार्थना समाज ने एक आश्रम तथा एक अनाथालय खोला। बम्बई म दरिद्रों की शिक्षा के लिए रात्रि पाठशालायें खोली एक विधवाश्रम की स्थापना की और हरिजनो की उन्नति की ओर ध्यान दिया। प्रार्थना समाज की विशेषता यही है कि इसने धम सुधार और समाज सुधार के बीच का रास्ता अपनाया है। ब्राह्मो समाज की तरह न तो यह पाश्चात्य सस्कृति स अत्यधिक प्रभावित है और न आय-समाज की तरह यह राष्ट्रीय सस्था ही है। इस सबध म भी इसने मध्यम वग का अवलम्बन किया। परन्तु राष्ट्रीय भावना के विकास मे इसने योग दिया है।

मराठी जन समुदायो को निराकार की उपासना आदि तत्त्वो के कारण

दयानन्द ने भारतीयों को अकस्मात् ही स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए लडने को नहीं कहा, क्योंकि व उनके सगठन और निर्बलता स पूर्णतया परिचित थे। वास्तविक उन्नति एकता से ही है। कोई भी सामाजिक और आध्यात्मिक बुराइयो म लिप्त रह कर राजनैतिक स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त कर सकती। दासता की शृखलाओ स पूर्व बुराइयो और कुप्रथाओ का बन्धन काटना आवश्यक है। यही मत आगरकर जी का था। तिलक और आगरकर अभिन्न मित्र थ किन्तु पहले सामजिक सुधार या राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्ति विषय पर मतभेद होने के कारण आजीवन दोनो म वाद विवाद रहा। किन्तु तिलक जस सामर्थ्यशाली, सघटना चतुर प्रतिस्पर्धी का विरोध कर जन समुदाय के मतो का अकेल सामना करके, समाज का पुराना ढाँचा उखाडने का कार्य अगीकृत करने मे आगरकरजी ने जिसे तत्वनिष्ठा का परिचय दिया उसकी महाराष्ट्र के अर्वाचीन इतिहास म तुलना नही है।[1]

उन्नीसवी शती के उत्तरार्ध म महाराष्ट्र म राष्ट्रोद्धार के कार्य को प्रगति देने वाले न्या० रानडे न्या० तेलग, गोखले चिपूणकर तिलक आदि जो पाँच छ महान व्यक्ति हुए उनके समकक्ष ही आगरकर थे। तिलक को जस भारत के राजनैतिक विचारो का प्रवाह बदलने का श्रेय दिया जाता है, उसी प्रकार महाराष्ट्र के सामाजिक प्रवाह को बदलने का श्रेय आगरकर को है।

महाराष्ट्र म आगरकर और सामाजिक सुधार का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सन् १८८५ स १८९५ तक सुधार पक्ष का प्रबलता स उन्होने समर्थन किया। दयानन्द स्वामी के समान उनकी भी बुद्धिवाद ही कसौटी थी। दयानन्द स्वामी वेदो को मनाने वाले थे किन्तु आगरकर ने तो स्पष्ट रूप स एव निर्भयता और निस्सदिग्धता स घोषित किया कि-- मिथ्या भ्रामक कल्पनाओ का नाश करने के लिए पूर्वेतिहास एव पूर्वाचार क बल का केवल आधार न लेकर अर्वाचीन न्याय तूणीरो के तीक्ष्ण बाणो स उनकी समाप्ति करनी चाहिए। प्राचीन ऋषियो को जितना अभिनव आचारो का सूत्रपात कर देने का अधिकार था उतना ही हम है।[2] आगरकर न सपूर्णत बुद्धिवादी भूमिका को अपना कर तत्कालीन समाज जीवन का विश्लेषण किया और रूढियो और आचारो की चिकित्सा करके उनके अन्याय एव विसगति का सोदाहरण विवेचन किया।

---

१ प्रा० नलिनी पडित--महाराष्ट्रातील राष्ट्रवादाचा विकास पृ० ८५--

२ आगरकर निबन्ध सग्रह भाग ३ प्रकाशक-बालकृष्ण म० फन्तरे ई०१९१८

व मन व उपासक थे। समाज सतावाद स्त्री स्वातन्त्र्य आदि जो आज का ज्वलन्त समस्याएँ हैं उन पर व साठ सत्तर वष पहले लखनी चला चुके थ। स्पष्ट है—वे भविष्य द्रष्टा थे। लगभग पचास वष पूव उन्होंने जो विचार प्रकट किए थ आज व सवमान्य और सामान्य हो गए हैं। किन्तु आगरकर के युग में जन-समाज में उनके क्रान्तिकारी विचार आत्मसात करने की शक्ति नहीं था। इसलिए उन्हें उस समय पराजित होना पड़ा। उनकी स्पष्टोक्ति के कारण उनका हा नहीं उनकी पत्नी का भी लोकापवाद सहन पड़े और अनेक प्रकार की परेशानियाँ उठानी पड़ीं। लोक जीवित होते ही लोगों न उनकी प्रेतयात्रा निकाली। परन्तु आगरकर अपन विचारों स विचलित नहीं हुए और अपना मत प्रचार ज्यों का त्यों करते रहे।

समाज स सबधित सभी विषयों पर आगरकर जी न अपन सुधारक पत्र में लिखा। उनके सामाजिक विचार व्यक्तिस्वातन्त्र्य समता और बंधुता पर आधारित थ और धार्मिक विचारों पर मिल और स्पेन्सर का प्रभाव था। स्वाथ त्याग और सेवा य दो तत्त्व अपना कर उन्होंने समाज सुधार की कामना की थी। उनके मत के अनुसार समाज गत्यात्मक है। हम चाहें न चाहें वह आग बढ़ता ही रहेगा। परिवतन का रुक जाना मृत्यु है, जड़त्व है। आगरकर की दृष्टि सामाजिक सुधार की ओर अधिक थी। अपन धम स जो अच्छी बातें हैं उनका ग्रहण और बुरी रूढ़ियों का त्याग करते रहना चाहिए, यह उनका मत था। अस्पृश्यता स्त्री शिक्षा विधवा विवाह प्रौढ विवाह तलाक स्वयवर प्रियाराधन सहशिक्षा प्रेम पूजा देवतोत्पत्ति मूर्तिपूजा दाम्पत्य स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार आदि विषयों पर सतर्कपूर्ण मार्मिक, मौलिक एव प्रगतिशील विचार उन्होंने प्रकट किए हैं।

आगरकर जी की जाति निमूलन व्यक्तिवाद तथा समाज सुधार के सबध म क्रान्तिकारक मत राष्ट्रवाद के लिए पोषक थ। तत्कालीन समाज पर इनका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। किन्तु मराठी अर्वाचीन साहित्य तथा कविता ने प्रारम्भ स आगरकरजी की सामाजिक क्रांति की भावना अपना ली और अर्वाचीन मराठी के क्रांतिकारी कवि केशवसुत न विद्रोह का झंडा गाड़ दिया। अर्वाचीन मराठी कविताओं पर आगरकरजी का प्रभाव गहरा है और हिन्दी कविताओं पर नगण्य है।

इस प्रकार अनेक धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनों से भारतीय जीवन में एक नवीन उत्साह एव अद्भुत जागृति आने लगी। जनता म सामाजिक कुरीतियों के लिए घृणा तथा अपन धम और जाति के उत्थान के लिए आकषण बढ़ने लगा। प्रत्येक भारतवासी म अपनी सभ्यता तथा संस्कृति

एव निकृष्ट समझने की प्रवृत्ति हटने लगी और वह देश की स्वतन्त्रता के महत्त्व को अनुभव करने लगा। इसी के फलस्वरूप निष्काम भाव से देश सेवा करने के लिए कई संस्थाएँ भी काय करने लगीं जिनके उद्योग से सम्पूर्ण देश मे राष्ट्र प्रेम का भाव पनपने लगा। इस सब का श्रेय तत्कालीन सांस्कृतिक नेताओं को दिया जा सकता है जिनका संक्षिप्त विवरण हम ऊपर दे चुके हैं। इनके द्वारा डाला हुआ सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का बीज ही बाद मे राजनतिक राष्ट्रीयता मे पुष्पित हुआ। अत कहना न होगा कि इन सांस्कृतिक आंदोलनों से ही राजनतिक राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। इसलिए भारतवर्ष के राष्ट्रीय इतिहास म इन सांस्कृतिक नेताओं की अपार देन कभी भी भुलाई नहीं जा सकेगी।[1]

गांधीवाद

म० गाँधी संसार के महानतम क्रांतिकारी नेताओं म से एक हैं। उनकी अक्सर गौतमबुद्ध और ईसामसीह से तुलना की जाती है। भारतवर्ष और बाहर के देशों के असंख्य मनुष्यों के लिए वह भारतीय परम्परा के श्रेष्ठ तत्त्वों के और जीवन को अहिंसामय बनाने की शाश्वत प्रेरणा के प्रतीक हैं। खान पान रहन-सहन, भाव विचार भाषा और शली, परिच्छेद एव परिधान, वाद्य और चित्रकारी, दशन और सामाजिक व्यवहार, धम कम राष्ट्रीयता भारत म आज जो भी प्रचलित है उनम से प्रत्येक पर कहीं न कहीं गाँधीजी की छाप है।

गाँधीजी कमयोगी व्यावहारिक आदर्शवादी तथा प्रयोगवादी थ। उन्होंने सिफ वही सिखाया जिस पर उन्होंने व्यवहार किया और जिस पर हर एक प्रयत्न करके व्यवहार कर सकता है।

गाँधीजी ने सत्य और अहिंसा को बडा महत्त्व दिया। अहिंसा संसार को भारतवर्ष की सबसे बडी देन है। सच्ची अहिंसा भय नहीं, प्रम स जन्म लेती है निस्सहायता से नहीं सामर्थ्य से उत्पन्न होती है। अहिंसा के बारे म गाँधीजी ने व्यापक रूप स विचार किया और बताया कि अहिंसा के बिना सत्य की खोज असंभव है। गाँधीजी क अनुसार अहिंसा सम्पूर्ण धम की जान है— सत्य की तरह अहिंसा भी सवशक्तिमान और असीम है और ईश्वर के समानार्थक है।[2] अहिंसा सवकालीन सवव्यापक नियम है जिसका जीवन की प्रत्येक परिस्थिति म बिना किसी अपवाद प्रयोग हो सकता है।[3] अहिंसा

---

१ डा० विद्यानाथ गुप्त–हिन्दी कविता म राष्ट्रीय भावना पृ० २०८।

२ गाँधीजी— हरिजन १४–३–३९।

३ गाँधीजी— हरिजन ५–९–३९।

का अथ केवल हत्या न करने तक सीमित नहीं है। दुख देने के लिए प्रयुक्त कठोर शब्द कठोरता पूर्ण निर्णय, दुर्भावना क्रोध निर्दयता घृणा मनुष्यों और पशुओं को यंत्रणा देना दुर्बलों पर अत्याचार और उनका अपमान आदि हिंसा है। गाँधीजी के अनुसार अहिंसा आवश्यक रूप से विधायक और गत्यात्मक शक्ति है। अहिंसा के तीन प्रकार हैं एक वीरों की अहिंसा जो सर्वश्रेष्ठ है, दूसरा व्यावहारिक काम चलाऊ और तीसरा कायरों की जो निष्क्रिय प्रतिरोध मात्र है। आत्मवत् होने के कारण अहिंसा हिंसा के भौतिक बल से असीम गुनी शक्ति शालिनी है। अहिंसा और सत्य का योद्धा सदा अनवरत रूप से सक्रिय रहता है।

गाँधीजी के जीवन और दर्शन का सत्य तो ध्रुवतारा है। गांधीजी ने सत्य के दो भेद किए हैं—एक है साधन या व्रत रूप-सत्य आंशिक या अपेक्षित सत्य जैसा कि असीम व्यक्ति परिस्थिति विशेष में जान पड़ता है। दूसरा है—साध्यपूर्ण सत्य निरपेक्ष सार्वभौम पूर्ण सत्य जो देशकाल से परे है। स्वयं गाँधीजी ईश्वर रूप सत्य के पुजारी हैं सत्य के अतिरिक्त अन्य किसी के नहीं हैं। परन्तु रिचर्ड ग्रेग के अनुसार 'गांधीजी सामाजिक सत्य के क्षेत्र में भी महान् वैज्ञानिक हैं।'[1] सत्य की विजय अटल है। कारण सत्य' का अर्थ जिसका अस्तित्व है और असत्य' का अर्थ है जिसका अस्तित्व नहीं है तो जहाँ असत्य अर्थात अस्तित्व नहीं उसकी सफलता कैसी और जो सत् अर्थात् है' उसका नाश कौन कर सकता है ?

सत्य सर्वोच्च धर्म है। सत्य के लिए अपने प्रियतम वस्तु का भी बलिदान करने के लिए प्रस्तुत रहना पड़ता है। सत्य के पुजारी के लिए पक्षपात टाल मटोल वास्तविकता को छिपाना बढ़ाना दबाना और धोखा देना कोई स्थान नहीं है। गांधीजी के मत में सत्य की अनुभूति के लिए निरन्तर अभ्यास वैराग्य अर्थात इंद्रिय वासनाओं से विरक्ति अहिंसा ब्रह्मचर्य अस्तेय अपरिग्रह के व्रत आवश्यक हैं। परन्तु वास्तव में सत्य की अनुभूति के लिए अत्यन्त आवश्यक अहिंसा ही है। हिंसा की जड़ क्रोध स्वार्थपरता वासना आदि विभाजक पृथक्कारी प्रवृत्तियां में है, इसीलिए हिंसा के द्वारा हम सत्य की प्राप्ति के लक्ष्य तक नहीं पहुँचते। हिंसा असत्य है। अहिंसा और सत्य इतने ही ओतप्रोत हैं जितने कि सिक्के के दोनों बाजू या चिकनी चकरी के दोनों पहलू। तब भी अहिंसा साधन है और सत्य साध्य है। गांधीजी सत्य के

---

१ राधाकृष्णन्—म० गाँधी—पृ० ८०।

२ म० गाँधी—आत्म शुद्धि—पृ० ८।

लिए अहिंसा का बलिदान कर सकते है लेकिन सत्य का त्याग किसी भी वस्तु के लिए नहीं कर सकते। सत्य का अस्तित्व स्थानकाल से परे है जबकि अहिंसा के अस्तित्व का सबध केवल असीम जीवधारियो के पारस्परिक बर्ताव से है। सत्य को त्याग कर अहिंसा नतिक विकास का नहीं अध पतन का साधन बन जाती है। अहिंसा परम साध्य है तो सत्य सर्वश्रेष्ठ धर्म है।

सत्याग्रह का अर्थ है सत्य को मान कर किसी वस्तु के लिए आग्रह करना या सत्य और अहिंसा से उत्पन्न होने वाला बल। सत्याग्रह सत्य के लिए तपस्या है। सत्याग्रह को विरोध कर उसकी प्रमुख शाखाओ असहयोग और सविनय आज्ञा भग का निष्क्रिय प्रतिरोध के साथ स्वीकृत नही करना चाहिए।[1]

व्यक्तिगत और सामूहिक सत्याग्रह का उद्देश्य न तो अन्यायी को दबाना हराना दड देना या उसकी इच्छा को कमजोर बनाना है और न उसको नुकसान पहुँचाना या परेशान करना है यद्यपि वास्तव म सत्याग्रही विरोध से मानवता के नाते प्रेम करना है और उसके उच्चतम अग को प्रभावित करके, उसका हृदय परिवतन करके उसम न्याय भावना जाग्रत करना चाहता है। सत्याग्रही सदा अशुभ को शुभ से क्रोध को प्रेम से असत्य को सत्य से और हिंसा को अहिंसा से जीतने का प्रयत्न करेगा। सत्याग्रही को अन्यायी के भी सत्य के अग की उपेक्षा नही करनी चाहिए। वह समझौते के लिए तयार रहे और झूठी भावना प्रतिष्ठा स मुक्त रहे।

असहयोग अहिंसा के अस्त्रागार म एक प्रमुख शस्त्र है परन्तु वह सत्य और न्याय के अनुसार विरोधी की सहयोग प्राप्ति का साधन है। वह सीधा और साफ माग है हिंसात्मक न होने से सफल भी है। सहयोग स जब अध पात और अपमान होने लगता है या हमारी धार्मिक कल्पनाओ को चोट

---

१ सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध दोनो आक्रमण का सामना करने के झगडो को निपटाने की और सामाजिक एव राजनतिक परिवतन की पद्धतियाँ है। दोनो म भेद है। भेद का कारण यह है कि निष्क्रिय प्रतिरोध जिस रूप म इग्लड म वोट का अधिकार माँगने वाली स्त्रियो और उग्र मत वाले नानकफर्मिस्ट ईसाइयो ने और फासीसियो के विरुद्ध रूर प्रदेश के जमनो ने किया था—काम चलाऊ राजनतिक शस्त्र है। दूसरी ओर सत्याग्रह नतिक शस्त्र है और उसका आधार है शरीर शक्ति की अपेक्षा आत्म शक्ति की श्रेष्ठता। सत्याग्रह म दुबलता घृणा दुर्भावना इत्यादि के लिए स्थान नही है। सत्याग्रह एक व्यापक प्रयोग है।

पहुँचती है, तब असहयोग कर्तव्य हो जाता है। छोटी छोटी नौकरियाँ छोड दी जाँय, जिन्हें पद पदवियाँ तमगे, बिल्ले मिले हो वे उन्हें छोड दें। जो असहयोग न करें, उनका सामाजिक बहिष्कार करना ठीक नही है। स्वयप्रेरित असहयोग ही जनता की भावना की कसौटी है। प्रजा द्वारा घोषित असहयोग म यदि मुल्की और सैनिक अधिकारी सम्मिलित हो जायँ तो फिर जनता जिस राज्य को नही चाहती वह टिक नही सकता और उसकी जगह नवीन राज्य की स्थापना हो जाती है। इसी से नि शस्त्र क्रांति हो जाती है।

गांधीजी न ब्रह्मचय को भी महत्त्व दिया था। सारी इद्रियों के पूण सयम के बिना ब्रह्म का साक्षात्कार असम्भव है। इसलिए ब्रह्मचय का अभिप्राय है मन वचन और कम से हर समय और हर स्थान म सम्पूण इद्रियों का सयम।

ब्रह्मचय के साथ गाँधी जी ने शारीरिक श्रम को भी प्रतिष्ठा प्रदान करने का प्रयास किया। यूरोप म पहले पहल रूसी विचारक बाडारिफ ने शारीरिक परिश्रम के आदश पर बहुत जोर दिया था। इसके प्रचारक बाद में टालस्टाय रस्किन और गांधीजी हुए। शारीरिक परिश्रम का अथ है कि मनुष्य को हाथ-पर की मेहनत से अपना पसीना बहाकर रोटी कमानी चाहिए। उत्पादक श्रम है-कताई बुनाई बढई गिरी, लुहार काम। शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्ति शरीर द्वारा ही होनी चाहिए केवल मानसिक या बौद्धिक श्रम आत्मा के लिए है। वह अपनी स्वय तुष्टि है। उसके लिए मेहनताना नही माँगना चाहिए।

गाँधीजी के किसी प्रकार की भी निजी सम्पत्ति हटाने के सम्बन्ध में विचार कम्युनिस्टो से भी आगे बढ़े हुए हैं। यदि सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व सच्चे और अहिंसक साधना स हो सके, तो गाँधीजी उसके हटाने के पक्ष म हैं। जब तक मनुष्य अपनी तात्कालिक आवश्यकताओ के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के त्याग के लिये तैयार नही है, उन्हें सम्पत्ति के स्वामी की तरह नही उसके सरक्षक (ट्रस्टी) की तरह आचरण करना चाहिए।[1]

---

१ गाँधीजी और मार्क्सवाद दोनो इस बात के विरुद्ध हैं कि व्यक्तिगत सम्पत्ति का दुरुपयोग हो उसको शोषण का साधन बनाया जाय या उसके उपयोग म जनहित की उपेक्षा हो। लेकिन गाँधीजी राज्य के विरुद्ध हैं और उसकी शक्ति को बढ़ाना नहीं चाहते क्योंकि राज्य सदा निधनो का शोषक रहा है। मार्क्सवादियो के प्रतिकूल गाँधीजी पूँजीपतियो और दूसरे सम्पत्तिवालो को-जिनके हाथो म उत्पादन के साधन हैं-सुधार का अवसर देना चाहते

गाँधीवादी दर्शन म आध्यात्मिक विश्वास पर भी बल दिया है। जिस प्रकार शरीर बिना रुधिर के नही रह सकता उसी प्रकार आत्मा को ईश्वर श्रद्धा की अनुपम और शुद्ध शक्ति की आवश्यकता होती है।

गाँधी दर्शन के उपवास आस्वाद अपरिग्रह साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण मद्य निषेध, ग्रामोद्योग गाँव का सफाई नयी या बुनियादी शिक्षा प्रौढ़ शिक्षा राष्टभाषा का प्रचार प्राकृतिक चिकित्सा नतिकता पर बल अगोपनीयता आदि आनुषगिक अग थ।

सक्षप म महात्मा गाँधी का राष्टवाद भारतीय जीवन की शिवभावना से प्रेरित था। उन्होंने स्वतत्रता की साधना का भारतीय जीवन का महान् लक्ष्य निर्धारित किया था। वे देश को विदेशी शासन की दासता से मुक्त कर आध्यात्मिक नतिक आदर्शों स उन्नत उदार सामाजिक विचारा से पूरित तथा सहिष्णु धार्मिक भावना से मडित करना चाहते थे। भारत की आर्थिक विपन्नता का एकमात्र कारण वे पूँजीवादी व्यवस्था को मानते थे। राजनैतिक स्वातन्त्र्य के लिये उन्होंने राष्टव्यापी आन्दोलन किये थे। रचनात्मक कायक्रम की विस्तृत योजना को क्रियान्वित कर देश म स्वराज्य के लिए अनुकूल वातावरण बनाया। गाँधी जी के राष्टवाद म देश के वतमान जीवन को पूर्ण अभिव्यक्ति मिली थी। वह देश जीवन के सभी पक्षो क सुधार विकास एव उन्नति के लिए क्रियाशील थे। गाँधी जी न अपने राष्टवाद म भारतीय जीवन के प्रत्येक पक्ष को सन्निहित कर उसे धम नीति न्याय प्रेम एकता मत्री आदि उच्चादर्शों पर प्रतिष्ठित किया था। देश की अधिकांश जनता को गाँधीजी का राष्टवाद अथवा राष्टीय विचारधारा मान्य थी। भारतीय जनता के क्रियात्मक सहयोग द्वारा उनके आन्दोलनों को सफल बनाया।

गाँधीजी की राष्ट्रीय भावना का भारतीय साहित्य पर अमिट प्रभाव पडा है। मथिलीशरण गुप्त सियारामशरण गुप्त बालकृष्ण शर्मा नवीन सोहनलाल द्विवेदी माखनलाल चतुर्वेदी सुभद्राकुमारी चौहान आदि हिन्दी

है। इसलिए वे इस बात के पक्ष म हैं कि पूँजीपति और सम्पत्तिवान जन मत के दबाव से अपनी सम्पत्ति का प्रबन्ध और उपयोग राष्टहित के लिये करें और उनको सेवा के बदले लाभ का राष्ट द्वारा निर्धारित अश उनके निजी व्यय के लिए मिल जाय।

— मार्क्सवाद के सामाजिक आदर्श क अनुसार भी टस्टी की धारणा अवश्यक है।'

—काका कालेलकर–गाँधीवाद–समाजवाद पृ० ७६३।

कवियों पर स्पष्ट रूप से यह प्रभाव लक्षित होता है। मराठी म भी सानेगुरुजी सेनापति बापट, ताबे की कविताओं पर गहरा प्रभाव है। गांधी-दर्शन से संचालित राष्ट्रीय आंदोलन की ध्वनियाँ तो हिंदी मराठी कविताओं म सुनाई देती हैं। गांधी-दर्शन, गांधी जी का व्यक्तित्व एवं कार्य से भारतीय कविता अत्यंत प्रभावित है।

मार्क्सवाद

मार्क्सवादी दर्शन का मूल अर्थ ही है। मार्क्स ही सर्व प्रथम दार्शनिक था जिसने बताया कि पूँजीवाद का अंत और साम्यवाद की स्थापना अवश्यम्भावी है। उसने हीगल के द्वंद्ववाद को द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का रूप दिया, फ्रांस के काल्पनिक समाजवाद को साम्यवाद म परिणत किया और ब्रिटेन के अर्थ शास्त्र को सामाजिक समस्या से सबद्ध किया। संक्षेप में उसने एक नये समाज शास्त्र की व्याख्या की जिसको ऐतिहासिक भौतिकवाद (Dialectic Materialism) भी कहते हैं।

मार्क्सवाद के अनुसार अर्थ पर ही समाज की शेष व्यवस्थाएँ आश्रित हैं। आदिम युग से आज तक समाज ने जो सांस्कृतिक सामाजिक या राजनीतिक प्रगति की है उसका आधार आर्थिक विकास ही है। मार्क्सवाद के अनुसार समाजवादी रूपों के अतिरिक्त नये समाज म जो दुःख, कष्ट, वैषम्य और असंतोष फैला हुआ है उसका कारण वस्तुओं के उत्पादन और वितरण पर थोड़े से पूँजीपतियों का एकाधिकार है। समाज दो वर्गों म विभक्त है। एक पूँजीवादी वर्ग और दूसरा सर्वहारा वर्ग। समाज से यदि पूँजीवादी वर्ग को नष्ट कर दिया जाय तथा उत्पादन को सीधा मजदूरों को सौंप दिया जाय तो वर्तमान वैषम्य और तज्जनित कष्ट स्वयमेव नष्ट हो जायगा। पूँजीपति का विनाश वर्ग क्रांति द्वारा ही सम्भव है। वर्ग क्रांति के लिए मजदूरों म वर्ग चेतना उत्पन्न करना अनिवार्य है। मजदूर जब तक अपने आपको भेड़ और पूँजीपति को भेड़िया नहीं मानता तब तक वह क्रांति के लिए कभी तत्पर नहीं होगा। मार्क्स और गांधी दोनों ही वर्ग हीन समाज की स्थापना म विश्वास करते हैं। किंतु जहाँ गांधीजी अपने उद्देश्य की पूर्ति म सत्य अहिंसा प्रेम और प्रेम के द्वारा हृदय परिवर्तन म विश्वास करते हैं वहाँ मार्क्स केवल रक्तक्रांति म।

मार्क्सवाद व्यक्ति को समाज से निरपेक्ष इकाई नहीं मानता। उसका विश्वास है कि समाज ही व्यक्ति को व्यक्तित्व प्रदान करता है अतः समाज के सामने व्यक्ति गौण है। व्यक्ति के विचार और आदर्श समाज की आर्थिक स्थिति

के ही परिणाम हैं। यदि समाज की भौतिक स्थिति में परिवर्तन कर दिया जाय तो व्यक्ति की रीति-नीति में स्वतः परिवर्तन हो जायगा।

मार्क्सवाद संसार की मानवता को राष्ट्रीयता रक्त जाति वर्ग अथवा अन्य छोटी छोटी सीमाओं में बाँधने में विश्वास नहीं करता। पूँजीवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप इसका जन्म हुआ है अतः उसे मिटाकर वर्गहीन समाज की स्थापना इसका एकमात्र लक्ष्य है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण विश्व में समानता के आधार पर कार्यक्रम प्रसारित हो। साम्यवादी हिंसात्मक क्रांति का चक्र तब तक चलाना चाहते हैं जब तक समाज सच्चे अर्थों में जनकल्याणकारी, जन स्वतन्त्रता का पोषक राज्य विहीन अन्तर्राष्ट्रीय वैमनस्य तथा विद्वेष की भावना से रहित न हो जाय।

भारत में मार्क्सवाद ने समता स्वातन्त्र्य तथा विश्वबंधुत्व तत्त्वों को प्रोत्साहन देने में सहयोग दिया। पददलित पीड़ितों में उत्थान की भावना भर दी। आर्थिक शोषण सामन्तवाद साम्राज्यवाद पूँजीवाद के विरुद्ध जन-समुदायों में प्रचार कर राजनैतिक स्वातंत्र्य में समाजवाद तत्त्वों को समाविष्ट कराने के लिए बाध्य किया। मार्क्सवाद ने स्वातन्त्र्य संग्राम में योग दिया तथा साम्राज्यवाद के नाश की इच्छा की प्रेरणा प्रदान की।

हिन्दी कविताओं पर मार्क्सवाद के दर्शन का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। हिन्दी में प्रगतिवादी काव्य का मूल स्रोत साम्य वाद ही है और उसमें आर्थिक विषमता को ही विश्व की अशान्ति का कारण स्वीकार कर विश्व भर की किसान मजदूर तथा दरिद्र जनता के उत्थान की एक अन्तर्राष्ट्रीय ध्वनि प्रतिध्वनित होती है। प्रगतिवादी काव्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होते हुए भी राष्ट्रीयता का पोषक है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीयता राष्ट्रीयता पर आधारित है। फिर जिन अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की ओर इंगित किया जाता है वही भारतवर्ष में भी विद्यमान है। अतएव उनका यथार्थवर्णन तथा समाधान विश्वव्यापी होते हुए भी राष्ट्रीय भावनाओं को उत्तेजित करने में सहायक होता है।

हिन्दी के महान कवि पंत निराला सुमन नरेंद्र शर्मा रामविलास शर्मा आदि तथा अनिल कुसुमाग्रज पोवले कांत आदि ने इस तत्त्व दर्शन को अपना कर कविता रचना की है। इस काव्य ने प्रथमतः पीड़ितों दलितों के शोषण उनके दुःख दरिद्रता का वर्णन किया और व्यापक सहानुभूति का परिचय देकर अन्त में क्रांति करने के लिये प्रेरणा दी।

समाजवाद

मार्क्सवाद के कुछ तत्त्वों में भिन्नता रखते हुए समाजवादी समष्टि मंग

ता की कामना म विश्वास रखत हैं। समाजवाद के विषय म डा० भारतन् कुमारप्पा न लिखा है, सेना और उत्पादन व साधनों पर समाज का अधिकार हो और उत्पादन मे जो कुछ प्राप्त हो उसे समाज क विभिन्न अंगो म समान-रूप बराबर बाँट दिया जाय। इस उपाय म आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारो का पूरा लाभ समाज को प्राप्त होगा और अरक्षित असमान विभाजन, गरीबी, बेकारी वगद्वप आदि बुराइयो स समाज की रक्षा होगी। उत्पादन व्यक्तिगत लाभ के लिए न होकर समाज क कल्याण के लिए होगा। प्रतिस्पर्धा क कारण जो बरबादी उत्पादन की होती है वह रुक जायगी। मजदूरो का दुरुपयोग नही होगा और कमजोर राष्ट्र पर बलवान राष्ट्र की गृध्र-दृष्टि नही पडेगी। युद्ध क लिए प्रेरणा का अन्त हो जायेगा। पूँजीवादी व्यवस्था म लाभ के लिए पागल समाज के हृदय स मानवीय विचारो का जो सर्वथा लोप हो गया था उसका पुन उदय होगा और आर्थिक व्यवस्था का एकमात्र उद्देश्य आवश्यकता क अनुसार उत्पादन रह जायगा। सघर्ष, कलह और मारपीट का स्थान सहयोग सद्भाव और शान्ति ग्रहण करेंगे और परस्पर मेल क भाव का उदय होगा। समाजवाद का यही आधार-स्तम्भ है। अर्थात उत्पादन और विभाजन का उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ न होकर समुदाय का लाभ होगा। इसलिए उस व्यवस्था का नाम समाजवाद है जो पूँजीवाद अथवा व्यक्तिवाद का विरोधी है।[1] मानव जगत का मनुष्य समाज बनाना, उत्पीडन और शोषण क स्थान पर समता और शान्ति की स्थापना का वर्ग भेद मिटाना इसका लक्ष्य है। अत समाजवाद का जीवन दर्शन भौतिकवादी है। डा० सम्पूर्णानन्द न अपनी पुस्तक 'समाजवाद' म मार्क्स सम्मत वैज्ञानिक समाजवाद के सबध म लिखा है "वह मनुष्य समाज की हजारो खराबियो को देखता है पर इनम स एक क पीछे नही दौडता क्योकि वह समझता है कि इनम से अधिकाश गौण और उपलक्षण मात्र हैं। वह मूल रोग को पकडने का प्रयत्न करता है कि समुदाय क भीतर वह कौन सी शक्तियाँ हैं जो इस रोग क उच्छेद का प्रयत्न कर रही है।'[2] समाजवाद न्याय और मनुष्यता के नाते पीडितो की अवस्था म सुधार करना नही चाहता। वह धनिको और अधिकारवालो से दया की भिक्षा नही माँगता और न उनके हृदय म परिवर्तन की चेष्टा करता है। वह ससार क लिए क्या उचित और न्याय है इसका आदर्श बनाने भी नही बैठता और न किसी को अपना लक्ष्य मानता है। उसकी परि

---

१ डा० भारतन् कुमारप्पा पूँजीवाद–समाजवाद ग्रामोद्योग, पृ० ९४।
२ डा० सम्पूर्णानन्द–समाजवाद, पृ० ८८।

समाजवाद का वही प्रभाव हिंदी कविताओं पर पड़ा है जो मार्क्सवादी विचारधाराओं का। कारण हिंदी कवियों ने समाजवाद और साम्यवाद के सूक्ष्म भेदों की ओर ध्यान न देते हुए स्थूल रूप से मार्क्सवाद की जो प्रबल, प्रभावकारी क्रांतिकारी विचारधारा है तथा विश्व कल्याण के तत्व हैं उनकी ओर आकर्षित होकर प्रगतिवादी कविता की रचना की है।

राष्ट्रीय आन्दोलन

राष्ट्रीय आन्दोलन का बड़ा व्यापक प्रभाव हिंदी कविताओं पर पड़ा है इसीलिए उसे विस्तार के साथ दे रहे हैं।

भारतीय राजनीति के रंगमंच पर अंग्रेजों का आगमन नाटकीय ढंग से हुआ। वे भारतवर्ष में ईसाई धर्म का प्रचार करने और व्यापार के द्वारा भारत का सोना चाँदी और हीरा जवाहरात लूटने आये थे। अंग्रेजों के पूर्व पुर्तगाली भारत में आ चुके थे और इस देश की राजनीतिक एवं सामाजिक दशा को उन्होंने किंचित प्रभावित भी किया था। गुजरात के बादशाह बहादुरशाह और हुमायूँ में जो युद्ध हुआ था पुर्तगालियों ने उसमें बहादुरशाह का साथ दिया था और बहादुरशाह से बम्बई और बसई के द्वीप पुरस्कार स्वरूप प्राप्त किये थे। सन् १६६१ ई० में यही बम्बई द्वीप पुर्तगाल ने इंग्लैंड के राजा को दहेज में दिया और चार्ल्स द्वितीय ने १६६८ ई० में इस द्वीप को ईस्ट इंडिया कम्पनी को दे दिया था। मछलीपट्टनम मद्रास और हुगली में पहले ही अंग्रेजों की बस्तियाँ निर्मित हो चुकी थीं। सन् १७६९ ई० में औरंगजेब ने उन्हें हुगली नदी में जहाज चलाने का भी अधिकार दे दिया था। इस प्रकार ईसा की सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक भारत में व्यापारिक साम्राज्य स्थापित करने में अंग्रेजों को उत्तरोत्तर सफलता मिलती गई और उन्होंने अपने व्यापारिक साम्राज्य की राजधानी कलकत्ता में स्थापित की।

अंग्रेजों के लिए देश की शंकाग्रस्त राजनीतिक अवस्था पर्याप्त सहायक सिद्ध हुई। राजाओं-सामंतों के पारस्परिक युद्धों सैनिक अत्याचारों और अराजकता से पीड़ित भारतीय जनता को प्रभावित करने के लिए अंग्रेजों के पास एक विकसित प्रशासनिक व्यवस्था थी। औरंगजेब के बाद जब देश की केन्द्रीय सत्ता कमजोर होने लगी और राजा आपस में लड़ाइयाँ लड़ने लगे तब बहती गंगा में हाथ धोने की पग अंग्रेजों को साफ दिखाई पड़ने लगी और इससे लाभ उठाने में उन्होंने एक क्षण भी विलम्ब नहीं किया। भारत में लड़ाइयाँ तो अंग्रेजों ने पहले भी लड़ी थीं किन्तु देश में उनकी धाक बिठाने वाली विजय उन्हें प्लासी के मैदान में सन् १७५७ में मिली और

बक्सर की लडाई सन १७६४ ई० मे जीती जिसमे अवध के नवाब शुजाउद्दौला और बादशाह शाह आलम ने मीर कासिम का साथ दिया था। इस युद्ध म भारतवासियो की पराजय का अर्थ था समस्त भारतीय शक्तियो की पराजय। इस युद्ध से अगरेजो के कदम भारत मे जम गये। पराजित नवाब और बादशाह से, इलाहाबाद म क्लाइव ने अपनी शर्ते मजूर सन १७६५ ई० म करवाई और इस प्रकार मनमाने ढग पर उसने बगाल बिहार और उडीसा की दीवानी प्राप्त कर ली। भारत म अंग्रेजी शासन का वास्तविक आरंभ यही से होता है।

दक्षिण म भी सन १८१८ ई० म पेशवाई को अंग्रेजो ने समाप्त कर दिया।[1] पेशवाई नष्ट होने के बाद भारत म अपनी सब स्वामित्व की स्थापना करने का विचार अगरेजो ने किया। हिन्दुस्तान के किसी भी प्रथम श्रेणी के राज्य पर चढाई न करके उस पर अपना स्वामित्व प्रकट रूप म उन्होंने नहीं जमाया। किसी राज्य म दो पक्ष हो गये तो कमजोर पक्ष को अपना बल देकर उसे सत्ताधारी बना दिया, माडलिको को सार्वभौम सत्ता के विरुद्ध भडका देना और कहीं कहीं नामधारी राजा को अपनाकर प्रजा म फूट डलवा देना इसी प्रकार की भेदनीति के द्वारा उन्होंने अधिकाश राज्य को पराजित किया। बगाल को विजित करने म तो उन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध हिन्दुओं का सरदार सामन्तो के विरुद्ध व्यापारी मध्य वर्ग का दुरुपयोग करके धर्मद्वेष और वर्गद्वेष तक का उपयोग किया। मराठा के समान ही दूसरा बडी शक्ति जिससे अगरेजो को सामना करना पडा वह था हैदरअली। हैदरअली और उसका पुत्र टीपू अंग्रेजो से सघर्ष करते रहे और अन्त म पराजित हुए। अंग्रेज देश के बहुत अधिक भाग के अधिकारी बन चुके थे और उन्होंने अपनी शक्ति भी खूब बढा ली थी जिससे अन्तत सिक्खो और गोरखो का अंग्रेजो द्वारा पराजित होना पडा। इसी प्रकार उन्होंने भारत पर अधिकार प्राप्त किया। "इस भारत विजय म अंग्रेजो को सौ साल लग गये। यहा के रुपयो और यहीं के आदमियो को लेकर अंग्रेजो ने भारत म छोटी बडी १११ लडाइयाँ लडी तब कहीं भारत उनके अधीन हुआ।"[2] इस भारत विजय म अगरेजो ने जिस

१ पेशवाई का ह्रास तीव्र गति से हुआ यदि अगरेज बाजीराव को पद च्युत नहीं करते तो मराठा की सेना म जो अरब सैनिक थे, वे ही विद्रोह कर अपना राज्य स्थापित कर देते। —रा० रा० शा० वालिंबे—महाराष्ट्राची सामाजिक पुनर्घटना।

२ व्ही० व्ही० जोशी क्लैश आफ थ्री एम्पायर्स पेज ६९।

कूटनीतिज्ञता का परिचय दिया उससे भारत की बड़ी क्षति हुई।'[1]

अपनी असीम शक्ति से साम्राज्य विस्तार करने वाले अंगरेजों को भारत में सन् १८५७ में प्रथम बार एक बड़े विप्लव विस्फोट का सामना करना पड़ा। सन् १८५७ की क्रान्ति एक आकस्मिक घटना नहीं है केवल कारतूस में चर्बी होने से यह क्रान्ति नहीं हुई। स्वातन्त्र्यवीर सावरकरजी ने इसे स्वराज्य तथा स्वधर्म का युद्ध कहा है।'[2] बहुत से अंग्रेज लेखकों ने तो प्राय इसे केवल सैनिक विद्रोह के ही नाम से घोषित किया। परन्तु निष्पक्ष भाव से यदि इस विषय में खोज की जाय तो स्पष्ट होगा कि एक ओर यदि सैनिक इस में भाग ले रहे थे तो दूसरी ओर तन मन का मोह छोड़कर देश की बलिवेदी पर न्योछावर होने वाली भोली भाली अधिकांश हिन्दू तथा मुसल्मान जनता थी। इसके अनेक कारण थे। तंजोर सातारा इन्दौर धार ग्वालियर बडौदा नागपुर बुन्देलखंड आदि रियासतों में बड़े परिवर्तन हुए कितनी रियासतें बिल्कुल तहस-नहस हो गयी कितनों की आजादी कम हो गयी और कितनी जमींदारी अवस्था को पहुंच गया। वीर योद्धा घर बैठ गये जनता निराश हो गई, कारकुनों और मुन्शियों का पेशा डूब गया व्यापारियों का व्यापार चौपट हो गया कारीगरों का रोजगार उठने लगा सोना पश्चिम की ओर बहने लगा, खेती पर लोगों की गुजर बसर का कठिन अवसर आया पंडे पुजारियों की वृत्तियाँ बन्द हो गई शास्त्री पंडित निराश्रय हो गये। अंगरेजों ने पलासी युद्ध के पहले ही जिस नीति का प्रवर्तन किया था और जिसे उन्होंने बड़ी प्रचंडता के साथ जारी रखा था और उसी का अन्तिम नतीजा सन १८५७ था। उन्होंने सैकड़ों सन्धि पत्र तोड़ डाले अपहरण नीति का अवलम्बन किया अत्याचार किये जिससे विद्रोह हुआ। इस क्रांति में हिन्दू मुस्लिम सरदार नवाब सैनिक सामन्त, राजा सब सम्मिलित हो गये थे। दिल्ली, अवध, बिहार इन्दौर सागर झाँसी लखनऊ आदि स्थानों पर क्रांति ने सिर उठाया। नाना साहब पेशवा बहादुरशाह झाँसी की रानी तात्या टोपे आदि ने इस विद्रोह में असीम शौर्य प्रकट किया। परन्तु कुछ राजाओं

---

१ डा० पट्टाभी सीतारामय्या– हिस्ट्री आफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस वाल्यूम —१ (१९४६) पेज ८।

२ 'सत्य तो यह है कि हिन्दुस्तान मक्कारी और षडयंत्र से जीता गया।' –मन्मथ गुप्त–भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास (१९६०) पृ०१।

३ स्वातन्त्र्यवीर वि० दा० सावरकर १८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर पृ० ८ (अनु० प० ग० र० वैशम्पायन १९५१)।

के विश्वासघात, विद्रोहियो म सगठन शथिल्य आदि कारणों से यह क्राति अस फल रही। इसकी व्यापकता तथा विशद प्रभाव को देखत हुए इसे सामन्त-वादियो के विद्रोह तक सीमित नही रखा जाता बल्कि यह ऐसा युद्ध था, जो बाद म भारतीयो के लिए स्वतत्रता सग्राम ही बन गया।' इसी सग्राम से स्फूर्ति पाकर राष्ट्र अपने उद्देश्य म सफलता प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्न-शील रहा। "इस महासमर न देशवासियो के मन म स्वतत्रता की एक नव चेतना उदभूत कर दी। निस्सदेह स्वातत्र्य प्राप्ति का यह प्रथम प्रयास और राष्ट्रीय आन्दोलनो म प्रथम सीमाचिह्न था।

आग्ल प्रभुत्व की तीन अवस्थाएँ मानी जाती हैं—
उदय (सन १८१८ स १८५७)
उत्कर्ष (सन १८५८ से १९१९)
अस्त (सन् १९२० से १९४७)

हम उदय के सबध म देख चुके हैं। अब उत्कर्ष को देखेंगे जिसम काग्रेस की स्थापना तिलक की उग्र दल की राजनीति तथा सशस्त्र क्राति के प्रयास य प्रवत्तियाँ प्रमुख हैं।

१८५७ ई० की क्राति के बाद भारत का शासन कम्पनी के हाथ स निकल कर ब्रिटेन के राजा के हाथ म चला गया। १ नवम्बर, १८५८ ई० को लाड कनिंग न दरबार किया जिसम महारानी विक्टोरिया का घोषणा पत्र पढ कर सुनाया गया। इस घोषणा पत्र म यह कहा गया कि भारतीय प्रजा के धम विश्वासो म कोई हस्तक्षेप नही किया जायगा, भारत के परम्परागत रीति रिवाजो का आदर की दृष्टि से देखा जायगा, उद्योगो को प्रोत्साहन दिया जायगा तथा प्रजा अपनी जाति, धम अथवा वण के कारण किसी पद से वचित नही की जायगी। यह भी घोषित किया गया कि प्रजा की उन्नति म शासको की शक्ति है प्रजा के सतोष म उनकी सुरक्षा है तथा प्रजा की कृतज्ञता म उनका पुरस्कार है। इस घोषणा पत्र म यह आश्वासन भी दिया गया कि शासको की इच्छा भारत मे राज्य का विस्तार करने की नही है और देशी नरेशो के सम्मान तथा अधिकारो की रक्षा की जायगी। ईस्ट इडिया कम्पनी न जो सधियाँ आदि की थी वह ब्रिटेन के राजा को भी मान्य होगी।

इस घोषणा पत्र स भारतीय प्रजा को आश्वासन मिला। भारत की प्रजा न यह समझा कि कम्पनी के अत्याचार और अन्याय स भरे हुए शासन स मुक्त होकर वह ब्रिटेन की महारानी के शासन म आ गई है और अब इस घोषणा पत्र के अनुसार हर तरह की सुविधाएँ भारतीयो को दी जायेंगी तथा देश शीघ्र ही सम्पन्न हो जायगा। नरेशो के बाल्ल क्राति और युद्धो के

छाये हुए थे ये टूट गए । १८६१ ई० म इंडियन कौंसिल एक्ट के द्वारा शासन म कुछ सुधार किये गये । स्थानीय स्वायत्त सत्ता का प्रारम्भ १८७९ ई० म हुआ ।

कांग्रेस स्थापना के पूर्व की एक महत्त्वपूर्ण घटना इल्बर्ट बिल का पास न होना था । सन् १८८३ ई० म भारत सरकार के ला मम्बर मि० इल्बर्ट न एक बिल उपस्थित किया कि हिन्दुस्तानी मजिस्ट्रेटो पर से यह प्रतिबन्ध उठा लिया जाय कि व अमरिकन और यूरोपियन अधिकारियो के मुकदमो का फसला नही कर सकते । इस बिल का गोरे लोगो न बडा विरोध किया और वाइसराय लार्ड रिपन को इंग्लड भेज दो तक का षडयत्र रचा । इस पर असली बिल उठा लिया गया और केवल जिलाधीशो तथा जजो के सम्बन्ध म यह सिद्धात मान लिया गया । इससे भारतीयो की आँखें खुली । गोरी जातियो का प्रभुत्व उनकी समझ म आया । इस बिल के द्वारा राष्ट्रीय चेतना को बढ़ने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ । भारतीय यह भी समझने लगे कि यदि उन्ह इस शासन का विरोध करना है तो सबसे पहले सारे देश को एक होना पडेगा । इस अन्याय के शिकार सभी भारतीय थे अत उन सब म एक दूसर के प्रति सहानुभूति का प्रादुर्भाव हुआ । भारत के शिक्षित जन समुदाय को इस प्रकार के प्रश्नो न क्रियात्मक रूप स काय करने की प्रेरणा दी । भारतवष मन ही मन किसी अखिल भारतीय सगठन की आवश्यकता का अनुभव करने लगा ।

भारत का शासन जिन दुगु णो स ग्रस्त था उनकी जडें साम्राज्यवादी नीति म थी । विदशियो स यह आशा नही की जा सकती थी कि व भारतीयो के हित को अपना ध्यय बनाते । शोषण की नीति अग्रजो ने जो अपनाई वह भारत के लिए बिलकुल नवीन थी । शिल्प आदि विनष्ट हो जाने से भारत निधन होता जा रहा था तथा ऊँची सरकारी नौकरियो से भारतीय वचित रखे जाते थे । लाड लिटन के प्रतिगामी शासन ने भारतीयो की राष्ट्रीयता की भावना को उत्तजित किया । प्रस ने इस काय म बहुत योग दिया । रेल तार डाक अग्रेजी शिक्षा आदि की सुविधाओ के कारण लोग एक दूसरे के सम्पर्क म आये और विचारो का आदान प्रदान हुआ । सास्कृतिक आदोलनो के परिणाम स्वरूप देश मे राजनीतिक आन्दोलन का भी श्रीगणेश हो गया था । तीनो प्रसीडसियो म राजनीतिक सगठन पहले स ही थे । १८७६ ई० मे इण्डियन एसोसियेशन, तथा १८८१ ई० मे मद्रास म महाजन सभा की स्थापना हो चुकी थी । बाम्बे प्रेसीडेंसी एसोसियेशन की स्थापना १८८५ म हुई थी । १८८३ ई० म कलकत्ते के इण्डियन एसोसियेशन की नेशनल कान्फेंस

अवसर पर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के द्वारा भारतीयो को राष्ट्र के हित के लिए एकता के सूत्र मे बाँध देने की प्रेरणा मिली थी। ऊपर लार्ड डफरिन जैसे दूरदर्शी अंग्रेज भी इस स्थिति का अध्ययन बड़े ध्यान से कर रहे थे। वे यही श्रेयस्कर समझते थे कि कुछ भारतवासी शिक्षित लोग मिल कर कोई ऐसी संस्था बना लें, जो संवैधानिक ढंग तथा मनोवैज्ञानिक रूप मे विचार विमर्श कर लिया करें तो समय समय पर जनता की विचारधारा का ठीक ठीक पता सरकार को चलता रहेगा। जान पडता है कि एम्० ओ० ह्यूम भारत वर्ष की तत्कालीन परिस्थितियो से भली भांति परिचित थे और वे अनुभव करते थे कि इन देशवासियो मे भीतर भीतर सुलगने वाली आग यदि धीरे-धीरे बाहर न निकली तो यह भीषण विस्फोट बनकर ब्रिटिश राज्य का भस्म सात करेगी। अतएव उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के नाम एक पत्र द्वारा पचास निस्वार्थी देश हितैषियो की माग करके "इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना की जिसका पहला अधिवेशन २७ दिसम्बर १८८५ को बम्बई मे उमेशचन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता मे हुआ। "जिस समय कांग्रेस का जन्म हुआ उस समय हमारा देश गुलामी की सबसे दर्दनाक हालत मे था। उस समय स्पष्ट तौर पर आजादी की बात सोचना, उसका सपना देखना भी हमारे लिए आसान नही था।[1] तो भी कांग्रेस की स्थापना एक युग प्रवर्तक घटना है जिसके गर्भ से आन्दोलन के प्रखर रूप ने जन्म लिया।

इस राष्ट्रीय कांग्रेस की भारतीय इतिहास मे यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है कि उसका दरवाजा सब श्रेणियों और सब जातियो के लोगो के लिए खोल दिया गया। वह सर्वमान्य भारतीय हितो और सब वर्गों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। उसमे सब धर्म सम्प्रदाय और हितो का थोडा बहुत पूर्णता के साथ प्रतिनिधित्व होता है।

कांग्रेस की प्रारम्भिक मांगो पर दृष्टिपात करने से तत्कालीन राष्ट्रीय प्रवृत्ति का इतिहास स्पष्ट हो जायगा। ये मांगे विशेष कर शासन सम्बन्धी थी तथा कुछ का सम्बन्ध भारतीय जन समाज से था। प्रथम चार पाँच वर्ष तक कांग्रेस का लक्ष्य निश्चित नही था। इस कारण महत्त्वपूर्ण राजनैतिक विषयो पर प्रस्ताव प्रस्तुत न किये जा सके। प्रथम अधिवेशन मे कांग्रेस ने भारतीय शासन सम्बन्धी कार्य की जाँच के लिए रायल कमीशन की मांग की था, तथा इंडिया कौंसिल भंग करने का प्रस्ताव किया था।[2] सन १८९० ई० के लग भग कांग्रेस का लक्ष्य तथा उसकी नीति स्पष्ट होने लगी थी देश मे यह संस्था

१ आचार्य नरेन्द्रदेव—राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृ० १३५।
२ एनी बेसण्ट— हाउ इंडिया रॉट फर फीडमया पृ० ३।

अन्तर स्पष्ट होने लगा था। अब इस महासभा ने विनम्र सेवार्थी जनता का प्रतिनिधित्व करने वाला तथा उसके प्रति पूर्ण रूप से उत्तरदायी शासन स्थापना पर बल दिया। थोड़े ही समय में उस दिशा का ध्यान दिया गया था—जिसमें भारत के मंत्रालयों शासन सम्बन्धी सुधारों की ओर इंगित किया गया। सन् १८९२ ई० में कौंसिल्स ऐक्ट स्वीकृत होने पर शासन कार्य की उपेक्षा के प्रति असन्तोष का प्रस्ताव भी किया गया। इस राष्ट्रीय महासभा का विकास मध्य उच्च मध्यवर्गीय समाज में हुआ और शिक्षित वर्ग की उच्च नौकरियों को प्राप्त करने वाली नीतियों तथा इंग्लैंड तथा भारत में एक साथ परीक्षा की मांग रखी गई।

अपने प्रथम अधिवेशन में ही कांग्रेस की जागरूक प्रवृत्ति ने अंग्रेजी स्वार्थ पूर्ण साम्राज्यवादी नीति के कारण उत्पन्न स्वयम्भू मंहिर व्यवस्था का विरोध किया था। देश की अर्थ व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाने के कारण भारतीय हित रक्षा के लिए व्यापारियों के अधिकार, स्वयं नगर बसाने की प्रथा पर तथा सेना के उच्च पद पर भारतीयों को रखने पर बल दिया गया था। १८९१ ई० में कांग्रेस अधिवेशन में प्रस्ताव रखा था— भारतीय लोकमत का सम्मान करके भारतवासियों को प्रोत्साहन देकर इस योग्य बनावें कि वे अपने देश और सरकार की रक्षा कर सकें।'[1]

राष्ट्रीय महासभा की स्थापना के पूर्व राष्ट्रीय भावना प्रधानतः धार्मिक तथा समाज सुधार सबंधी प्रवृति तक ही सीमित थी। जन जीवन में राजनैतिक अथवा प्रशासन सबंधी प्रभावों के प्रति विक्षोभ अन्दर ही अन्दर उभर रहा था उसे मूर्त रूप नहीं मिला था। १८८५ ई० में राष्ट्रीय महासभा की स्थापना के पश्चात् राष्ट्रीय एकता तथा बौद्धिक जागृति आर्थिक व्यावसायिक साधनों के संगठन एवं विकास का सुयोग प्राप्त हुआ। अब विभिन्नता में एकता राष्ट्र वासियों का मूल मंत्र हो गया था। कांग्रेस सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय महासभा थी इससे पूर्व जिन संस्थाओं का आविर्भाव हुआ था वे अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीयता की साधक थी।

राष्ट्रीय महासभा द्वारा प्रस्तुत मांगों प्रस्तावों तथा कार्यों पर विहगम दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका प्रमुख लक्ष्य शासन सबंधी न्यूनताओं को मिटाकर भारतीयों को शासन व्यवस्था में अधिक से अधिक पद तथा अधिकार दिलाना था। अन्य भारतीय जन जीवन से सबंधित समस्याएँ इस युग के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रारम्भ मध्य वर्ग से हुआ था जिसमें अधिक

१ डा० पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास, पृ० २९।

सस्था वकील वरिस्टर, व्यापारियो तथा डाक्टरो की थी। कुछ प्रस्ताव किसानो की दयनीय अवस्था के सुधार के लिए प्रस्तुत किये गये थे, किन्तु प्राय प्रमुख माँगो का स्वरूप शिक्षित उच्च मध्यवर्गीय दृष्टिकोण तथा स्वार्थों के ही अनुकूल था।

प्रारम्भ म राष्टीय सस्था के सदस्यो की नीति ब्रिटिश सरकार के प्रति सहयोग की थी। जन जीवन के हित से सबधित सरकार के प्रत्येक काय के प्रति वे विनम्र भाव से अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करत थ। राष्टीय नेतागण करो, सनिक व्यय-वद्धि शासन की अनुदान एव स्वाथपूण नीति से असन्तुष्ट थ किन्तु उन्होंने किसी प्रकार का प्रत्यक्ष विरोध प्रदर्शित नही किया। शासको द्वारा अधिकतर माँगें अस्वीकृत होन पर भी, उस युग की मनोदशा तथा वाता वरण सक्रिय विरोध के अनुकूल नही थे। राष्टीयता असन्तोष का उच्छवास के रूप म व्यक्त होकर ही पूण हो गई थी।[1] राष्टीय भावना राजभक्ति का आँचल पकडे थी उसम पथक होने का साहस नही आ पाया था। ब्रिटिश पार्लियामेंट प्रजातन्त्र पद्धति की जननी होने के कारण इनकी आदश थी। अग्रेजो की उदारता, न्याय विधान तथा सत्यता से विश्वास पूणतया नही उठा था। इस युग की राजभक्ति के सबध म किसी प्रकार का दोपारोपण करना असगत होगा।

राष्टीय भावना का विकास उत्तरोत्तर होता गया। सवप्रथम सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दो म सन १८९७ मे स्वराज्य अथवा स्वशासन का अस्पष्ट एव धुधला सा चित्र मूत हुआ।[2] व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के विषय म भी पुकार की गई तथा राजनीति का स्वर धीमा पडता गया। लोकमान्य तिलक के राष्टीय क्षेत्र म प्रवेश तथा राजद्रोह म दडित होने स राष्टीय भावना म उग्रता आई। १९०० ई० के पश्चात राष्टीय नताओ की नीति उपनिवेशो के ढग का स्वशासन बन गई तथा काग्रेस देश के समस्त शिक्षित वग की राष्टीय भावनाओ का प्रतीक हो गई। शासको की कठोर नीति तथा दमन प्रणाली के आघात से राष्टीय भावना का विकास अधिक तीव्र गति से होने लगा और बीसवी शता दी ने जन जीवन म नवीन उत्साह का रग घोल दिया। इस नवीन शताब्दी म लोकमान्य तिलक के रूप मे राष्टीयता मूतमती हो उठी। इनके राष्टवादी सिद्धान्त उग्रदली नताओ स भिन्न थ। य पश्चिम

---

१ डा० पटटाभि सीतारम्मैया—काग्रेस का इतिहास, पृ० ५७।

२ गुरुमुख निहालसिह—भारत का वधानिक एव राष्टीय विकास प० १३५। अनु० सुरेश शर्मा—आत्माराम एड सस १९५२।

अधिक शक्तिशाली होती जा रही थी। अत इस महासभा ने जिसमें देशवासी जनता का प्रतिनिधित्व करना चाहा तथा उसके प्रति पूर्ण रूपेण उत्तरदायी शासन व्यवस्था पर बल दिया। शासन पद्धति के उस चिह्न का स्वागत किया गया था—जिसमें भारत के मतानुकूल शासन सम्बन्धी सुधारों की ओर इंगित किया गया। सन् १८९२ ई० में कौंसिल एक्ट क्रियान्वित होने पर शासन वर्ग की उदारता के प्रति धन्यवाद का प्रस्ताव भी किया गया। इस राष्ट्रीय महासभा का विकास सबसे उच्च मध्यवर्गीय समाज में था और सिविल सर्विस की उच्च नौकरियों को प्राप्त करना चाहती थी अतः परीक्षा का इंग्लैंड तथा भारत में एक साथ करने की माँग रखी गई।

अपने प्रथम अधिवेशन में ही कांग्रेस की जागरूक प्रवृत्ति ने अंग्रेजी स्वार्थपूर्ण साम्राज्यवादी नीति के कारण उत्पन्न व्ययपूर्ण सैनिक व्यवस्था का विरोध किया था। देश की अर्थ व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाने के कारण भारतीय हितों की रक्षा के लिए देशवासियों का अधिकार स्वयं शासन बनाने की प्रथा पर तथा शासन के उच्च पदों पर भारतीयों को रखने पर बल दिया गया था। १८९१ ई० में कांग्रेस अधिवेशन में प्रस्ताव रखा था— भारतीय लोकमत का सम्मान करके भारतवासियों को प्रोत्साहन देकर इस योग्य बनायें कि वे अपने देश और सरकार की रक्षा कर सकें।[1]

राष्ट्रीय महासभा की स्थापना के पूर्व राष्ट्रीय भावना प्रधानतः धार्मिक तथा समाज सुधार संबंधी प्रवृत्ति तक ही सीमित थी। जन जीवन में राजनैतिक अथवा प्रशासन संबंधी प्रभावों के प्रति विक्षोभ अन्दर ही अन्दर उभर रहा था उसे मूर्त रूप नहीं मिला था। १८८५ ई० में राष्ट्रीय महासभा की स्थापना के पश्चात राष्ट्रीय एकता तथा बौद्धिक नैतिक आर्थिक व्यावसायिक साधनों के संगठन एवं विकास का सुयोग प्राप्त हुआ। अब विभिन्नता में एकता राष्ट्रवादियों का मूल मन्त्र हो गया था। वास्तविक अर्थों में राष्ट्रीय महासभा की इसके पूर्व जिन संस्थाओं का आविर्भाव हुआ था वे अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीयता की साधक थी।

राष्ट्रीय महासभा द्वारा प्रस्तुत माँगों प्रस्तावों तथा कार्यों पर विहंगम दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका प्रमुख लक्ष्य शासन संबंधी न्यूनताओं को मिटाकर भारतीयों को शासन व्यवस्था में अधिक से अधिक पद तथा अधिकार दिलाना था। अन्य भारतीय जन जीवन से संबंधित समस्याएँ इस युग के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रारम्भ मध्य वर्ग से हुआ था जिसमें अधिक

---

१ डा० पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास, पृ० २९।

सस्या वकील, बैरिस्टर, व्यापारियों तथा डाक्टरों की थी। कुछ प्रस्ताव किसानों की दयनीय अवस्था के सुधार के लिए प्रस्तुत किये गये थे, किन्तु प्राय प्रमुख माँगों का स्वरूप शिक्षित उच्च मध्यवर्गीय दृष्टिकोण तथा स्वार्थों के ही अनुकूल था।

प्रारम्भ में राष्ट्रीय संस्था के सदस्यों की नीति ब्रिटिश सरकार के प्रति सहयोग की थी। जन-जीवन के हित से सबधित सरकार के प्रत्येक कार्य के प्रति वे विनम्र भाव से अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करते थे। राष्ट्रीय नेतागण करों, सैनिक व्यय-वृद्धि, शासन का अनुदान एव स्वार्थपूर्ण नीति से असन्तुष्ट थे किन्तु उन्होंने किसी प्रकार का प्रत्यक्ष विरोध प्रदर्शित नहीं किया। शासकों द्वारा अधिकतर माँगें अस्वीकृत होने पर भी, उस युग की मनोदशा तथा वातावरण सक्रिय विरोध के अनुकूल नहीं थे। राष्ट्रीयता असन्तोष की उच्छ्वास के रूप में व्यक्त होकर ही पूर्ण हो गई थी।[1] राष्ट्रीय भावना राजभक्ति की आँचल पकड़े थी उससे पृथक होने का साहस नहीं आ पाया था। ब्रिटिश पार्लियामेंट प्रजातत्र पद्धति की जननी होने के कारण इनकी आदर्श थी। अग्रेजों की उदारता न्याय विधान तथा सत्यता में विश्वास पूर्णतया नहीं उठा था। इस युग की राजभक्ति के सबध में किसी प्रकार का दोषारोपण करना असगत होगा।

राष्ट्रीय भावना का विकास उत्तरोत्तर होता गया। सर्वप्रथम सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दों में सन १८९७ में स्वराज्य अथवा स्वशासन का अस्पष्ट एव धुधला सा चित्र मूर्त हुआ।[2] व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के विषय में भी पुकार की गई तथा राजनीति का स्वर धीमा पडता गया। लोकमान्य तिलक के राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रवेश तथा राजद्रोह में दडित होने से राष्ट्रीय भावना में उग्रता आई। १९०० ई० के पश्चात राष्ट्रीय नेताओं की नीति उपनिवेशों के ढग का स्वशासन बन गई तथा काग्रेस दल के समस्त शिक्षित वर्ग की राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतीक हो गई। शासकों की कठोर नीति तथा दमन प्रणाली के आघात से राष्ट्रीय भावना का विकास अधिक तीव्र गति से होने लगा और बीसवीं शताब्दी ने जन जीवन में नवीन उत्साह का रग घोल दिया। इस नवीन शताब्दी में लोकमान्य तिलक के रूप में राष्ट्रीयता मूर्तमती हो उठी। इनके राष्ट्रवादी सिद्धान्त उदारदली नेताओं से भिन्न थे। ये पश्चिम

---

१ डा० पट्टाभि सीतारम्मैया–काग्रेस का इतिहास, पृ० ५७।

२ गुरमुख निहालसिंह–भारत का वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास पृ० १३५।
अनु० सुरेश शर्मा–आत्माराम एड सस १९५२।

की भौतिकवादी विचारधारा को भारतीय जीवन तथा राष्ट्र की उन्नति के लिए अनुपयोगी मानते थे। ये भारतीयता के पूर्ण पक्षपाती थे, प्रथम अर्थात् भारतीय जीवन द्वारा आध्यात्मिकता तथा राजनीति की ठोस आधार भूमि पर वे राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। वे धर्म और समाज की रूढ़ियों और अन्धविश्वास के घोर विरोधी थे। इन्होंने देश के नव जागरण के लिए भारतीय मूल्यों की खोज की।[1] सन् १८९९ ई० से १९०४ ई० तक राजनीतिक क्षेत्र में अखण्ड शान्ति रही किन्तु सन् १९०५ ई० में प्रबल वेग से राष्ट्रीयता की आँधी चल पड़ी तथा एक नवीन अध्याय का प्रारम्भ हुआ।

नई शताब्दी के आरम्भ में देश की नवीन परिस्थितियों के अतिरिक्त विदेशों में घटित होने वाली घटनाओं का भी भारतीय राष्ट्रीय चेतना के विकास पर प्रभाव पड़ा। विदेशों में घटने वाली दो प्रमुख घटनाएं थीं जिन्होंने भारतीय राजनीतिक मस्तिष्क का मंथन कर उनकी राष्ट्रीय भावना के उद्बोधन में सहयोग प्रदान किया। ये घटनाएं थीं—१८९६ ई० में एबीसीनिया निवासियों द्वारा इटली की पराजय तथा १९०५ ई० में जापान के विरुद्ध रूस की हार। वस्तुतः १९०४ ई० तक बार-बार प्रताड़ित होने के कारण एशियावासियों की धारणा हो गयी थी कि वे यूरोपीय राष्ट्रों का मुकाबिला नहीं कर सकते। परन्तु जापान की रूस पर विजय ने यूरोपीय अजेयता का भय छिन्न भिन्न कर दिया। एशिया के पददलित दुर्बल राष्ट्रों में राष्ट्रीयता की एक नई लहर प्रवाहित हुई। '१९०५ ई० का वर्ष हमारे स्वातन्त्र्य आन्दोलन के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस वर्ष मृत प्राय जनता में जिसने अपनी शक्ति और स्वतन्त्रता खो दी थी नवजीवन का संचार हुआ।'[2] जापान ने भारत को अंग्रेजों के निरंकुश एवं घातक बंधन से मुक्त होने की प्रेरणा दी तथा उसका पथप्रदर्शन किया। सम्पूर्ण एशिया में नवयुग का प्रारम्भ हुआ। मैजिनी, गैरीबाल्डी आदि राष्ट्र निर्माताओं की कृतियों का भी शिक्षित वर्ग पर प्रभाव पड़ा।

इसके साथ ही प्रतिक्रियावादी निरंकुश शासक लार्ड कर्जन की कठोर नीति ने राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्रदान की। कलकत्ता कारपोरेशन के अधिकारों में कमी कर दी गयी विश्वविद्यालयों को सरकारी नियन्त्रण में लाया गया जिससे शिक्षा महंगी हो गई लार्ड कर्जन के द्वारा पूर्वी देशों के चरित्र

---

१ डा० रघुवंशी—भारत का सांवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास पृ० १५१।
२ आ० नरेन्द्र देव— राष्ट्रीयता और समाजवाद ।

को असत्यमय बताया गया और निर्धन पर आक्रमण हुआ। अन्त में बंगाल का विभाजन किया, जिसने राजभक्त देश की कमर तोड़ दी। जब शासकों की नीति अपने नग्न रूप में देशवासियों के सम्मुख आई और इस रहस्य का उद्घाटन हो गया कि बंगाल विभाजन का मूल उद्देश्य प्रशासनिक सुविधा न होकर, साम्प्रदायिक विरोध बनाकर नई राष्ट्रीयता को कुचलना था।[1] बंग भंग ने सम्पूर्ण देश की राष्ट्रीय भावना को चुनौती दी। इसने व्यापक आंदोलन को जन्म दिया। जनमत बंग भंग का घोर विरोध कर रहा था फिर भी इसका कुछ फल न हुआ उल्टे दमन ने और भी उग्र रूप धारण कर लिया। विद्यार्थियों के ऊपर यह प्रतिबन्ध लगाया गया कि वे राजनीति में भाग न लें। इसका फल यह हुआ कि स्कूल और कालेजों का बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन और भी बढ़ा। स्वदेशी का आंदोलन सारे देश में व्याप्त हो गया और हाथ के कपड़े का उद्योग पुनर्जीवित हो गया। सरकार के द्वारा 'युगांतर', 'सन्ध्या' 'वन्देमातरम्' आदि पत्र बन्द कर दिए गए और १९०८ ई० तक स्थिति बहुत गंभीर हो गयी। १९०८ ई० में तिलक को गिरफ्तार कर के छः साल के लिए "देश निकाला" की सजा दी गई। १९०८ ई० में राजद्रोही सभावरोधी कानून और प्रेस ऐक्ट जनता के विरोध के होते हुए भी पास किए गए। १९१० ई० में "क्रिमिनल ला एमेंडमेंट ऐक्ट" बना। १९११ ई० में दिल्ली में दरबार हुआ जिसमें इंग्लैंड के सम्राट ने घोषणा कर बंग भंग रद्द कर दिया।

१९०६ ई० में कलकत्ता के अधिवेशन में दादाभाई नौरोजी ने स्वराज्य की माँग की। १९०७ ई० में सूरत कांग्रेस के अवसर पर उग्र अर्थात गरम दल और सौम्य अर्थात नरम दल का परस्पर विच्छेद हो गया। नरम दल ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत औपनिवेशिक स्वराज्य को ही अपना लक्ष्य और वैधानिक कार्यों का साधन मानता था। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक किसी भी क्षेत्र में इन्हें क्रांति रुचिकर न थी। कानून के राज्य को धक्का देना उनका ध्येय नहीं था। नरमदल के वैधनीति के जन्मदाता श्री रानडे माने जाते हैं। और आगे भी उनके पट्ट शिष्य श्री गोखले के नेतृत्व में मोतीलाल नेहरू मदनमोहन मालवीय फिरोजशाह मेहता आदि इसी राजनीति को अपनाकर चलते रहे। ये लोग ब्रिटेन से संबन्ध बनाये रखना आवश्यक समझते थे क्योंकि ये उच्च मध्य वर्ग के थे जो ब्रिटिश शासन शिक्षा और संस्कृति की देन थी।

---

१ ए० सी० मजूमदार इण्डियन नेशनल इवोल्यूशन–पृ० २०७।

गरमदल के दो प्रकार थे—एक हिंसावादी क्रान्तिकारी और अहिंसावादी क्रान्तिकारी । अहिंसावादी क्रान्तिकारी के नेता थे तिलक जिन्होंने देश के युवकों में क्रान्ति की भावना जगाकर कांग्रेस को शक्तिशाली बनाया । पूर्ण स्वराज्य उनका ध्येय था बहिष्कार और निष्क्रिय क्रान्ति साधन मार्ग था । इनके साथ देनेवाले लाला लाजपतराय विपिनचन्द्र पाल थे ।

दादाभाई नौरोजी की स्वराज्य माँग वास्तव में कुछ शासन सुधारों तक ही सीमित थी जिसके परिणाम स्वरूप १९०९ में मिन्टो मार्ले रिफार्म योजना के रूप में कुछ शासन सुधार हुए । इसके साथ पृथक निर्वाचन का सिद्धान्त भी प्रारम्भ कर दिया गया जिसके कारण साम्प्रदायिकता का ऐसा विषैला बीज भी आरोपित हो गया जो समय पाकर देश के विभाजन का कारण बना ।

सन् १९१४ में प्रथम महायुद्ध छिड़ा । इंग्लैण्ड ने फ्रांस रूस तथा अन्य मित्र राष्ट्रों के साथ मिलकर जर्मनी और टर्की की सम्मिलित शक्ति से युद्ध प्रारम्भ किया । प्रारम्भ में इसके प्रति भारत की जनता उदासीन थी । किन्तु राष्ट्रीय नेताओं ने जनता को सरकारी सहायता के लिए तत्पर किया । नरम दल के साथ उग्र दल के राष्ट्रवादी नेता लो० तिलक ने भी कारावास से मुक्त होकर भारतीयों को सम्राट सरकार को यथा सामर्थ्य सहायता देना कर्तव्य बतलाया । युद्धकाल में दोनों राष्ट्रीय दल अर्थात नरम और गरम दल तथा हिन्दू मुसलमान नेताओं में किसी प्रकार का विरोध नहीं था और राष्ट्रीय ऐक्य भावना को भी विकास मिला । भारत ने युद्ध में इस आशा से अंग्रेजों का साथ दिया कि वे उनकी सेवा से प्रसन्न होकर स्वशासन का अधिकार दे देंगे जिससे वह संघ साम्राज्य का एक अंग बन जायेगा । भारतीय सैनिकों ने भी विदेशों में अद्भुत वीरता साहस, तथा धैर्य का परिचय दिया । भारतीय सैनिकों के पराक्रम से एशिया और यूरोपीय देशों में भारतीय सेना के सबंध में सम्मान की भावना बढ़ी । देश ने महायुद्ध में विदेशी सरकार की सहायता अवश्य की थी किन्तु उसका राष्ट्रीय कार्यक्रम समाप्त नहीं हुआ था । राष्ट्रीय आन्दोलन की गति पूर्ववत बनी रही अर्थात् भारतीय शासन व्यवस्था की नीतियों की तीव्र आलोचना होती रही और श्रीमती एनी बेसेण्ट तथा लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में स्वशासन के उद्देश्य से वैधानिक आन्दोलन क्रियान्वित हुए ।

श्रीमती एनी बेसेण्ट ने होमरूल आन्दोलन के पुनीत कार्य द्वारा स्वदेशी शिक्षा तथा होमरूल का कार्यक्रम जीवित रखा । लोक० तिलक ने श्रीमती एनी बेसेण्ट का साथ दिया । १९१७ ई० में यह आन्दोलन अपने चरम पर

पहुच गया। श्रीमती एनी बसेण्ट, अरण्डेल तथा वाडिया को सरकार ने नजरबन्द किया। सन् १९१६ ई० म लखनऊ म काग्रेस का एक महत्त्वपूण अधिवेशन हुआ जिसम हिंदू मुस्लिम एकता की भावना उदभूत हो उठी। तुर्की के विरुद्ध अग्रेजा की लडाई के कारण भारतवप क मुसलमान भडक उठे। मौलाना मुहम्मद अली, शौकत अली आदि मुस्लिम नेता नजरबद कर डाले गये। मुस्लिम जनता मे रोप की अग्नि और भी प्रचण्ड होने लगी और वह काग्रेस के साथ मिलकर अग्रेजा के विरुद्ध काय करने लगी। इसी अधिवशन मे कांग्रेस के दोना दला म समझौता हो गया। काग्रेस सुदढ सस्था के रूप म सम्पूण जनता का प्रतिनिधित्व करने लगी। इसी समय सरकार का दमन चक्र जोरो पर था।

तिलकजी के अहिंसावादी क्रातिकारी माग को न अपना कर शासन वग के दण्डनीति एव दमन चक्र की प्रतिक्रिया रूप म हिंसात्मक क्राति माग को स्वतत्रता प्राप्ति का साधन बनाने वाला साहसी युवको के वग का उदय हुआ। य युवक स्वातन्त्र्य-वेदी पर अपनी बलि चढाने के लिए सज्ज थे। महाराष्ट्र म अभिनव भारत बगाल म "युगान्तर पजाब म गदर पार्टी आदि क्राति दल स्थापित हो गये। हिंसात्मक क्रातिकारियो के नेता थे– स्वातन्त्र्यवीर वि० द० सावरकर, भूपेंद्रनाथ दत्त अश्विनीकुमार दत्त वारीन्द्र घोष। इन क्रातिदलो मे नवयुवको का सगठन किया जाता था उन्हे शारीरिक व्यायाम शस्त्रोपयोग और शक्ति उपासना की शिक्षा दी जाती था। क्रातिकारी साहित्य पढ़ा जाता था और अनुशासन पालन और दल के भेद को गुप्त रखने को सिखाया जाता था। बम बनाने की शिक्षा दी जाती थी। बन्दूका और अन्य शस्त्रो की चोरी की जाती थी और विदेशा से शस्त्रो को क्रय करके भारत मे गुप्त रूप से लाया जाता था। चन्दे तथा दान द्वारा और साथ ही क्रातिकारी डकैतियो द्वारा धन की व्यवस्था की जाती थी। इनके शौय, धैय, साहस पौरुष ज्वलत देशाभिमान आदि गुण सराहनीय थे। समाज और राष्ट्र के अपमान का प्रतिशोध लेकर इन तेजस्वी वीरो ने समाज और राष्ट्र के सम्मान की रक्षा की।

सन् १८९७ म महाराष्ट्र म चाफेकर ने अत्याचारी रड की हत्या की। १९०८ इ० म मुजफ्फरपुर के अप्रिय जज का हत्या करने क उद्योग म गाडी पर बम फेंका गया जिसम दो अग्रेज महिलाओं का हत्या हुई। खुदीराम बोस के नेतृत्व म यह काय हुआ था अत उन पर मुकदमा चलाया गया और उन्हे फाँसी दी गयी। बगाल के अतिरिक्त अन्य प्रान्ता म भी यह दल सक्रिय हुआ। १९१२ म लाड हार्डिंग पर बम फेंका गया। महाराष्ट्र म इसके प्र

वासुदेव बल्वत फडके थे, जिन्होने सशस्त्र विद्रोह किया था। इस प्रकार पुलिस अधिकारियो, अभियोग निर्णय करन वाले मजिस्ट्रेटो सरकारी वकीलो और सरकारी गवाहो को आतकित करने के लिए इस दल ने हत्याएँ की डक तियाँ डाली और निर्भयता स काम किया। १९१०-११ ई० म बगाल महा राष्ट्र मध्यभारत म क्रान्तिकारी विस्फोट हुए। यहाँ यह स्मरणीय है कि काग्रेस के मच से इन हत्याओ और आतकवादी प्रवृत्तियो का समथन नही हुआ, बल्कि भत्सना हुई। आतकवादी दल की प्रवृत्तियाँ कहा प्रकट और कही गुप्त रूप से भारतीय राजनीतिक क्षेत्र म निरतर चलती रही थी। वायसराय पर बम मनपुरी षडयत्र काकोरी षडयत्र जस अनेक षडयत्रो का सबध आतकवादी दलो से है। आतकवादी धारा म आगे कई ज्योतिष्क पिंड चमक उठे—भगत सिह बटुकेश्वर दत्त चद्रशेखर आजाद योगश चटर्जी मन्नलाल धीग्रा पिगले काहेरे आदि। आतकवादियो म देशभक्ति की उत्कटता सर्वोपरि थी। आतकवादी आन्दोलन भारत के अतिरिक्त यूरोपीय महाद्वीप म भी भारती क्रातिकारी समुदाय के लोगो ने पूरी शक्ति से प्रारम्भ किया जिसके नेता श्यामजी कृष्ण वर्मा एम० आर० राना और कामा दम्पति थे।[1] इस आन्दो लन ने राष्ट्र की जागति का हुकार विश्व को सुनाया।

इन क्राति दलो के भीषण भागो स ब्रिटिश साम्राज्य भी भयभीत होने लगा। अँग्रज यह तो जानते थे कि एक दिन उन्हे स्वराज्य प्रदान करना ही होगा और भारतवासी यदि क्राति का माग अपनायेंगे तो ब्रिटिश साम्राज्य स उनका सबध विच्छेद हो जायगा किन्तु यदि अग्रज उन्ह सुधार माग पर ल चलेगे तो पारस्परिक लाभ और सदभाव के आधार पर सहयोग स्थायी हो सकता है। दूसरी बात यह थी कि क्रान्तिकारियो को जन समुदाय का सम थन प्राप्त नही हो रहा था। परन्तु हम यह जानना होगा कि जिस समय वन्देमातरम कहन पर लोग मारे जाते थे जन-आन्दोलन जब स्वप्न था उस जमाने मे इन लोगो ने जो हिम्मत की वह बहुत महत्त्वपूण है।[2] क्रातिकारी आन्दोलनो को शात करने के लिए मोल मिंटो जस सुधार अँग्रज घोषित करते थे। इस समय भी सरकार को राष्ट्रवादियो की शक्ति का आभास हो गया। फिर अँग्रजी सरकार ने माटेग्यू द्वारा यह घोषणा कराई कि ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य है कि भारतवष म उत्तरदायित्व पूण शासन का शन शन स्था

---

१ गुरुमुख निहालसिंह—भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास प० १८८।

२ मन्मथनाथ गुप्त—भारतीय क्रातिकारी आन्दोलन का इतिहास (१९६०) प० ५१।

पना हो और इसका प्रारम्भ प्राता म हो । इस विषय पर और सरकार से राजनीतिक प्रश्नो पर सलाह करने के लिए माण्टेग्यू भारत आने वाले हैं । इस घोषणा न विद्रोह की प्रबलता को क्षणिक शाति दी । साथ ही नरम दल और उग्र राष्ट्रवादियो म फूट पड गई । माण्टेग्यू मिशन ने परामर्श तथा जाँच का काय प्रारभ किया, जिसके फलस्वरूप भारतमत्री और वाइसराय ने सुधारो की एक सयुक्त याजना प्रस्तुत की । माण्टेग्यू चेम्सफोड सुधार के नाम स इसे सबोधित किया जाता है । यहा योजना बाद म १९१९ के गवनमट आफ इडिया ऐक्ट के रूप म प्रस्तुत की गइ । इसमे तीन बातें महत्त्वपूण थी—उत्तरदायी शासन का प्रारम्भ देशी नरेशो का भारतीय शासन मे—विशेषकर देशी राज्यो से सबधित विषयो म सहयोग, और द्वध शासन व्यवस्था का प्रवतन । प्रातीय स्वायत्तता के लिए दो महत्त्वपूण बातें प्रारम्भ हुइ, उच्च सत्ता के नियत्रण से स्वतत्रता और जनता के प्रति शक्ति का हस्तातरण । प्रान्तीय विषयो को दो वर्गों म विभाजित किया गया था— सरक्षित और हस्तानरित । प्राय सभी महत्त्वपूण विषय सरक्षित श्रेणी म रखे गये थे और हस्तातरित विषयो मे ही भारत मत्री और भारत सरकार के नियत्रण मे कुछ कमी आई था । प्रातीय सरकारो को पूण रूप स स्वायत्त नही बनाया था । उन्हे अब भी सपरिषद गवनर जनरल की आज्ञाओ का पूणतया पालन करना आवश्यक था । राजनतिक सुधारो की न्यूनता से असतोष बढा और युद्धकाल में देशवासियो ने जिस आशा स सरकार की सेवा और सहायता की उस गहरा आघात पहुँचा । वास्तव म जनता कुछ अरमान लिए बठी थी, इन सुधारो ने 'हिन्दुस्तानियो के जले घाव पर नमक लगा दने का काय किया । हिन्दुस्तान का यह राष्ट्रीय अपमान था ।'[1] इधर १९१८ ई० म युद्ध समाप्त हुआ । भारतीय स्वराज्य का स्वप्न देख रह थे परन्तु उनकी युद्ध म अपनी वीरता, वित्त-व्यय तथा उदारता के लिए उपहार मिला 'रौलट ऐक्ट' जिसके अनुसार किसी को भी मुकदमा चलाए विना सरकार गिरफ्तार कर सकती थी । गाधीजी ने इसके विरुद्ध सत्याग्रह का शखनाद किया देश के कोने कोने म ३० माच तथा ६ अप्रल को हडताल हुइ, कई स्थानो पर विद्रोह की ज्वाला भडकी तथा राष्ट्रीय कायक्रम का आयोजन किया गया । सरकार ने भी इसके दबाने मे कोई कसर न छोडी । माशल ला लगाए गए तथा अनेक अमानुषीय उपायो का प्रयोग किया गया । इस दमन नीति को अपनाते हुए १३ अप्रल १९१९ ई० मे जनरल डायर ने अमतसर के जालियावाला बाग मे-असतुष्ट

---

१ ठाकुर राजबहादुरसिंह- काँग्रेस का सरल इतिहास''–पृ० २१७ ।

नि शस्त्र एव निरीह भारतीय जनता पर तब तक गोलियाँ बरसाइ जब तक वे समाप्त न हो गइ। पजाब की यह घटना अमानुषिक और बबरतापूण थी। इसस दश के जन जीवन का रक्त उबल गया। यह दुघटना भारतीय इतिहास म विदेशी शासको के पाशविक कृत्यो की रक्त स अकित कथा है। गांधीजी तथा अय राष्ट्रीय नताओ को हार्दिक दु ख हुआ। गांधीजी न सावजनिक जीवन मे प्रवेश किया जिससे राष्टवाद के इतिहास म एक नवीन गति मिली।

१ अगस्त १९२० म तिलकजी की मृत्यु के साथ भारतीय राष्ट्रवाद का एक युग समाप्त होता है। सन् १८९५ से १९२० तक लोकमान्य तिलक के राष्ट्रवादी विचारो का प्रभाव अधिकाश देशवासियो पर पडा था। भारतीय राजनीति क्षत्र म गांधीजी के प्रवेश के पूव ही लोकमान्य तिलक जसे महा पुरुष देशवासियो के सम्मुख भारतीय आध्यात्मिकता की सुदृढ आधारशिला पर आधारित राष्ट्रीयता का सुमुन्नत रूप प्रस्तुत कर चुके थे। 'सवप्रथम तिलक ने राष्टवाद को उदारवादियो की घोषणाओ तथा वक्ताओ की परि सीमा से मुक्त कर व्यावहारिक सत्य का रूप प्रदान किया था। उनके व्यक्ति त्व का राष्टनिर्माण पर बहुत प्रभाव पडा था। उनकी राजनीति कांग्रेस मडल तथा कौसिल भवन की सीमा म बधी न रहकर जनता तथा गली बाजारों म फल चुकी थी। देश के राजनीतिक क्षेत्र म स्वाथ रहित देशभक्ति त्याग तथा नवीन आत्मविश्वास की भावना भर गई थी। 'लोकमान्य तिलक का राष्टीयता का प्रेरक तत्त्व था भारतीय सास्कृतिक एव उसकी पुरातन रीति। प्रत्येक देश का अपना जीवन दशन सस्कृति और आदश होता है। इस युग के आदोलन की यह मौलिकता एव विशेषता थी कि उसे भारतीय सभ्यता तथा सस्कृति स प्रेरणा मिली। बीसवी शताब्दी म उग्र राष्ट्रवादियो ने तिलक क नेतृत्व म पूणतया उसका आधार ग्रहण किया। इनकी दृष्टि भारत के गौरव मय अतीत की ओर गई और भारतीय इतिहास का हिंदू काल इनका आदश बना। इनकी स्वराज्य अथवा स्वायत्त शासन की माग का मूल कारण था भारतीय सास्कृतिक जीवन दशन को विकास की स्वाभाविक गति प्रदान करना। अत स्वधम की स्थापना के लिए भारत की स्वतन्त्रता को आवश्यक माना गया। राजनीति धम तथा दशन के समन्वय मे राष्ट्रवाद का क्षेत्र विस्तत एव विकसित हुआ। तिलकजी ने भारतीयो का ध्यान अतीत गौरव की ओर आकृष्ट किया और राष्ट्रीय आन्दोलन म एक नई आस्था जागृति और एक नया विश्वास भर दिया।

गांधीजी मूलत धम-प्राण तथा हिंदू ही थ। गांधीजी ने राजनीति म

धर्म का समन्वय किया । यदि तिलक कुछ काल के लिए और जीवित रहते तो सम्भव है भारत के इतिहास मे महात्मा गाँधी का नाम एव धार्मिक महापुरुष के रूप म आता, राजनीतिक नेता के रूप म नही ।[1] तिलक के पश्चात् भारत के राष्ट्रीय आदोलन का सचालन गाँधीजी ने किया । उन्होंने अपने युग की विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक विचारधाराओं का समन्वय कर राष्ट्रवाद का सुविकसित एव समुन्नत रूप देश के सम्मुख रखा । गाँधीजी की राष्ट्रीयता मे नतिकता तथा आध्यात्मिकता की मात्रा अधिक थी । उसम कुटिलता कूटनीतिज्ञता अथवा चालाकी का कोई स्थान नही था ।[2] उनकी विचारधारा गीता से विशेष प्रभावित थी तथा टालस्टाय और थूरो से भी उन्हें उसके निर्माण म सहायता मिली ।

गाँधीजी चम्पारन, खेडा तथा अहमदाबाद मिल म जो हडताल हुई थी, उन सब मे सफलता प्राप्त कर राजनीतिक क्षेत्र म गोखले जी को गुरु मान कर उतरे थे । उनके आगमन से भारतीय राजनीतिक क्षेत्र मे नये युग का सूत्रपात होता है । १९२० ई० से १९४७ ई० तक गाँधी दर्शन तथा व्यक्तित्व से भारतीय वातावरण प्रभावित रहा है । गाँधी जी के राजनीतिक क्षेत्र म आगमन के साथ ही देश म तीन महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटी जिन्होंने सम्पूर्ण देश को एक स्वर तथा एकमन मे उनके साथ कर दिया—वे तीन महत्त्वपूर्ण घटनाएँ थी—१९१९ ई० म जनता की इच्छा के विरुद्ध रौलट ऐक्ट का पास होना[3] जलियावाला बाग की नृशस अमानुषिक घटना तथा खिलाफत का प्रश्न । रौलटऐक्ट और जलियावाला बाग के सबध म हम देख चुके है । खिलाफत आन्दोलन मुस्लिम धार्मिक भावनाओ को लेकर शुरू हुआ था । खिलाफत की रक्षा के लिए खिलाफत नाम की सस्था स्थापित की गई थी । सरकार न मुसलमानो को आश्वासन दिलाया था कि तुर्की के साथ कोई अन्याय नही होगा और मुसलमानो के धार्मिक विचारो का आदर किया जाएगा, लेकिन इसम मुसलमानो को सतोष नही हुआ, और उन्होंने अन्य आन्दोलनो म हिन्दुओ का पूरा साथ दिया । मई म टर्की के साथ की गई शर्तें प्रकाशित हो गई जिससे खिलाफत आन्दोलन और भी बढा ।

चारो ओर स पजाब के अत्याचारो की जाँच क लिए कमीशन नियुक्त

---

१ श्री रामारोला–महात्मा गाँधी प० १९–२ ।

२ डा० एम्० ए० बुच–'राइज अड ग्रोथ आफ इण्डियन नेशनलिजम पेज १९

३ प० शकरलाल तिवारी बेढब – भारत सन् ५७ के बाद प० ७५ ।

करने की माँग होने लगी। सितम्बर १९१९ में वाइसराय ने हण्टर कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की परन्तु इसके साथ ही इडम्निटी बिल आया जिससे अधिकारी सजा पाने से बच सकते थे। यह बिल पास हो गया। हण्टर रिपोर्ट २८ मई १९२० को प्रकाशित हो गई। २ जून, १९२० को सब दलों के नेताओं की एक सभा इलाहाबाद में हुई और असहयोग करना निश्चित हुआ। असहयोग का कार्यक्रम निश्चित करने के लिए गांधीजी तथा कुछ मुसलमान नेताओं की एक समिति नियुक्त की गई। इस समिति ने स्कूलों अदालतों कौंसिलों तथा विदेशी माल के बहिष्कार को असहयोग कार्यक्रम में शामिल किया। इसने उपाधियों तथा सरकारी उत्सवों को त्याग करने के लिए भी कहा। नागपुर कांग्रेस में इन सभी बातों को मान लिया गया। ड्यूक आफ कैनाट के सम्मान में होने वाले उत्सवों में भाग लेने तथा सहायता देने की मनाही कर दी गई। कांग्रेस का ध्येय बदलकर 'शान्तिमय व उचित उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना' घोषित किया गया। नागपुर कांग्रेस में खाद्य पदार्थों के निर्यात की निन्दा की गई तथा देशी नरेशों से प्रार्थना की गई कि वे अपनी रियासतों में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करने का प्रयत्न करें।

नागपुर कांग्रेस के आदेश की प्रतिक्रिया बहुत अच्छी रही। कौंसिलों का बहिष्कार सफल रहा। जगह जगह राष्ट्रीय स्कूल खोले गये। इन राष्ट्रीय स्कूलों का विस्तृत पाठ्यक्रम तो बन नहीं पाया था परन्तु हिन्दुस्तानी भाषा तथा चर्खा कातना सिखाना तय हुआ। पंचायतों का संगठन किया गया और मद्य निषेध-आन्दोलन चलाया गया। सरकार का दमनचक्र चल रहा था और अली भाइयों को गिरफ्तार कर लिया गया था परन्तु देश में अहिंसात्मक वातावरण रखा था। जब दिल्ली ५ नवम्बर की महासमिति की बैठक ने प्रान्तीय कांग्रेस कमिटियों को अपने उत्तरदायित्व पर सत्याग्रह आरम्भ करने का अधिकार दे दिया। सत्याग्रह में कर बन्दी भी सम्मिलित थी। निर शोधपूर्ण और आग्रहपूर्वक प्रार्थनाओं के स्थान पर दायित्व और स्वावलम्बन की नयी भावना जागृत हो गई। सितम्बर १९२० में असहयोग के मन्द आन्दोलन ने अपने द्रुत डग भरने शुरू कर दिये। सन १९२१ में असहयोग आन्दोलन उफन रहा था। आन्दोलन सन १९२४ तक चलता रहा। गांधीजी नेहरू-जी आदि बड़े-बड़े नेता कारागार में ठूँस दिये गए। दमनचक्र ने भयावह रूप ग्रहण कर लिया। इस बीच १९२२ ई० को चौरी चौरा (गोरखपुर) में एक रोमहर्षक अमानुषिक हत्याकाण्ड हो गया। पुलिस के दुर्व्यवहार से उत्तेजित होकर लोगों ने थाने को जला डाला सब इन्स्पेक्टर और उस समय थाने पर उपस्थित कर्मचारियों को मार डाला और उनकी लाशें आग में डाल दीं।

जब राष्ट्र ने प्रत्येक दशा में अहिंसात्मक रहने की प्रतिज्ञा कर ली हो तब राष्ट्रीय आन्दोलन का काम करते हुए ऐसे काण्ड कर डालना नैतिक दृष्टि से निन्दनीय और घृणित है। यह देश के साथ विश्वासघात और उसके सर्वोत्तम हितों पर कुठाराघात है। चौरा चौरी की दुर्घटना सत्याग्रह के प्रारम्भ में विघ्न है और देश की समस्त शक्तियाँ सत्याग्रह के लिए योग्य बनने में सहायक बन जाय तथा सत्याग्रह के अनुकूल पर्याप्त प्रशान्त वायुमण्डल बन जाय, इसलिए सन १९२८ के बारडोली कार्यक्रम में गांधीजी ने सत्याग्रह के कार्यक्रम को वापस ले लिया।

१७ नवम्बर १९२१ को युवराज के आगमन पर बहिष्कार घोषित किया गया था। उनके आने के दिन बम्बई में दंगा हुआ और कई दिनों तक चलता रहा। विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई। गांधीजी ने वाइसराय के पास एक पत्र भेजा जिसमें बारडोली में कर बन्दी आन्दोलन करने का निश्चय किया परन्तु चौरी चौरा तथा मद्रास में हिंसा हो जाने के कारण सामूहिक सत्याग्रह आरम्भ करने का विचार छोड़ दिया गया। १३ मार्च १९२२ ई० को गांधीजी गिरफ्तार कर लिये गए। चित्तरंजन दास, मोतीलाल नेहरू तथा विट्ठलभाई पटेल कौंसिल प्रवेश के पक्ष में थे। उनका विचार था कि असहयोगियों को कौंसिलों में प्रवेश करके अड़गा-नीति का पालन करना चाहिए तथा स्वराज्य, पंजाब और खिलाफत सम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित करने चाहिए। अतः कौंसिल प्रवेश में विश्वास रखने वाले व्यक्तियों ने 'स्वराज्य पार्टी' के नाम से कांग्रेस के कार्यक्रम का पालन करते हुए एक नई पार्टी या दल की रचना की।

जुलाई १९२३ में टर्की के स्वतन्त्र राष्ट्र बन जाने के कारण खिलाफत का प्रश्न भी समाप्त हो गया। अंग्रेजों की कूटनीतिज्ञता के कारण हिन्दू-मुस्लिम एकता का वातावरण दूषित विशृंखल होने लगा। १९२२ ई० में निर्मित स्वराज्य पार्टी की धूम सन १९२५ से १९२७ ई० तक रही, ये लोग साम्राज्यशाही के गढ़ में प्रविष्ट होकर आक्रमण करना चाहते थे। गांधीजी को अस्वस्थता के कारण, जेल से मुक्त कर दिया गया किन्तु उन्होंने स्वराज्य पार्टी के कार्य में विरोध नहीं डाला। वे तो कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रमों में संलग्न रहे। इस प्रकार देश का राजनीतिक वातावरण असहयोग आन्दोलन के पश्चात् १९२७ ई० तक शान्त बना रहा अर्थात् उत्तेजना के चिह्न देश के बाह्य वातावरण में दृष्टिगत नहीं होते थे, किन्तु राष्ट्रीय भावना अन्दर ही अन्दर पुष्ट हो रही थी। इसका पता अगले वर्ष से ही चला कि [illegible] ने कांग्रेस के लिए यह असम्भव कर दिया था कि वे [illegible]

द्वारा रचनात्मक कार्यक्रम को आगे बढ़ा सकेंगे। वे जब हो आए वालों को नौकरी नहीं दिला सके। वे सामान नहीं खरीद सकते थे, हिन्दी की शिक्षा नहीं दे सकते थे, शालाओं में धर्म नहीं चला सकते थे राष्ट्रीय नेताओं को मानपत्र नहीं दे सकते थे।[1]

असहयोग आन्दोलन के उत्साह की समाप्ति के साथ ही साम्प्रदायिक विद्वेष प्रबल हो गया। हिन्दू मुस्लिम दंगे प्रारम्भ हो गये। सन् १९२५ तथा १९२६ में ये दंगे प्रमुखतया दिल्ली कलकत्ता और इलाहाबाद में हुए। मुस्लिम लीग कांग्रेस से पृथक हो गई जिसके प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दू महासभा द्वारा सकीर्ण हिन्दू राष्ट्रवाद का प्रचार किया जाने लगा।[2] सन् १९५५ में सिक्खों ने पंजाब कौंसिल में गुरुद्वारा बिल प्रस्तुत किया। सरकार गुरुद्वारा आन्दोलन के बन्दियों को इस शर्त पर मुक्त करने पर प्रस्तुत हुई कि वे नये कानून माने। गुरुद्वारा कमेटी में इस बात को लेकर फूट पड़ गई और अधिकांश बन्दी सरकारी कानून को मानने की शर्त पर मुक्त किये गए। अत अकाली दल का राष्ट्रीय उत्साह भी क्षीण पड़ गया।[3]

इस अवधि में देश में आतंकवादी क्रान्तिकारियों का कार्यक्रम पुन संगठित हुआ। सन् १९२७ में कुछ घटनाएं घटी जो राष्ट्रीयता के इतिहास में महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें प्रमुख हैं–प्रथम सर्वदल सम्मेलन द्वारा नेहरू कमिटी की नियुक्ति जो देश के लिए संविधान बनाने के लिए थी द्वितीय–मद्रास कांग्रेस में पूर्ण स्वतन्त्रता पर विचार और भगतसिंह द्वारा केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंकना। तृतीय–भारतीय जीवन में शासकों की राजनीतिक तथा आर्थिक नीति के प्रति बढ़ते हुए विक्षोभ को दृष्टिगत कर ब्रिटिश सरकार की साइमन कमीशन स्थापना की घोषणा। इस कमीशन का प्रयोजन था ब्रिटिश भारत का भ्रमण कर शासन कार्य शिक्षा, वृद्धि प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास तथा तत्सम्बन्धी की जाँच करके यह निर्णय देना कि भारत उत्तरदायी शासन के लिए योग्य है या नहीं। इस कमीशन में भारतीयों को कोई स्थान नहीं दिया गया था। अत कांग्रेस तथा अन्य सभी राजनीतिक दल इसके बहिष्कार के लिए कटिबद्ध हो गए।

३ फरवरी, १९२८ ई० को साइमन कमीशन भारत में आया जिसका स्वागत अखिल भारतीय हड़ताल द्वारा किया गया। उसके विरोध मे दिल्ली पटना

---

१ पट्टाभि सीतारम्मया–कांग्रेस का इतिहास–पृ० २३४।

२ वही। वही। पृ० २३४।

३ पाम दत्त–"इंडिया टुडे"–पेज ३२९।

मद्रास कलकत्ता लखनऊ आदि नगरों में प्रदर्शन सभायें तथा हड़ताल हुई। इस कमीशन का विरोध ग्रामवासियों ने भी किया। गो बक साइमन के नारों से सारे देश का वातावरण गूँज उठा। लाहौर में लाला लाजपतराय के नेतृत्व में एक विशाल जन समूह एकत्रित हुआ। ब्रिटिश सरकार ने पुलिस तथा अन्य साधनों द्वारा जनता को आतंकित कर दबाना चाहा। अन्य प्रतिष्ठित नेतागणों के साथ पंजाब केसरी लाला लाजपतराय को भी लाठी से पीटा गया जिससे उनकी मृत्यु हुई।

साइमन कमीशन के बहिष्कार के अतिरिक्त इस वर्ष की एक अन्य घटना है बारडोली का आन्दोलन। बारडोली के किसान चाहते थे कि एक निष्पक्ष कमेटी नियुक्त की जाय और यह देखा जाय कि मालगुजारी बढ़ाई जाय अथवा नहीं और अगर बढ़ाई जाय तो कितनी? बारडोली में २५ प्रतिशत माल गुजारी बढ़ा दी गई अतः वहाँ कर बन्दी आन्दोलन प्रारम्भ हो गया और सरदार पटेल ने आन्दोलन को संगठित किया। सरकार ने बाहर से पठान बुला कर अन्धाधुन्ध कुर्कियाँ करने की नीति का प्रयोग किया। अन्त में सरकार ने शासन और न्याय विभाग के प्रतिनिधियों की ६ प्रतिशत मालगुजारी बढ़ाने की सलाह मान ली। बची हुई जमीनें उनके मालिकों को वापस मिल गई।

कलकत्ता कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को एक वर्ष का समय दिया जिसमें वह पूर्ण डोमिनियन स्टेट्स का अधिकार को दे दे, अन्यथा भारत का ध्येय पूर्ण स्वतन्त्रता होगा। अक्टूबर १९२९ ई० में लार्ड अर्विन ने ब्रिटिश सरकार के आदेशानुसार यह घोषणा कि भारत को उपनिवेश का दर्जा देने का अभिप्राय असन्दिग्ध है। परन्तु गांधीजी और जवाहरलाल नेहरू तो यह आश्वासन चाहते थे कि गोलमेज परिषद की कार्रवाई औपनिवेशिक स्वराज्य को आधार मानकर होगी और यह आश्वासन वाइसराय न दे सके। सन १९२९ ई० का कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में पं० जवाहरलाल नेहरू जी की अध्यक्षता में हुआ जिसमें पूर्ण स्वतन्त्रता ही कांग्रेस का ध्येय घोषित किया गया। औपनिवेशिक मांगवाली एक वर्ष की अवधि समाप्त हो गई थी अतः २६ जनवरी १९३० को स्वतन्त्रता दिन मनाया गया। इसके साथ ही महासमिति को यह अधिकार दे दिया गया कि वह जब और जहां चाहे आवश्यक प्रतिबन्धों के साथ सविनय अवज्ञा और कर बन्दी तक का आन्दोलन शुरू कर दे।

अन्त में गांधीजी ने "सविनय अवज्ञा आन्दोलन" प्रारम्भ करने का प्रण किया जिसको सफल बनाने के लिए उन्होंने दाण्डी यात्रा की। गांधीजी ने नमक जैसी साधारण किन्तु दैनिक जीवन के लिए अति आवश्यक वस्तु पर लगे कर को भंग करने का निश्चय किया। नमक सत्याग्रह की योजना था

किसी नमक क्षेत्र म जाकर नमक बनाया जाय, नमक उठाया जाय और कानून भग किया जाय। यह कानून भग करने का सग्राम भौतिक न होकर नतिक था। भारत की दरिद्रता की दृष्टि से यह नमक कानून अ याय तथा स्वाथ पर आधारित था। गांधी जहाँ जहाँ गए अपन प्रभावोत्पादक विचारा से जनता के हृदय को आन्दोलित करते गए। दाण्डी पहुच कर उन्होंने नमक कानून भग किया, जिसकी देखादेखी समस्त देश म जनता ने और भी कई कानूनो की अवज्ञा करके आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। ६ अप्रल १९३० को गांधीजी ने नमक कानून तोडा। इस अवसर पर गांधीजी ने कहा था– अंग्रेजी राज्य न भारत का नतिक भौतिक सास्कृतिक सभी तरह का नाश कर दिया है। मैं इस राज्य को अभिशाप समझता हू और इस करन का प्रण कर चुका हूँ। मैंने स्वय गाड सेव दी किंग क गीत गाय हैं। दूसरो के गवाये है। मुझे 'भिक्षा देहि' की राजनीति म विश्वास था। पर वह सब व्यथ हुआ। मैं जान गया कि इस सरकार का सीधा करन का यह उपाय नही है। अब तो राजद्रोह ही मेरा धम है। पर हमारी लडाई अहिंसा की लडाई है। हम किसी को मारना नही चाहते। किन्तु इस सत्यनाशी शासन को खत्म कर देना हमारा परम पवित्र कतव्य है।[1]

इस आन्दोलन स चारा ओर जनता म जोश का एक समुद्र उमड पडा। विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार करके ब्रिटिश सरकार के प्रति घृणा प्रकट की गई। सरकार ने दमन नीति का आश्रय लिया। एक लाख वे लगभग जेल म ठूँसे गए जिसम कम से कम दस हजार मुसलमान थे।[2] तथा असख्य भारतीया पर लाठियाँ और गोलियाँ चलाई गइ। सीमाप्रात म खुदाई खिदमतगारो ने अंग्रेजा द्वारा बबरतापूण चलाई गई गोलियो को बडी शान्ति स सहन किया। स्त्रियो न भी स्वतत्रता सग्राम म पहली बार जी खोलकर भाग लिया। गांधीजी के नजरबन्द रहने पर भी कुछ दर तक आन्दोलन सफलतापूवक चलता रहा। अन्तत १९२१ ई० को कुछ शर्तों पर गांधी इरविन समझौता हो गया और सब बन्दी मुक्त कर दिय गय। काग्रस क वाममार्गी सदस्य सुभाषचन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू आदि इस पक्ष क विरुद्ध थ।

इसक पश्चात गांधीजी गोलमेज परिषद म सम्मिलित होन क लिए इग लड गए। वहाँ उन्होंने अल्पसख्यको की समस्या पर अपन अपन विचार व्यक्त किए भारतीयो द्वारा सेना क उत्तरदायित्व लिय जान क प्रस्ताव का

---

१ डा० पट्टाभि सीतारम्मया–काग्रस का इतिहास–पृ० ३०६।
२ जवाहरलाल नेहरू– दि डिस्कवरी आफ इण्डिया पज ३८६।

प्रस्तुत किया, कांग्रेस की स्थिति स्पष्ट कर दी तथा साम्प्रदायिकता के आधार का विरोध किया। परिषद मध्य में ही बिना किसी निश्चय के समाप्त हो गयी। गाँधीजी तथा अन्य भारतीय प्रतिनिधि देश वापस आये।

गांधीजी ने भारत लौटकर फिर आंदोलन प्रारम्भ कर दिया। ४ जनवरी १९३२ को उन्हें कारावास का दण्ड दिया गया। कांग्रेस पर प्रतिबन्ध लगाए गये। सरकार ने तत्काल ही कुछ विशेष धाराएँ लागू कर दी, जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रसार एवं विकास न हो सके। प्रेसों पर प्रतिबन्ध अधिक कठोर हुआ। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के विकास के फलस्वरूप काश्मीर तथा अलवर जसी रियासतों में भी संघर्ष हुआ। देशी रियासतों की प्रजा ने भी देश का साथ दिया। आन्दोलन भंग करने के लिए सरकार को ब्रिटिश सेना की सहायता लेनी पड़ी।

ब्रिटिश शासकों ने राष्ट्रीय भावना को कुचलने के लिए तथा आन्दोलन को समाप्त करने के लिए पुनः भेद नीति अस्त्र का प्रयोग किया। हिंदू मुसलमानों के विभेद से ही उसकी तृप्ति न हुई थी अब मि० मक्डानेल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय के अनुसार दलित जातियों को पृथक निर्वाचन का अधिकार मिला। गांधीजी ने इसके विरोध में उपवास आरम्भ कर दिया। सब दलों के नेताओं ने मिलकर आपस में समझौता किया और इस समझौते के अनुसार दलित जातियों ने पृथक निर्वाचन का अधिकार त्याग दिया तथा उच्च जातियों के हिंदुओं ने उन्हें महत्त्वपूर्ण संरक्षण प्रदान किए। इस समझौते को 'पूना पैक्ट' का नाम दिया गया। सन १९३४ मई के लगभग सविनय आन्दोलन पूर्णतया समाप्त हो गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के लक्ष्य में यह आन्दोलन सफल न हो सका। किंतु राष्ट्रवाद के प्रसार तथा विकास की दृष्टि से यह अत्यधिक उपयोगी रहा। असहयोगी आन्दोलन की अपेक्षा, इस आन्दोलन में असहयोगी जनता की संख्या अधिक थी। कृषक वर्ग ने इसमें सर्वाधिक योग दिया। श्रमिक वर्ग की हड़तालों से तथा कृषक वर्ग के भूमि कर बन्दी से आन्दोलन में अधिक स्फूर्ति तथा प्रभावोत्पादकता आ गई थी। इस वर्ग के प्रवेश से भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में समाजवादी तथा साम्यवादी विचारधारा का मेल हुआ। मई, १९३४ में समाजवादी पार्टी का जन्म हुआ, (जो कांग्रेस से पृथक नहीं था) जिसका प्रथम अधिवेशन पटना में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में हुआ। कांग्रेस के इस वर्ग का गाँधीजी राष्ट्रवाद उसके आदर्श, कार्यक्रम तथा साधन में विश्वास नहीं रह गया था।[1] सुभाषचन्द्र बोस ने फारवर्ड ब्लाक की स्थापना की।

---

१ ए० आर० देसाई—'सोशल बैकग्राउंड आफ इंडियन नेशनलिज्म' पृ

सरकार द्वारा मजदूर सगठन तथा साम्यवादी दल को अवध घोषित किया गया।[1] अखिल भारतीय कृषक सभा ने भी समाजवादी भारत का ध्येय निर्धारित किया।[2] कृषक सभा स्वतन्त्र सघर्षों का सगठन कर राष्ट्रीय आदोलन म मिल गई। नवीन विचारधाराओ म प्रभावित होने के कारण काग्रेस के कायक्रम म श्रमिक तथा कृषक वग की स्वतन्त्रता तथा आर्थिक अवस्था म सम्बन्धित प्रश्न काफी ना समावन हो गया था। इस प्रकार राष्ट्रवादियो ने दलित वग के उत्थान के लिए विशेष रूप स आन्दोलन किया।

१९१९ ई० के पश्चात् पुन १९३५ म ब्रिटिश शासकों न भारतीय सवधानिक परिवतन के लिए अधिनियम बनाये। इस अधिनियम के दो प्रमुख भाग थे—प्रथम केन्द्र म सघ शासन अर्थात् अग्रेजी भारत के प्रान्तो के साथ देशी राज्यो को मिलाकर भारतीय सघ का निर्माण और द्वितीय प्रान्तीय स्वायत्तता। सघ शासन का राष्ट्रीय नताओ द्वारा एक स्वर से विरोध किया गया क्योकि इसके द्वारा पूण उत्तरदायी शासन के स्थान पर सघ शासन का विधान किया गया था। गवनर जनरल के विशेषाधिकारो और व्यक्तिगत शक्तियो के विस्तृत क्षत्र के सम्मुख सघीय शासन व्यवस्था एक भ्रम मात्र थी। इस अधिनियम को १९३७ म कायरूप म परिणत किया गया लेकिन सघ योजना लागू न हो सकी केवल प्रान्तीय स्वायत्तता क्रियान्वित हुई। भारतीयो की यह बडी विजय थी। गवनर के विशेषाधिकारो के सम्मुख प्रान्तीय स्वायत्ता नाममात्र को ही थी। जवाहरलाल नेहरू ने इस अधिनियम के अतगत पदग्रहण करन का स्पष्ट शब्दो मे विरोध किया। लेकिन काग्रस ने १९३७ म चुनाव म भाग लिया तथा ग्यारह प्रातो मे से छ म अर्थात सयुक्त प्रात बबई, बिहार मध्यप्रात और उडीसा म बहुमत से उसकी विजय हुई।[3] राष्ट्रीय कायकर्ताओ द्वारा चुनाव मे भाग लेने का कारण मनोवैज्ञानिक था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन होने के पश्चात पुन राष्ट्रीय नताओ के अन्दर व्यवस्थापिका सभाओ मे प्रवेश कर राजनीतिक गतिरोध दमनकारी कानूनो को रद्द करान तथा नये सुधारो को क्रियान्वित करान की भावना सुदृढ होने लगी थी अत काग्रेस ने प्रान्तीय प्रशासन मे पद ग्रहण कर प्रातीय स्वराज्य की योजना को मूत किया।

१९३९ ई० को जो घटनाएँ घटी उन्होने विगतकाल स इस काल के इति

---

१ पामदत्त– इडिया टुडे प० ३९३।
२ ए० आर० देसाई– सोशल बैकग्राउण्ड आफ इडियन नेशनलिज्म पृ० ३८९
३ डा० रघुवशी–भारतीय सवधानिक तथा राष्ट्रीय–विकास प० २०५।

हास को पथक कर दिया। १ सितम्बर १९३९ को द्वितीय महायुद्ध छिड गया और तीन सितम्बर को भारत को भी इसमे सम्मिलित कर लिया गया। युद्ध छिडने के समय भारत के ११ प्रान्तो म स्वायत्त शासन था परन्तु युद्ध म सम्मिलित होने या न होने के बारे म किसी की भी राय नही ली गयी। सरकार सिंगापुर और मिस्र के लिए भारतीय जनता की इच्छा के विरुद्ध सेना भेज रही थी। कांग्रेस कार्य समिति ने केन्द्रीय एसेम्बली के सदस्यो स अगले अधिवेशन म भाग न लेने का आग्रह किया और मन्त्रिमडलो से भी युद्ध की तयारियो म सहायता देने की मनाही की। अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी न अपनी बठक म अनुरोध किया कि भारत को स्वाधीन राष्ट्र घोषित कर दिया जाय। वाइसराय ने वादा किया कि युद्ध की समाप्ति पर सरकार १९३५ के कानून म, भारतीयो की सलाह स सशोधन करने को तयार होगा। वाइसराय की घोषणा स कांग्रेस को सतोष नही हुआ और उसने कांग्रेस मन्त्रि मण्डलो से त्यागपत्र दे देने के लिए कहा जिस पर बारी-बारी से आठो प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलो ने त्यागपत्र द दिया। मार्च १९४० म मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की माग उपस्थित की। १७ अक्तूबर १९४० को सत्याग्रह सग्राम प्रारम्भ हो गया जिसके पहले ही जुलाई १९४० को सुभाष बाबू को गिरफ्तार कर लिया था। पहले सत्याग्रही विनोबा भावे थे तथा दूसरे जवाहरलाल नेहरू। वाणी स्वातन्त्र्य इसका उद्देश्य बताया गया। इसका स्वरूप व्यक्तिगत था। दोनो गिरफ्तार किये गए। शेष व्यक्तियो को रचनात्मक कार्यक्रम म लग रहने के लिए कहा गया था। परिणामत १९४० का 'क्रिप्स मिशन' भारत आया किन्तु उनके निर्धारित किए गए सुझाव भारत क किसी दल न स्वीकार नही किए।

अप्रल १९४२ म गांधी जी न यह घोषित किया कि भारत और ब्रिटेन दोनो का भला इसम है कि अग्रेज मालिको की हैसियत से भारत छोड दे। जुलाई १९४२ म कार्य समिति की बठक वर्धा म हुई जिसम उसने एक सामूहिक आन्दोलन क सबध म योजना बनाई। राजगोपालाचारी पाकिस्तान बन जाने के पक्ष म थ किन्तु अखड भारत का ही प्रस्ताव पास हुआ। राजगोपालाचारी कांग्रेस स अलग हो गये और अपना आन्दोलन चलाते रहे। जिन्ना मुस्लिम लीग का नेतत्व कर रहे थे और मुसलमानो क लिए स्वतत्र स्टेट चाहते थ। अत ब्रिटिश सरकार को कांग्रेस का 'पूर्ण स्वराज्य' की माग को ठुकराने का अवसर मिल गया। ८ अगस्त १९४० को अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति म—क्विट इंडिया—(भारत छोडो) प्रस्ताव पास हो गया। ९ अगस्त को नेताओ की गिरफ्तारी के बाद सार्वजनिक सभाओ जुलूसो आदि पर

कलकत्ता, आदि स्थानो म जाकर ान्ति स्थापित करने के अथक प्रयत्न किए और बहुत अ ो म वे सफल भी हुए। सन १९४६ म नाविक विद्रोह से ब्रिटिश सरकार का अपनी सेना पर विश्वास नही रहा।

प्रधान मनी एटली ने २० फरवरी, १९४७ को घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार का इरादा सत्ता को उत्तरदायी भारतीयो को सौंप कर जून १९४८ ई० तक भारत का शासन छोड देना है चाहे भारत के विभिन्न दलो मे सम झौता हो अथवा न हो। इसी समय लाड वेवन के स्थान पर लाड माउटबेटन वाइसराय नियुक्त हुए। ३ जून, १९४७ को भारत के बँटवारे के लिए माउट बेटेन याजना की घोषणा की गई। तत्कालीन परिस्थिति म यह योजना विभिन्न दलो मे अच्छा समझौता था अत सभी दलो न इसे स्वीकार किया। आखिर १५ अगस्त, १९४७ को लाड माउट बेटेन ने भारत की स्वाधीनता की घोषणा की। पलासी युद्ध से लेकर १९० वष के ब्रिटिश शासन से भारतीयो को स्वतन्त्रता मिली 'परतु देश की एकता खण्डित हो गयी।

भारतीय स्वतन्त्रता के बाद थोडे ही दिनो म घटना के अनुसार भारत म जनतत्र प्रणाली राज्य पद्धति अपनाई गयी। उसक पहले ही युगपुरुप म० गाँधी की हत्या हुई। इस प्रकार गाँधी युग की समाप्ति हो जाती है। स्वाधीनता के साथ नेहरू युग का प्रारम्भ होता है कि तु इसका विवेचन करना हमारा विपय नही है।

भारतीय राष्ट्रीय आदोलन की प्रमुख घटनाओ से हि दी कविता अत्यत प्रभावित है। सन् १८५७ के सग्राम का विशेष उल्लेख साहित्य मे नही मिलता कि तु काग्रेस की स्थापना गरम-नरम दल की राजनीति, तिलक का उग्र और आक्रमणकारी राष्ट्रवाद, बग भग, आतकवादी हिंसात्मक क्राति, रौलेट बिल, जलियावाला बाग, असहयोग आदोलन, सविनय अवज्ञा भग आदोलन, गाँधी का रचनात्मक काय, आजाद हिंद फौज आदि ने हि दी कविता को समानरूप से प्रभावित किया है। सन् १९२० के पहले तिलक युग ने और सन १९२० के पश्चात गाँधीयुग न हिन्दी कवियो को आकर्षित किया। सन १८५७ के पहले राजनीति आर्थिक, सामाजिक स्थिति पर विशेष रूप से कवि अपनी लेखनी नही चलाते थे। काग्रेस की स्थापना के बाद कवियो न अनेक राष्ट्रीय समस्याओ पर तथा आदोलनो पर लेखनी चलाई है।

सक्षेप म, आय समाज को छोडकर अ य सास्कृतिक आदोलनो का हि दी कविता पर व्यापक प्रभाव नही पडा। मराठी कविता पर भी सास्कृतिक आन्दोलनो की अपेक्षा आगरकरजी के क्रान्तिकारी और सुधारवादी विचारो का ही अधिक प्रभाव पडा है। सास्कृतिक आन्दोलन प्रमुखतया बुद्धिवादी वर्ग

तक सीमित रहे । जन मानस को प्रभावित करने म वे असफल रहे । सांस्कृतिक आन्दोलन के सुधारवादी मत ने जन समुदाय को प्रभावित किया है। फलस्वरूप कवियों की वाणी मे भी सुधार के स्वर सुनाई देते हैं । मार्क्सवाद ने दलित जनता के दु खो को वाणी देकर आर्थिक क्रान्ति की प्रेरणा दी जिसका प्रभाव हिन्दी कविता पर लक्षित होता है । गाँधीवाद ने हिन्दी कविता पर अपना अधिक प्रभाव डाला है। राष्ट्रीय-आन्दोलन जो प्रमुखतया दासता स मुक्ति के लिए प्रारम्भ हुए थे, अनेक आर्थिक और सामाजिक पहलुओ को जसे स्वदेशी स्वभाषा, स्वतन्त्रता को लेकर भारतवासियो को आकर्षित करते रहे । राष्ट्रीय आन्दोलन ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र क्रान्ति आदि से कवियो को अछूता रहना असम्भव था । हिन्दी कवियो ने विराट राष्ट्रीय आन्दोलन का वणन करके देशवासियो को दासता मुक्ति के लिए प्रेरणा प्रदान की और राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में योग दिया ।

हिन्दी कविता मे राष्ट्रीय भावना के विभिन्न रूप

भारतवर्ष के इतिहास मे ही नही वरन समस्त एशिया के इतिहास म उन्नीसवी शताब्दी एक युगातकारी शताब्दी रही है। इस शताब्दी म एशिया के प्राय सभी देशा म राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक और साहित्यिक परिवतन हुए। 'साहित्य का मानव जीवन स चिरतन सम्बध है। साहित्य का सष्टा मनुष्य है और मनुष्य के लिए ही साहित्य की सृष्टि है। मानव जीवन ही साहित्य का उपादान और विषय वस्तु रहा है और रहेगा। मानव जीवन विकासशील वस्तु है इसीलिए साहित्य भी विकासशील है।'[1]

साहित्य का एक अग कविता भी युग के अनुकूल ही विकास करती है। राष्ट्रीय कविता भी अपनी एक परम्परा रखती है। 'वस्तुत राष्ट्रीय कविता की धारा किसी विशेष युग का सीमाओ म न बँधकर वतमान समय तक सतत प्रवाहित रही है। समय के साथ साथ उसम व्यापकता तथा सकोच, सयम तथा उग्रता अथवा इसी प्रकार के अय आरोह-अवरोह अवश्य हाते हैं परतु उसकी गति अवरुद्ध नही होती।'[2]

राष्ट्रीयता आधुनिक जीवन मे एक तत्त्व के रूप म आती है। इतना ही नही सभी देशो म आधुनिक काव्य की एक बडी विशेषता उसकी राष्ट्रीय भावना है। राष्ट्रीय काव्य मे समष्टि की भावना निहित हाती है। राष्ट्रीय काव्य सम्पूण राष्ट्र को अपनी सम्पत्ति समझता है अतर राष्ट्रीय दृष्टिकोण मे वह विश्व की समस्याओ का भी उल्लेख कर सकता है। राष्ट्रीय काव्य का उद्देश्य व्यापक और स्थायी हाने के कारण इसमे अतिरजना का स्थान सदव गौण रहता है। राष्ट्रीय काव्य म देश की त्रुटिया का वणन नि सकोच रूप से किया जाता है। देश के हर्ष विषाद के साथ कवि के प्राण पुलकित और व्यथित होते रहते हैं। उसके दिल का पारा देश के उत्थान पतन के साथ उठता गिरता रहता है। क्रान्ति म उसकी लेखनी आग उगलती है, सुव्यवस्था म चाँदनी बरसाती है।

---

१ आ० नददुलारे वाजपेयी—नया साहित्य—नए प्रश्न, पृ० ३।

२ डॉ० शिवकुमार मिश्र—नया हिन्दी काव्य, पृ० ४८।

राष्ट्रीय साहि[illegible] को सामयिक अधिक सारहीन माना जाता है तथा राष्ट्रीय कविता [illegible] भूलना [illegible] अधिकारा, नागपुर की दीवारें [illegible] और [illegible] । [illegible] प्रयाग म बनती है।[1] [illegible] आरोप लगाया जाता है। [illegible] श्री नन्ददुलारे वाजपेयी [illegible] लिखते हैं। [illegible] लिखा है कि साहित्य के [illegible] दो तथ्य [illegible] स्वीकार किये जा चुके हैं [illegible] यह कि साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है [illegible] यह है कि राष्ट्रीय होकर भी कोई साहित्य सारवान हो सकता है। [illegible] राष्ट्रीयता या [illegible] में हमारा आशय केवल जातीय [illegible] और [illegible] से नहीं है केवल उन [illegible] से नहीं है जिन्हें हम [illegible] के नाम पर [illegible] आते हैं प्रत्युत राष्ट्र या जाति के उस वास्तविक [illegible] और गंभीर जीवन से है जो उसके साथ सार्वभौम और विशिष्ट [illegible] अनुभवों तथा [illegible] दृष्टि से युक्त होने के कारण ही राष्ट्रीय है।[2] यह तो सत्य है कि राष्ट्रीय भावना में जितनी ही न्यूनता आती है उतना ही हम पतन की ओर उन्मुख होते हैं। राष्ट्रीय कविता की रचना के लिए राष्ट्रीय भावना का स्वाभाविक उद्रेक अपेक्षित है। केवल कल्पना के आश्रय से राष्ट्रीय कविता की सृष्टि नहीं हो सकती अनुभूत भावना का आवेग रहने से वह ओजस्विनी हो सकती है।[3] जिस राष्ट्रीय कविता से जीवन की प्रखर तन्त्री झङ्कृत न हो जाय जिसमें जीवन की स्वाभाविक गति आन्दोलन करने की क्षमता न हो उस कविता को संज्ञा देना ही व्यर्थ है फिर राष्ट्रीयता उसका एक भिन्न विशिष्टत्व है।

दूसरा आरोप यह है कि राष्ट्रीय कविता संकीर्ण होती है। विश्वबंधुता के सामने राष्ट्रीय कविता संकुचित सी दिखाई देती है परन्तु वह संकीर्ण नहीं है। भिन्न भिन्न देशों के मनुष्यों में भिन्नता लक्षित होती है तो भी अखिल मानव जाति के सुख दुख समान हैं। इस विश्वबंधुता से राष्ट्रीय कविता का स्थान बाधित नहीं होता। राष्ट्रीय कविता को देश काल के बंधन का पालन करना पड़ता है परन्तु जब तक मानवी जीवन में अपने संपर्क में आने वाले निकट स्थलों व्यक्तियों के सम्बन्ध में प्रेमादर का भाव रहेगा तब तक विशिष्ट देश में उत्पन्न महापुरुषों के गुणोत्कर्ष पर बल देने वाली राष्ट्रीय कविता की

---

१ प्रा० ना० सी० फडके—प्रतिभा विलास (प्रथम संस्करण १९६६) पृ० १२२

२ डा० नन्ददुलारे वाजपेयी—राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध प० १।

३ सुधांशु—साहित्यिक निबंध (राष्ट्रीय कविता) प० ३०–३१।

रचना होती ही रहेगी । लौकिक अभिरुचि का प्रतिबिम्ब राष्ट्रीय गीतो मे अभिव्यक्त होता है । मानवता विश्वबंधुता विश्वजय का नारा लगाने वाले साम्यवादी रूस को भी द्वितीय महायुद्ध मे रूस के महापुरुषो रूस के गौरवमय इतिहास आदि का गान करके ही रूसियो को राष्ट्र सुरक्षा के लिए सन्नद्ध करना पडा तथा राष्ट्रीयता का पुनरुज्जीवन करना पडा । चीन और रूस के वर्तमान कालीन मतभेद से स्पष्ट हो जाता है कि आज विश्व एकता के युग मे भी राष्ट्रीयता अपना एक विशेष स्थान रखती है ।

भारतीय राष्ट्रीयता म अंग्रेज जाति के सम्पर्क स परिवर्तन आया । आधुनिक "राष्ट्रीयता भारत क लिए नवीन विश्वास थी । इसके पूर्व इस देश मे यह बात अपरिचित थी ।"[1] १९ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध म भारत म देश प्रेम, राष्ट्रीय भावना जागरित होने लगी । 'अंग्रेजो म देश प्रेम जातीयता स्वतंत्रता प्रेम स्वतंत्र विचार आत्म गौरव, महत्वाकाक्षा एव विद्यानुराग कूट कूट कर भरा हुआ था जबकि भारतीय जनता भेद भाव, रूढि प्रियता, आत्म हीनता, आत्म संतोष परस्पर विद्वेष ईर्ष्या और ऊँच-नीच की भावनाओ म फँसी हुई थी । राष्ट्र पराधीन हो गया था । पराधीन देश की राष्ट्रीयता का अर्थ स्वाधीनता की उग्र भावना । किसी राष्ट्र का आत्म सम्मान गुलामी की मोह निद्रा म कब तक सो सकता है ? राष्ट्रीय चेतना की हल्की सी लहर ही उसे जगाने के लिए पर्याप्त होगी । शासको से ही प्रेरणा लेकर भारतीय उर्वर मस्तिष्को म स्वाधीनता क भाव जगने लगे । स्वामी विवेकानन्द रामकृष्ण स्वामी दयानन्द लोकहितवादी चिपलूणकर, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके मडल के अन्य लेखक एक साथ मैदान म आए । सास्कृतिक सुधारवादी लोगो ने जनवादी दृष्टिकोण अपनाकर सारे देश म एक सिरे स दूसरे सिरे तक जागरण का मंत्र फूँक दिया जिससे जनता ने निराशा की चादर फेंक कर अपने को पहचाना ।'[2] इस नवजागरण के निर्माण म अंग्रेजी विचारको का भी हाथ रहा है । 'अंग्रेजो क अध्ययन के साथ ही साथ बर्क, मिल, हर्बर्ट स्पेंसर, मिल्टन, मेकाले, रूसो, वाल्टेयर आदि के विचार भारतीय मस्तिष्क मे हलचल मचाने लगे । उनम नई स्फूर्ति भरने लगे । पाश्चमी देशो के साहित्य ने तो इस दिशा म अधिक काम

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी–हिंदी साहित्य–पृ० ३९५ ।

२ डा० शम्भुनाथ पाडेय–आधुनिक हिंदी काव्य म निराशावाद पृ० ५६ ।

३ डा० रामसकलराय शर्मा–द्विवेदी युग का हिंदी काव्य–पृ० २७ ।

किया था। यूरोपीय इतिहास की "पिटीशन आफ राइटस ग्लोरियस रिवोल्यूशन, सिविल्वार जैसी घटनाएँ भारतीय युवकों के मस्तिष्क में विद्रोह की भावना भरने लगी।[१] हमारे नव जागरण की भी एक विशेषता रही है। 'भारतीय नवजागरण अध्यात्म, धर्म और नव-सृजन के तीन पहलुओं के साथ आगे बढ़ा। राष्ट्रीयता को उसने पश्चिम की तरह कोरी राजनीति के रूप में नहीं लिया।' और "राष्ट्रीय जागरण के क्रोड में ही हिन्दी कविता का जन्म हुआ है।" मराठी कविता के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है।

इस राष्ट्रीय कविता को विभिन्न धाराओं में विभाजित करने का प्रयास अनेक लेखकों ने किया है। डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे, राष्ट्रीय कविताओं को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और राजनैतिक राष्ट्रवाद में विभाजित करते हैं।[४] डा० शान्तिकुमार शर्मा ने राष्ट्रीय काव्य को निम्नलिखित धाराओं में विभाजित किया है—(१) जन्म भूमि के प्रति प्रेम (२) स्वर्णिम अतीत का चित्रण (३) प्रकृति प्रेम (४) विदेशी शासन की निंदा (५) जातीयता के उद्गार (६) वर्तमान दशा क्षोभ (७) सामाजिक सुधार भविष्य निर्माण (८) वीर पुरुषों की स्तुति (९) पीड़ित जनता और कृषकों का चित्रण (१०) भाषा प्रेम।[५] इसे हम कुछ समीचीन न मानकर निम्नलिखित रूप में हिन्दी कविता की राष्ट्रीय धारा को विभाजित करना चाहते हैं जो राष्ट्रीय कविता धारा को समझने के लिए सुविधाजनक तथा सहायक हो—

(१) भारत वन्दना तथा प्रशस्ति।
(२) अतीत का गौरव गान।
(३) वर्तमान काल की दुर्दशा।
(४) उद्‌बोधन एवं आवाहन।

उद्‌बोधन एवं आवाहन की प्रवृत्ति को निम्नलिखित उप विभागों में

---

१ श्री बाबूराव जोशी—भारतीय नवजागरण का इतिहास पृ० २५।
२ डा० रामरतन भटनागर—निराला और नवजागरण पृ० १४४।
३ शिवदान सिंह चौहान—हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष—पृ० ५१।
४ डा० लक्ष्मीनारायण दुबे—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' व्यक्ति एवं काव्य—पृ० ११३।
५ डा० शान्तिकुमार शर्मा— नई दुनिया दीपावली विशेषांक—राष्ट्रीय काव्य के विभिन्न रूप—सं० २०१८ पृ० ५८।

विभाजित किया जा सकता है—

(अ) उदबोधन-समाज और व्यक्ति
(ब) स्वर्णिम भविष्य
(क) क्रांति भावना
(ड) बलिदान की भावना
(प) अभियान गीत
(फ) कीर्तिकाव्य
(भ) मानवता की भावना

भारत वंदना और प्रशस्ति

भारतवर्ष एक विशालकाय एवं प्राचीन देश है जिसको प्रकृति ने उसे सर्वथा सपन्न बनाया है। तरंगाकुल समुद्र प्रफुल्ल वनराशि, विंध्याचल धवल किरीट हिमालय और सदानीरा सरिताओ न प्राचीन काल से कवियो को मोहित कर रखा है और आज भी उसका ऐसा प्रभाव है। भारतवर्ष की अपार प्राकृतिक सुषमा के कारण उसे धरती का स्वर्ग कहकर भी पुकारते है।[1] वस्तुत 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' यह उक्ति भारतवर्ष के सबध म यथार्थ रीति से चरितार्थ होती है।

इस वभव सपन्न प्राकृतिक सुषमा से कलित भारतवर्ष का प्रशस्ति गान अत्यत प्राचीन काल से कवियो ने किया है। आधुनिक युग मे तो मातभूमि की महिमा अधिक बढ गई है। डा० श्रीकृष्णलाल का यह मत है कि 'उन्नीसवी शताब्दी के पहले भारतीय साहित्य म जन्मभूमि अथवा राष्ट्र पर कोई कविता नही थी भारत म राष्ट्र की भावना सम्भवत कभी था नही जन्मभूमि अथवा मातृभूमि नाम की वस्तु तो थी परतु हम अपने गाँव को ही जन्मभूमि मानत थे भारतवर्ष को जन्मभूमि मानना हमने परिचय से सीखा'[2] समीचीन नही लगता। भारतीय साहित्य म वर्णित राष्ट्रीय भावना का स्वरूप हम प्रथम अध्याय म देख चुके हैं।

बीसवी शती के आरम्भ के साथ ही हिन्दी साहित्य म गीत काव्य का आधिक्य हुआ अत देशप्रेम की भावना से ओतप्रोत गीतो की सष्टि हुई। इन सभी गीतो मे भारत का स्तवन मिलता है। सम्भवत इनकी प्रेरणा सस्कृत के स्तोत्रो से ग्रहण की गयी है। इन कविताओ म मातभूमि का दवीकरण अधिक मिलता है। इसके साथ ही देश की वन्दना स्तुति अर्चना आराधना पूजन भक्ति और प्रेम भावनाएँ कविताओ म मुखरित हुई हैं।

---

१ मेक्स मुलर–इडिया व्हाट कन इट टीच अस?–पेज ८।

२ डा० श्रीकृष्ण लाल–आधुनिक साहित्य का विकास, पृ० ७६।

अपने देश के प्रति हरक व्यक्ति का लगाव रहता है। भारतवासी तो अपनी भूमि के प्रति सदा पुनीत भावना ही रखते हैं। उन्होंने इस देश को देवो से निर्मित हुआ पुण्यश्लोक माना है।[1] इस पुण्यश्लोक भारत की महिमा का वर्णन हिन्दी कवियों ने किया है।

भारत महिमा वर्णन

प्रसाद का "अरुण यह मधुमय देश हमारा" गीत भारत की महिमा का वर्णन करता है। चन्द्रगुप्त नाटक में यह गीत सैल्युकस की पुत्री कार्नेलिया गाती है। इस गीत में भारतीय सांस्कृतिक गरिमा का पूर्ण स्वरूप मुखरित है जो अपनी अर्थवत्ता भावोदात्तता कल्पना की रमणीयता प्राकृतिक वैभव तथा देशप्रेम के चित्रण की दृष्टि से प्रसाद जी के सर्वश्रेष्ठ गीतों में से है। उनका यह गीत राष्ट्रीयता के संकीर्ण कगारों में न बंधकर शाश्वत एवं सर्वजनीन हो गया है। प्रसादजी लिखते हैं—

> अरुण यह मधुमय देश हमारा
> जहां पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
> सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरुशिखा मनोहर
> छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा।
> लघु सुरधनु से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे
> उड़ते खग जिस ओर मुंह किये समझ नीड़ निज प्यारा
> बरसाती आंखों के बादल बनते जहाँ भरे करुणा जल
> लहरें टकराती अनन्त की पाकर जहाँ किनारा
> हेमकुम्भ ले उषा सवेरे भरती ढुलकाती सुख मेरे
> मंदिर ऊंघते रहते जब जग कर रजनी भर तारा।"[2]

प्रसादजी के समान अनेक हिन्दी कवियों ने भारत का प्रशस्ति गान किया है। सियारामशरण गुप्तजी को अपना मातृ भूमि–सुखसारा पुण्यभूमि, माता के समान वसुधा में, सर्वोत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ लगती है।[3] मैथिलीशरण गुप्तजी को भारतमाता सुधामयी वात्सल्यमयी, शान्तिकारिणी शरणदायिनी क्षमामयी, प्रेममयी, विश्वशालिनी विश्वपालिना भयनिवारिणा, सुखकर्त्री लगता है।'[4]

---

१ त श्लोक पुण्य प्रनप यत्र मन्नि विद्यत। —यजुर्वेद २०।२६।
२ जयशंकर प्रसाद–चन्द्रगुप्त–दूसरा अंक, पृ० ८९।
३ सियारामशरण गुप्त–मौर्य विजय पृ० १९।
४ मैथिलीशरण गुप्त–स्वदेश संगीत, पृ० १३।

श्रीधर पाठक तो हिन्दी में भारत देश के प्रथम महा गायक थे। वे भारत भारती वीणा के प्रणेता रूप में चिरस्मरणीय रहेंगे।[1] इन्होंने अपने देश की नैसर्गिक रमणीयता के लिए विस्तृत भौगोलिक आकृति का चित्रण कराया है और इसी देश में जन्म लेने पर अभिमान करते हुए अपने देश की प्रत्येक वस्तु की महत्ता की चर्चा ये निम्नलिखित पंक्तियों में करते हैं—

जिसके सीमा और महोदधि रत्नाकर है
उत्तर में हिमराशि रूप गर्वोन्नत गिरिवर है
जिसमें प्रकृति विलास रम्य ऋतुक्रम उत्तम है
जीवजन्तु फलफूल नदी अद्भुत अनुपम है
पृथ्वी पर कोई देश भी इसके समान नहीं है
इस विश्व देश में जन्म का हम बहुत अभिमान है[2]

केवल हिन्दी के रचनाकार ही नहीं अपितु उर्दू कवियों की लेखनी भी देश में परिव्याप्त हो रहे देशप्रेम की भावना को व्यक्त करने में सफल हुई। इकबाल का राष्ट्रीय तराना तो प्रसिद्ध ही है—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलसिताँ हमारा
पर्वत वो सबसे ऊँचा हमसाया आसमाँ का
वह संतरी हमारा वह पासबाँ हमारा
गोदी में खेलती हैं उसकी हजारों नदियाँ
गुलशन है जिनके दम से रश्के जनाँ हमारा[3]

श्री लोचन प्रसाद पाण्डेय ने भी भारत को 'भूतल भूषण पुण्यप्रभामय पूषण सुखदाति सुरम सुधाकर सुषमा शुचि सद्गुण कर' कहा है। मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीयता संबंधिनी कविताओं का स्वदेश संगीत संग्रह है। कवि का मातृभूमि के प्रति प्रेम अधिकांश कविताओं में प्रकट हुआ है। 'भारत वर्ष', 'मेरा देश', 'स्वर्गसहोदर', 'मातृभूमि', 'मातृमूर्ति' आदि अनेक कविताओं में विशेष रूप से देश की महिमा और देशप्रेम ओतप्रोत है। रामनरेश त्रिपाठी देश की महिमा का बखान करते हुए लिखते हैं 'हाँफ हाँफ कर जीने

---

१ डा० रामखिलावन तिवारी–माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्ति और काव्य पृ० ४२२।

२ जन्मभूमि भारत–आधुनिक काव्यधारा–पृ० १८१।

३ वतन के गीत (विनोद पुस्तक मंदिर आगरा) प्र० सं० पृ० ५२।

४ उद्धृत–डा० लक्ष्मीनारायण दुबे–हिन्दी की राष्ट्रीय धारा पृ० १९५।

वाला विषवत रेखा का निवासी मनुष्य भी अपनी मात भूमि से प्रेम करता है और ध्रुव प्रदेश का निवासी भी अपनी मात भूमि पर प्राण निछावर करता है। परतु हे बधु तुमने तो स्वण सी सुखद, सकल विभवो की आकर धरा शिरोमणि मातभूमि म जम लिया है।[1]

यदि इस महिमान्वित जन्म भूमि के प्रति कोई प्रेम न रखता हो तो वह अघ का अधिकारी है। महावीरप्रसाद जी लिखत हैं—

जग मे जन्मभूमि सुखदाई।
जिस नर पशु के मन म न समाई।
उसके मुख दशक नर नारी
होते है अघ के अधिकारी।[2]

भारतवासी इस अघ क अधिकारी बनना कभी स्वीकार नहीं करेंगे। कारण सिधु तरगित मलयजवासित गगाजलोर्मि निरत, शरद, इदुस्मित षडऋतु परिक्रमित, आम्र मजरित मधुप गुजरित कुसुमित फलद्रुम पिक कल कूजित भारत किसको प्रिय नही है ? पतजी न अनक कविताओ म भारत की महिमा का वणन किया है। स्वणधूलि' की 'जन्मभूमि शीषक कविता म मातभूमि के प्रति प्रेम प्रकट करत हुए व लिखत हैं "जिसका गौरव भाल हिमालय है जिसम गगा—यमुना का जल है वह मातभूमि जन जन के हृदय म बसी है। इस भमि का राम, लक्ष्मण और सीता अपनी पदधूलि स पुनीत बना गए हैं। यहा गीता का गान किया गया था। यहाँ के तपोवन शाति निकेतन थे और यहाँ सत्य की किरणें बरसती थी। आज के युद्ध जजर जीवन म जन्मभमि पुन 'वसुधव कुटुम्बकम का मत्रोच्चारण करेगी।'[3] दूसरा एक कविता म कवि कहता है कि सभ्यता का प्रारभ इसी भूमि पर हुआ। पतजी का भारत गीत प्रसिद्ध है। रुचि सौकय के लिए पतजी न उपरोक्त गीत तीन तरह स लिखा है वह गीत इस प्रकार है—

जय जन भारत जन मत अभिमत
जन गण तत्र विधाता
गौरव भाल हिमालय उज्ज्वल
हृदयहार गगा जल

---

१ रामनरेश त्रिपाठी— स्वप्न सर्ग ५, पृ० ९०–९१।
२ 'सुमन — जन्मभूमि', पृ० ७६–७७।
३ सुमित्रानदन पत—स्वणधूलि—पृ० २१।
४ सुमित्रानदन पत—स्वणकिरण—ज्योतिभारत—पृ० ३४।

सम्मान तथा अतिशय प्रशंसा करने की प्रवृत्ति लक्षित होती है।

पंत जी के समान ही जयशंकर भी संस्कृति का जन्म प्रथमतः भारत में मानकर लिखते हैं—"भारत त्रिभुवन वंद्य, त्रि जग सम्पत्ति का मुकुट मुक्त-स्थल है। उसका हृदय विशाल तथा भावनाएं उदार होती हैं। सभ्यता और संस्कृति के सम्बन्ध में भारत को विश्व जननी का गौरव प्राप्त हो रहा है। वह प्रेम सभ्यता विद्या विभव का गृह रहा है। सबसे पहले संस्कृति का जन्म भारत में हुआ है। भारत ने ही जागृति के क्षणों से सम्पूर्ण वसुधा के श्याम-तम पुंज को नष्ट कर आलोकित किया है।'

भारत की प्राकृतिक सुषमा हमारे हृदय में आदर तथा आत्मीयता एवं गौरव का भाव भर देता है। "याग्रा के भयंकर सुन्दर जल प्रपात को देख कर हम स्तम्भित हो सकते हैं किन्तु वे हमारे हृदय में उन भावों की सृष्टि नहीं कर सकते, जो भारतवर्ष के पर्वत, नदी, वन और झरने सहज में कर सकते हैं इसका कारण स्पष्ट है। एक में हम केवल सौंदर्य के तत्त्व का विचार रखते हैं और दूसरे में इसके साथ ही निजत्व का आरोप भी करते हैं। यह हमारा आत्म भाव है। यही आत्म भाव कुछ विकट होकर राष्ट्रीयता' में परिणत हो जाता है। हमारे कवियों ने भारतीय प्राकृतिक सुषमा के अनेक गीत गाए हैं।

भारतवर्ष की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन अनुपम रीति से मैथिलीशरण गुप्त जी ने किया है—

> 'नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है
> सूर्यचन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है
> नदियाँ प्रेम प्रवाह फूल तारे मण्डन हैं
> बन्दीजन खग वृन्द शेष फन सिंहासन है,
> करते अभिषेक पयोद है बलिहारी इस वेष की,
> हे मातृभूमि ! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।'"

माधव शुक्लजी ने भी भारतीय प्राकृतिक अनुपम सौन्दर्य का वर्णन किया है।'

---

१ जयशंकर प्रसाद—स्कन्दगुप्त—५ वाँ अंक पृ० १४३।
२ लक्ष्मीनारायण सुधांशु—राष्ट्रीय कविता साहित्यिक निबंध—पृ० ३०।
३ मैथिलीशरण गुप्त—मंगल घट—पृ० ९।
४ प्राचीन भारत उद्धृत—सुधांशु साहित्यिक

जय जय प्यारा भारत देश
स्वर्गिक शीश फूल पृथिवी का
प्रेम मूल प्रिय लोकत्रयी का
सुललित प्रकृति नटी का टीका
ज्यो निशि का राकेश।[1]

श्रीधर पाठक इसी कविता म विश्व की तुलना म भारत को श्रेष्ठ ठहरा कर उसक गौरव की वद्धि करत हैं। इतना ही नही तो कांग्रेस प्रभाव के कारण वे लिखत हैं कि भारत के प्रेमी स्वय भगवान् हैं। व नित-नूतन प्रेम प्रदान करते हैं।

निराला के 'भारति जय विजय करे' गीत म मात भूमि का दैवीकरण प्राप्त होता है। निराला के वन्दना गीतो म निरालापन भी है। भारत के सम्बोधन को हटाकर हम उन्ह सामान्य देश वन्दना के रूप म भी प्रयुक्त कर सकते हैं। अन्य राष्ट्रीय गीतो के सदश प्रसाद व निराला के वदन परक गीत विशिष्ट देश भूमि स स्थूल रूप म सम्बधित नहीं हैं। इन गीता म भौगोलिक उपादानो के अतिरिक्त सास्कृतिक निधि की ओर भी सकेत मिलता है। राष्ट्रीय स्पन्दन व सस्कृति-सुधा का एसा सामजस्य दुलभ है।[2] इस गीत म भारत की सुषमा तथा सागर आदि का भारत देवी के पूजा अचन म बड़ सुन्दर रीति से योगदान माना है—

भारति जय विजय करे
कनक शस्य कमल धरे।
लका पदतल शतदल गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण-युगल स्तव कर बहु-अर्थ भरे।
तरु-तृण वन लता वसन अचल मे खचित सुमन
गगा ज्योतिजल कण धवल धार हार गले।
मुकुट शुभ्र हिम-तुषार प्राण प्रणव ओकार
ध्वनित दिशाएँ उदार शतमुख शतरव मुखरे।[3]

डा० नगेन्द्र के मतानुसार इस कविता मे मदिर का वातावरण और भी मुखर हो गया है।[4]

१ श्रीधर पाठक भारतगीत—प० २६ (गगामाला लखनऊ १९२८)
२ डा० प्रेमनारायण टडन—महाकवि निराला व्यक्तित्व और कृतित्व,प० २२७।
३ निराला गीतिका—प० ७३।
४ डा० नगेन्द्र—आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवत्तिया—प० २८।

अधिकाश कविताओ म भारत देवी का चरण धोने वाला सागर हिमालय शीश मुकुट गगा यमुना गले के मौक्तिक हार और पदतल लका कमल के रूप म चित्रित किया है। पत जी ने भी राष्ट्रगान' कविता म उन्नत हिमालय भारत का मस्तक है कोटि कोटि श्रमजीवी उसक सुत हैं, भारत स्वग-खड है जहाँ षड ऋतुएँ परिक्रमा करता हैं' ऐसा कहकर मातभूमि का दवीकरण किया है।

किन्तु ग्राम्या की भारत माता' शीषक कविता म पतजी ने मातृभूमि का किया हुआ दवीकरण नवीन प्रकार का है। कवि ने भारतमाता का वणन करत हुए लिखा है कि वह ग्राम वासिनी है खेतो म उसका श्यामल धूल भरा मला सा आँचल फला है गगा-यमुना म उसका अश्रु जल है और वह मिटटी की प्रतिमा है। वह द य जडित अपलक नत चितवन है। उसके अधरो मे नीरव रोदन है युग-युग के तम से उसका मन विषण्ण है और वह अपन ही घर म प्रवासिनी है। उसकी तीस कोटि सतान नग्न-तन, अध क्षुधित, शोषित, निरस्त्र मूढ असभ्य अशिक्षित और निधन है। भारत माता नतमस्तक तरु तल निवासिनी है उसका धरती सा सहिष्णु मन कुण्ठित है, क्रदन कपित अधर पर मौन स्थित है तथा वह राहुग्रस्त शरदेंदुहासिना है। वह ज्ञानमूढ गीता प्रकाशिनी है। उसका तप सयम सफल है वह अहिंसा का स्तय पिलाकर जनमन का भय तथा भवतम हरती है। वह जग जननी जीवन विकासिनी है।'[२]

इस कविता म भारत के सौन्दय का वणन नहीं है वरन भारत के यथाथ रूप का वणन है। कवि न भारत माता का कारुणिक चित्र खीचा है। गोपाल शरण सिंह ठाकुर न भी भारत' कविता म मानवी तथा दवीकरण का आरोप भारत पर किया है।'

वदना

इस युग क कविया के हृदय म भारतवष की प्राकृतिक सुषमा की झाँकी अकित जान पडती है जिससे प्रेरित होकर वे उसका गुणगान करते हुए नही अघाते। उनके लिए मात भूमि का कण कण पावनता स ओत प्रोत है। अपनी भूमि के विषय म यह दवी एव पुनीत धारणा भारतीय कवियो की अपनी ही विशेषता है। कविया द्वारा प्रस्तुत भूमि का सास्कृतिक शुचितम स्वरूप देवो

---

१ सुमित्रानदन पत–ग्राम्या–पृ० ५४–५७।

२ सुमित्रानदन पत–भारतमाता–ग्राम्या पृ० ४८–४९।

३ गोपालशरण सिंह ठाकुर भारत' आधुनिक कवि भाग ४, पृ० २४।

एव दवना क समान धर्मनिष्ठ भारतीय जनता का अचना तथा वन्दना के लिए बाध्य करता है। इस अचना और वन्दना की प्रवृत्तियों को कवियों ने समुचित रूप म वाणी प्रदान की है।

वन्दना गाथा की परम्परा म श्रीधर पाठक का नाम अमर है। भारत गीत' की अधिकांश कविताओं म भी इसका स्पष्ट प्रमाण प्रकट होता है।[1] श्रीधर पाठकजी न १९ वीं शता ी क अन्तिम चरण म जो परम्परा प्रवर्तित की थी, वही आज तक गतिशील है। उनकी कविताओं म देश की भौगोलिक एकता की पीठिका म रखा गया है। राष्ट्र की भावना यही उसकी मूलभूत भित्ति है। राष्ट्र की वदना श्रीधर पाठक ने मातृभू पुण्य मातृधर' पुण्य भारत मही नौमि भारतम् आदि कविताओं म संस्कृत स्तोत्रों की शैली पर की है। भारत वन्दना म कवि न देश की स्तुति करते हुए वन्दना के सुमन चढाए हैं—

> "प्रनामि सुभग सुदेश भारत सतत मम रजनम
> मम देश मम सुखधाम मम तम प्रान धन जन जीवनम्
> मम तात मात सुतादि प्रिय निज-बंधु गह गुरु मन्दिरम्
> सुर असुर-नर नागादि अगनित जाति जन पद-सुन्दरम। '[2]

श्रीधर पाठक भारत के महागायक थ। इनके रोम-रोम म मातृभूमि के प्रति प्रम था और वह भारत की अचना वदना प्रशस्ति आदि के रूप म प्रकट हुआ।

भारत गीतो का उन्मेष बग बग और स्वदेशी आन्दोलन के साथ हुआ। राष्ट्र का राजनीतिक जागरण कवियों को फिर भारत वन्दना की प्रेरणा देने लगा। बग कवि बंकिम का प्रसिद्ध गीत वदे मातरम मन्त्रपूत होकर राजनीतिक आन्दोलन की लहर के साथ सारे देश म गुञ्जित होने लगा—

> वन्दे मातरम।
> सुजलाम सुफलाम् मलयज शीतलाम
> शस्य श्यामलाम। मातरम।

वन्दे मातरम् का प्रभाव हिन्दी कवियों पर पड़ा है।

---

१ श्रीधर पाठक—भारत गीत के गीत—भारतभूमि जय जय भारत नौमि भारतम् हिन्द वन्दना भारत वन्दना भारत श्री प्यारा हिन्दुस्तान भारत आरती।

२ श्रीधर पाठक—भारतगीत'—भारत वन्दना—पृ० ४२–४३।

गिरिधर शर्मा की 'भारत माता'[1] कविता पर इसकी मुद्रा है। भारत के स्तवन में मैथिलीशरण गुप्त का योग प्रशंसनीय है। गुप्त जी भारतीय संस्कृति के उपासक हैं अतएव वे सांस्कृतिक भारत का यशोगान करने में सफल हुए हैं—

"जय जय भारत भूमि भवानी।
अमरों ने भी तेरी महिमा बारम्बार बखानी॥
तेरा चन्द्रवदन वर विकसित शान्ति-सुधा बरसाता है,
मलयानिल विश्वास निराला नव-जीवन सरसाता है।
हृदय हरा कर देता है यह अंचल तेरा धानी,
जय जय भारत भूमि भवानी।[2]

सुधीन्द्र की निम्नलिखित कविता गय और ऊर्जस्वित गरिमा का प्रतिनिधित्व करती है। यहाँ केवल यशोगान नहीं है प्रकृति का भी वरदान पाते हैं और करोड़ों की अपार शक्ति हरहराती हुई सुनाई देती है। सुधीन्द्र की अमर कीर्ति स्थापना के लिए यह कविता काफी है।

जन्म भूमि, मातृभूमि पितृभूमि। वंदना।
रागभूमि त्यागभूमि भागभूमि। अर्चना।
हिमालय विश्व का भाल
सिंधु-ब्रह्मपुत्र गंगा मंजु कंठमाल
समुद्र पाँव धो रहा है
सुगंधित पुष्प चाँदनी
है तुझे निहार स्वर्ग की समस्त कल्पना।[3]

वन्देमातरम के समान ही शहीद श्रद्धानन्द के पुत्र प्रा० इन्द्रजी के गीत ने भी कांग्रेस के आन्दोलन के समय काफी कीर्ति अर्जित की थी। देश के कोने कोने में यह गीत गाया जाता था। वृद्ध बालक, युवक युवतियों के मुख से यह गीत मधुर ध्वनि में गूँज उठा था। यह गीत अत्यंत सरल, प्रवाहमयी भाषाशैली में लिखा हुआ था। इसके प्रसाद गुण तथा अर्चना और वन्दना की निहित भावना से इस गीत को सबने अपनाया। वह प्रसिद्ध गीत इस प्रकार है—

---

१ गिरिधर शर्मा—भारतमाता—सरस्वती स० १९०५।
२ मैथिलीशरण गुप्त—मंगलघट—प्र० स० पृ० ३३।
३ उद्धृत—डा० रांगेय राघव—आधुनिक कविता में विषय और शैली, पृ० २४५।

"ऐ मात भूमि तेरे चरणो में सिर नमाऊँ
मैं भक्तिभेट अपनी तेरे शरण मे लाऊँ
माथे प तू हो चन्दन छाती पै तू हो माला
जिह्वा पै गीत तू हो मैं तेरा नाम गाऊँ।"[1]

एक ओर जहाँ कवि भारत की अपार प्राकृतिक सुषमा का, महिमा का, श्रेष्ठता का वर्णन करते हैं उसी समय भारत की दरिद्रता, रोगग्रस्तता, परवशता, असहायता, करुण स्थिति को वे भूले नही हैं। किन्तु इस कारुणिक दृश्य को देखकर कवियो के मन मे द्वेष के बदले सहानुभूति का ही सचार होता है। इस पराधीन भारत का वियोग हो जाने पर भी कवियो को विरह व्यथा का दुख असह्य होता है। अपने इन सारे भावो को कवियो ने शब्द बद्ध किया है।

कविरत्न रत्नाकर ने रोग अकाल ग्रस्त अस्थि पजर शेष भारतमाता का कारुणिक दृश्य खीचा है जिसे पढ़कर शायद ही कोई एसा भारतीय होगा जो द्रवित नही होगा—

'वन्दो भारत भूमि महतारा।
शेष अस्थि पजर बस केवल भययुत चकित बेचारी
रोग अकाल दुकाल सताई जीरन देव दुखारा।
धूलि धूसरित जाकी झलक अलकें स्वेत उघारी।
अचल फटे लटे तन ठाढी सुधि बुद्धि सकल बिसारी॥'[2]

सुमित्रानन्दन पत ने भी ग्राम्या की भारतमाता शीर्षक कविता म भारत का कारुणिक दृश्य खीचा है। सोहनलाल द्विवेदी ने पराधीन भारतमाता की करुण स्थिति का अकन करते हुए लिखा है—

बह रहा है नयनो से नीर नहीं रे तन पर काई चीर
देखती तेरी मग की ओर हो रहा जननी आज अधीरा।'[3]

उन्होंने दूसरी एक कविता म भारतमाता को सुकुमारी वन्दिनी सीता के रूप म चित्रित किया है।[4]

कवि बच्चन मात भूमि के प्रति अपना अनन्य प्रेम प्रकट करते हैं। कवि कल्पवृक्ष के अमर फलो का आस्वाद लेने के बाद भी खट्टे मीठे बेरो की याद

१ ज० गै० करन्दीकर–भारतीय राष्ट्रगार्न–प० २५।
२ उद्धृत–डॉ० रामसकल राय शर्मा–द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य, प० २७७।
३ सोहनलाल द्विवेदी–प्रभाती–पृ० ३४।
४ सोहनलाल द्विवेदी–प्रभाती–प० ११।

करता है। बहुरंगी सध्या घन पर आसन पाकर भी मातभूमि की तितलियों के पीछे कवि दौडना चाहता है। गगन सिंधु विद्युत लहरा पर खेलने के बाद भी गगाजल का एक बिदु पाने के लिए कवि लालायित है। कवि भारत म ही पुनजम चाहता है—

जीवन स ऊबा, इच्छा है जम न फिर मैं पाऊँ
पर यदि जम पडे लेना ही भारत म ही आऊँ ॥[1]

भारत की अनुपम प्राकृतिक सुषमा का वणन भी मिलता है। कुछ अप वादा को छोडकर भारत की प्रशस्ति, वदना तथा भारत का देवीकरण एव कारुणिक दश्य खीचने म हिंदी कवियो मे अदभुत रीति से समान कल्पनाएँ और भाव मिलते हैं। इन भावो को अभियक्त करन म भी समान शब्दावली का प्रयोग भारत की वचारिक एकता धारा की ओर स्पष्ट रूप स सकेत करता है।

—

१ बच्चन—कवि और देशभक्त, प्रारम्भिक रचनाएँ भाग २, पृ० ८८।

अतीत का गौरवगान

भारत का अतीत गौरव मडित समृद्धि-वभव से युक्त एव सम्पन्न रहा है। भारत की सस्कृति तथा सम्यता भी बडी प्राचीन है। 'मनुष्य जीवन के प्रारम्भिक युग म, जिस समय ससार के अय बडे-बडे देश सभ्यता की प्रथम सोपान पर चरण निक्षेप कर रहे थे उस समय यह देश उन्नति के शिखर पर पहुँच चुका था।'[1] देश सम्पन्न था धनधाय से सम्पूण था, और धार्मिक, सामाजिक आर्थिक एव राजनतिक क्षेत्रो मे पर्याप्ति विकास कर चुका था। भारतवष का इतिहास देखें तो ज्ञात होता है कई बार विदेशी आक्रमण हुए, इसकी धन सम्पत्ति का अपहरण हुआ बबरता प्रदशन कर नर सहार हुआ तो भी यह सस्कृति अविच्छिन रही। इसकी सस्कृति मे एसी दढता तथा परिपक्वता आ चुकी थी कि लाख क्रातिया के घात प्रतिघात सहने तथा अनगिनत वदेशिक विभीषिकाओ का सामना करने पर भी इसकी नीव हिल नहा सकी। इसके विपरीत यूनान मिस्र, असीरिया, बबीलोनिया इत्यादि अनेक देशो की सास्कृतिया के उदाहरण विद्यमान है जो अल्पकाल मे ही काल के गाल मे समा कर अपना अस्तित्व खो चुके हैं। इकबाल ने इसी को लक्ष्य करके भारतीय सस्कृति की महिमा का वणन किया है।[1] जो देश कभी विश्व विजय के स्वप्न लिया करते थे कब के वे रसातल मे लीन हो चुके है परन्तु भारत आज भी जीवित है चिरनवीन है।

प्राचीन सुसस्कृत भारतवष भिन्न भिन्न प्रकार की कलाओ तथा दस्तकारियो मे चिकित्सा तथा विज्ञान मे वाणिज्य तथा व्यापार म प्रवीण था। अथशास्त्र, कामशास्त्र ज्योतिष गणित नाटयशास्त्र काव्यशास्त्र, शिल्पशास्त्र का भी

---

१ वतन के गीत–(अ० स०) प० ५२

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नही हमारी
सदियो रहा है दुश्मन दौरे जमाँ हमारा।
यूनान मिश्र रोमा सब मिट गए जहाँ से
बाकी मगर है अब तक नामो निशाँ हमारा॥'

पयाप्त विकास इस देश में हुआ थ । भारत के ज्योतिष व्याकरण तथा गणित का प्रभाव अय देशो पर भी पडा था । इस देश मे महान साम्राज्य का एकच्छत्र शासन था । विराट् वभवशाली नगर, क्त त्वशाली शासन यगणा सुख सम्पन्न लाग, सुसस्कृत समाज और अनेक वीर और महान पुरुष इस देश मे हो गए। प्राचीन भारत वष मे चद्रगुप्त, अशोक शातकर्णी, पुलकेशी, समुद्रगुप्त, हषवधन ऐसे चक्रवर्ती सम्राट कालिदास भवभूति आदि जगदवन्द्य कवि हो गए तथा चरक सुश्रुत नागाजु न आयभट्ट भास्कराचाय आदि ने भौतक शास्त्र की अनक शाखाओ का विकास किया था, और अजन्ता एलोरा समान चित्रकला और शिल्पकला का भी निर्माण हुआ था ।

इस महान अतीत का क्यो स्मरण किया जाय ? कारण भारतवष का प्राचीन गौरव अब भी कुछ देर के लिए हमारे हृदय को गौरवान्वित कर देता है। हम अपनी हीन दीन दशा की तुलना उस समय सर्वोच्च अवस्था से करते हैं। और गहरी विषमता पाकर हमारे हृदय म विषाद की सष्टि होती है। यह विषाद हम निश्चेष्ट न बनाकर इस विषमता को दूर करने म प्रयत्नशील बना देता है।'[1] अतीत गौरव के स्मरण का एक और कारण यह है कि अग्रेज कूट नीतिज्ञ भारतीय राष्ट्रीयता का विनाश करके और जनता को आत्म विस्मृत करके उसे अपनी सभ्यता सस्कृति क रग म रगना चाहते थे। वे भारतीय जनता म आत्म-हीनता की भावना दृढ करके, उसे दीघकाल के लिए दासत्व की शृखला म जकडे रखना चाहते थे।'[2] अतीत का वभव दासता की शृखलाओ को तोडने की प्रेरणा देता है। राष्ट्र के प्रति प्रेम राष्ट्रीय चेतना का मूल आधार है। यह प्रेम की भावना अनेक रूपो म प्रकट होती है। परतन्त्र और दलित देश के लिए यह बडे अभिमान की बात होती है कि उसका अतीत महान हो। इसके अतिरिक्त अवनत राष्ट्र को उन्नति की ओर अग्रसर करने तथा प्रेरणा देने के लिए भी उसके गौरवपूण अतीत का चित्रण किया जाता है। अतीत गौरवगान का सब से बडा उद्देश्य यही होता है कि दुदशाग्रस्त देशो म अपनी अवनति के प्रति क्षोभ का भाव जाग जाय। अतीत जहाँ गौरवमय लगता है वहाँ हमारी नसो म उत्तेजना है और हमारे उचित माग का निदशन करता है।' राष्ट्रीय चेतना ने हमारा ध्यान प्राचीन गौरवगाथा की ओर आकर्षित किया। गौरवमय अतीत के सहारे ही गौरवमय भविष्य के निर्माण की आशा की जा सकती थी।[3] अतीत की ओर आसक्ति स देखने की इस

---

१ लक्ष्मीनारायण सुधांशु"–'राष्ट्रीय कविता', साहित्यिक निबध पृ० ३३।
२ डा० शभुनाथ पाडेय-आधुनिक हिन्दी काव्य म निराशावाद, पृ० ५७।
३ गुलाबराय–काव्य विमश–पृ० १९७।

प्रवृत्ति को दिनकर ने छायावादी सस्कार माना है ।[1]

आधुनिक युग के काव्य में सास्कृतिक पुनरुत्थान और अतीत गौरवगाथा की जो प्रवृत्ति परिलक्षित होती है उसके मूल मे भी अग्रेजी का प्रभाव विद्यमान है। मक्समूलर कौलब्रुक, विलियम जोन्स आदि पाश्चात्य विद्वानो ने वदिक साहित्य और प्राचीन भारतीय साहित्य के सम्बन्ध में अपनी जो शोधें प्रस्तुत की उनसे एतद्देशीय विद्वान लाभान्वित हुए और अपनी प्राचीन सस्कृति एव साहित्य के प्रति उनकी गौरव भावना जागत हुई। भारत में आय समाज स्वामी विवेकानन्द लो० तिलक जसे भारतीयता के समथक राष्ट्रीय नेताओ के उपदेशो तथा राजेन्द्र लाल मिश्र और भाण्डारकार की एतिहासिक खोजों के फलस्वरूप वदिक धम, सस्कृति प्राचीनादश तथा इतिहास का अधिक उज्ज्वल रूप सम्मुख आया है। हिन्दी साहित्य म भी पूव पुरुषो की भूलो की अथवा न्यूनताओ की अपक्षा अतीत के उज्ज्वल पक्ष का विशुद्ध रूप में प्रतिपादन किया गया है।

'गांधीजी तथा सभी राष्ट्रीय दलो का भारत के प्राचीन गौरव के प्रतिपादन मे विश्वास था। अत अपने युग के अनुकूल कवियो न अपनी लेखन शक्ति द्वारा भारत क विगत गौरव आध्यात्मिक और दार्शनिक नतिक आदर्शों शारीरिक बल तथा भौतिक एश्वय का चित्रण एतिहासिक अनुसधान तथा प्रामाणिक धम ग्रथो के आधार पर किया है। धमग्रथो से उन विषयो को चुना जो कि सम्पूण राष्ट्र के एकीकरण के मुख्य तन्तु हैं। इतिहास क उस चेतन स्वरूप को अपनाया जो पुन राष्ट्र की रग रग म नवीन जीवन सचार करने वाला था।'[2]

अतीत की ओर आकृष्ट होन का एक प्रमुख कारण यह भी था कि ब्रिटिश साम्राज्य क भीषण दमन चक्र क कारण मुक्तकठ म वतमान की आलोचना कोई नही कर सकता था। वतमान की क्षतिपूर्ति क लिए अतीत क गौरव म पर्याप्त साधन मिल गए। राष्ट्रभक्ति और स्वातन्त्र्य जिन भावनाओ को प्रस्तुत रूप म व्यक्त करने का साधन नहीं था उन्हें अप्रस्तुत माध्यम स स्वच्छन्दता

---

१ छायावादी कविता का मूलाधार भावुकता थी और भावुकता जब वर्तमान से असतुष्ट हो जाती है तब वह स्वभावत अतीत की ओर लालसा से दौडती है।

—दिनकर–काव्य की भूमिका, प० ४२।

२ डा० सुषमानारायण–भारतीय राष्ट्रवाद क विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति–प० ७४।

पूवक व्यक्त किया जा सकता है। हार्डिज, विलिंगटन आदि को भारत से निष्काति करने की सीधी चर्चा के लिए जहाँ कारावास का दड था, वहाँ मिल्यूकस या शक या हूण आदि को निष्कात करने का वणन पूण ओज और स्पष्टता के साथ किया जा सकता था।"[1]

ब्रिटिश साम्राज्य की कूटनीतिज्ञता और भीषण दमनचक्र तथा आतक के प्रतिक्रिया रूप म कवियो ने अतीत का गौरवगान मुक्तकठ से किया। आधुनिक काल की राष्ट्रीय वीणा का सबसे ऊँचा सास्कृतिक स्वर अतीत का गौरवगान ही है। हमारे कवियो का ध्यान भी उज्ज्वल और महिमा मण्डित अतीत की ओर गया। हिन्दी साहित्य म भारतीय सास्कृतिक आत्मा अर्थात भारत के विगत आध्यात्मिक नतिक भौतिक उत्कष के चित्र मिलते हैं। कवियो ने भारत के महान और गौरवपूण अतीत के उल्लख स्थान स्थान पर किए हैं। अतीत का 'स्वणयुग' कवियो की कल्पना को स्फुरित करता है। इससे कवियो मे आत्मसम्मान और आत्म निभरता आई अतीत के गौरव न सकट के समय म उत्साह और साहस दिया। अतीत की भव्यता कवियो के हृदय मे आशा का सचार करती है और उन्हे देश के आशापूण भविष्य का विश्वास दिलाती है।

भारत के स्वर्णिम अतीत का गौरवगान कवियो ने किया है उसम तीन प्रवत्तियाँ लक्षित होती है—

(१) भारत के प्राचीन और ऐतिहासिक युग के वभव का नैतिक, सामाजिक आदर्शो एव समद्धि का गान करना,

(२) अतीत की तुलना म वतमान काल की दुदशा का वणन करना

(३) अतीत क वभव, व्यक्ति पराक्रम द्वारा उदबोधन

हम इन तीनो प्रवत्तियो को सविस्तार देखेंगे

भारत के स्वर्णिम अतीत का वणन

भारत के विगत गौरव का हिन्दी कविता म वणनात्मक एव इतिवृत्तात्मक रूप म चित्रण मिलता है। इस युग क काव्य की विशेषता यह है कि पौराणिक, प्रागतिहासिक एव ऐतिहासिक आख्यान लकर कथा काव्य अधिक सख्या मे लिखे गये, जस—मथिलीशरण गुप्त का "रग म भग (सन १९०९), जयद्रथ वध अयोध्यासिह उपाध्याय का प्रियप्रवास सियारामशरण गुप्त का मौय विजय' जयशकर प्रसाद का 'महाराणा का महत्त्व', लोचनप्रसाद पाडेय का 'मेवाड गाथा' आदि।

---

१ डा० नगेन्द्र आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवत्तियाँ पृ०

न रखा है। वाल्मीकि वेदव्यास, कालिदास के साहित्य ग्रंथों की समानता शेक्सपीयर, होमर और फिरदौसी नहीं कर पाते।"[1]

भारत धर्मप्रधान देश है जिसकी रग रग में उसका अध्यात्म तथा दर्शन व्याप्त है। यूरोप जिसका भविष्य अति उज्ज्वल है वह तो भारत के शिष्यों का शिष्य है। आर्यों की धूम समस्त भूमण्डल में फैली थी। तिब्बत स्याम चीन जापान, लंका, यवद्वीप ईरान काबुल, रूस, रोम यूनान सभी जगह आर्यों की आन थी।"[2] धर्मग्रन्थों के साथ आध्यात्मिक महापुरुष ऋषि मुनियों के जीवन चरित्र भी अनुकरणीय हैं, जिन्होंने भारतभूमि पर जन्मग्रहण कर इसका मान बढ़ाया है। रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि यही देश है जिसने सबसे पहले सभ्य होकर विश्व को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित किया और यहीं अलौकिक तत्त्वज्ञ, ब्रह्मज्ञानी गौतम पतंजलि हुए।[3] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'खंडहर के प्रति' कविता में देशवासियों को विस्मृति की निद्रा से जगाने के लिए जैमिनी, पतंजलि व्यास आदि ऋषि मुनियों का स्मरण किया है।[4]

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने अतीत का गौरवगान करते हुए लिखा है कि एक दिन वह भी था जब हम बल, विद्या और बुद्धिवाले थे हम भी धीर वीर गुणशाली थे। जब कभी हम सामना करते थे तो पत्थर भी मोम हो जाते थे। जब हम विजय करने के लिये निकलते थे तो हमारी रणहुंकार सुनकर सभी दहल जाते थे। हम भी जहाजों से दूर दूर तक जाते थे और न जाने कितने द्वीपों का पता लगा कर आते थे। आज अगर पैसेफिक के ऊपर मंडराते थे तो कल एटलांटिक में दिखाई पड़ते थे। अमेरिका में हमने निवास किया था यूरोप में हमने प्रकाश फैलाया था और अफरीका को हमने अपने ढंग में ढाला था। हमने सभ्यता को जगत में फैलाया था और जावा में हिंदुत्व का रंग जमाया था। जापान चीन तिब्बत तातार और मलाया सभी ने हमसे ही धर्म का मर्म पाया था।"[5]

अनेक कवियों ने भारत के पूर्व पुरुषों का गुणगान किया है। रामनरेश त्रिपाठी ने राम, लक्ष्मण सीता भरत हनुमान भीष्म कृष्ण, द्रोण भीम

---

१ मैथिलीशरण गुप्त–भारत भारती–पृ० ८३।
२ मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० ३३।
३ रामनरेश त्रिपाठी– मानसी (द्वि० सं० १९३४) पृ० ३८।
४ निराला खंडहर के प्रति' अपरा, पृ० १३२।
५ 'हरिऔध"–"आर्यपंचक' काव्योपवन पृ० १६२–६३।

अर्जुन, दधीचि, हरिश्चन्द्र आदि का स्मरण किया है।[1] वियोगी हरि ने भी 'वीरसतसई' में सत्यवीर, शूरवीर, दयावीर, धर्मवीर, युद्धवीर आदि का स्थान देकर राघव प्रतिज्ञा, सौमित्र प्रतिज्ञा, भीष्मप्रतिज्ञा, अर्जुन प्रतिज्ञा आदि का वर्णन किया है।

अतीत काल में भारतवासी धन-धान्य सम्पन्न थे, देश में धनधान्य का अभाव नहीं था। भारत स्वर्ग प्रतिमा नाम से प्रख्यात था। समृद्ध भौतिक ऐश्वर्य के कारण ही यह विदेशियों द्वारा आक्रान्त हुआ। शिल्प कला अपने पूर्ण विकास को प्राप्त कर चुकी थी, इसी कारण देवस्थपति भी यहीं विश्राम करना चाहते थे। इस युग के शिल्प कौशल के आदर्श के सम्बन्ध में गुप्त जी ने लिखा है—

> "धामरूपी धारिणी के चित्र से
> इन्द्र की अमरावती के मित्र-से
> कर रहे नृप सौध गगन स्पर्श हैं
> शिल्प कौशल के परम आदर्श हैं।

सिद्धराज खण्ड काव्य के प्रथम सर्ग में भी भौतिक ऐश्वर्य का चित्रण मिल जाता है।[3] भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम हरिऔध और मैथिलीशरण दोनों ही महान् कवियों के काव्य में विशेष रूप से मिलता है। हरिऔध लिखते हैं 'हम उन महान् व्यक्तियों की संतति हैं जिन्होंने बार-बार बहुत-सी जातियों को उबारा। हमारी रगों में उन मुनिजनों का लहू है जिनकी पग रज राज से भी अधिक प्यारी है। हमारे एक मुख था परन्तु हमने दशमुख को मारा था, दो बाहुओं से सहस्र बाहुओं को हराया था। ठोकरें मारकर हम मेरु पर्वत भी चूर करते थे, जहाँ हम पग रखते थे वहीं हुन बरसता था।'[4] सोहनलाल द्विवेदी ने भी विक्रमादित्य के वैभव का वर्णन करते हुए लिखा है कि वह युग जीवन का स्वर्णकाल था जब नया प्रभात मुस्कराया था। धरा ने नया वरदान पाया था। नव रत्नों की कीर्ति तथा उज्जैन का वैभव दसों दिशाओं में व्याप्त था।[5]

छायावाद युग के उत्तरार्द्ध में ज्वलन्त पौरुष, बलिदान और क्रान्ति का

---

१ रामनरेश त्रिपाठी—मानसी, पृ० ३७–३९।
२ मैथिलीशरण गुप्त—साकेत पृ० २२।
३ मैथिलीशरण गुप्त—सिद्धराज—प्रथम सर्ग।
४ हरिऔध—पद्यप्रसून—पृ० १६४–१६५।
५ सोहनलाल द्विवेदी—प्रभाती—विक्रमादित्य पृ० ८१।

ज्योतिधर कवि दिनकर' ने भारत की अतीत-कालीन वीर भावना का चित्रण कर अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय देना आरम्भ कर दिया था। इतिहास काव्य कला आज का जितना सुन्दर सम्मिलन दिनकर के काव्य में मिलता है वह अपूर्व है। दिनकर का तुलनात्मक विवेचन भी अधिक ऐतिहासिक, कलात्मक एवं मार्मिक भावुकता से संयुक्त है। "दिनकर में इतिहास अपनी सम्पूर्ण वेदनाओं को लेकर बोलता है।[1] दिनकर दिल्ली के पूर्व गौरव मुस्लिम संस्कृति के उत्कर्ष, वीर पात्रों और ऐतिहासिक स्थानों की स्मृति दिलाकर देशवासियों को उनके पतन की ओर सचेत करते है।[2] दिनकर की राष्ट्रीय भावना ने इतिहास के अतीत गौरव का आकार मात्र नहीं लिया है वरन सच्चे अर्थों में मूर्त एवं मुखर किया है। दिनकर ने सम्पूर्ण इतिहास को स्पर्श किया है अर्थात हिन्दू काल एवं मुस्लिम काल दोनों को समान रूप से अपनाया है। कवि ने पाटलिपुत्र के वैभव का वर्णन किया है। पाटलिपुत्र में भारतवर्ष के सबसे समृद्धशाली साम्राज्य सबसे अधिक काल तक स्थिर रहे हैं। मौर्यों और गुप्तों की राजधानी यहां पाटलिपुत्र है। पाटलिपुत्र ने ऐश्वर्य, विजयोल्लास और पराक्रम के सबसे सुन्दर दिन देखे है। भारत का नेपोलियन समुद्रगुप्त यहीं का राजा था। कवि ने पाटलिपुत्र की गंगा को सम्बोधित करते हुए मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति की है। उसके हृदय पटल पर एक एक चक्रवर्ती सम्राट की झांकी अंकित हो जाता है और वह शौर्य बल की प्रशंसा करने में व्यस्त हो जाता है। अतीत का गौरवगान वर्तमान को बल प्रदान करने में सहायक सिद्ध होता है ऐसा कवि का दृढ़ विश्वास है—

> तुझे याद है चढ़े पदों पर कितने जय सुमनों के हार ?
> कितनी बार समुद्रगुप्त ने धोयी है तुम में तलवार ?
> तेरे तीरों पर दिग्विजयी नृप के कितने उड़े निशान ?
> कितने चक्रवर्तियों ने हैं किये कूल पर अवभृथ-स्नान ?
> विजयी चन्द्रगुप्त के पद पर सेल्यूकस की वह मनुहार
> तुझे याद है देवि ? मगध का वह विराट उज्ज्वल शृंगार ?[3]

कवि दिनकर की वृत्ति रेणुका में अतीत गौरव में खूब रमी है। दिनकर के काव्य में अतीत को वाणी मिली है इतिहास साकार होकर हमारे सामने अवतरित हुआ है। खंडहरों के हृदय को प्रतिध्वनित और अनुप्राणित

---

१ प्रो० कामेश्वर वर्मा–दिग्भ्रमित राष्ट्र कवि पृ० २१।
२ दिनकर–दिल्ली–पृ० ७।
३ दिनकर– पाटलिपुत्र की गंगा'–रेणुका, पृ० २५।

कहीं कहीं शिकार की अतीत भावना कहीं मौर्य और गुप्त के साम्राज्य वैभव में मुखरित है, कहीं मुगल कला विलास में विकसित है और कहीं राजपूत शौर्य में उद्भासित है।

सियारामशरण गुप्त ने 'मौर्य विजय' नामक काव्य ग्रन्थ में इतिहास प्रसिद्ध वीर सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य की कथा ली है। इस आख्यान में सियाराम जी ने भारत के अतीत राष्ट्रीय आदर्शों का उत्कर्ष के सम्बन्ध में लिखा है कि अन्य देशों में इस देश ने सद्गुण पीयूष का दान किया है। मौर्यकालीन भारतवासियों की चारित्रिक पवित्रता उच्च कोटि की थी। कहीं भी दुश्चरित्रता दिखाई नहीं देती थी, किसी की वृत्ति अन्यायी पर नहीं जाती थी, सब प्रसन्नचित्त रहते थे, सबके प्राण सद्भाव से परिपूर्ण थे। कवि के मतानुसार उस समय देश अत्यधिक समुन्नत था, जैसा कि अन्य कोई देश न था। सब नियमपूर्वक रहते थे, कोई बुरा काम न करता था और शासन का सब काम इस प्रकार होता था जैसे स्वयं धर्म ही राजकाज करता हो।[1] अर्द्ध एशिया खण्ड को विजित करने वाला सिल्यूकस भी भारत के चारित्रिक उत्कर्ष को देख अति प्रभावित होकर कहता है—

"धीर-वीर ये भारतीय होते हैं सब
किसी देश के मनुज न देखे इनसे अब
सदा ही उज्ज्वल सब चरित्र इनके होते हैं
चोरों का भी भय-त्याग इनके सोते हैं।"[2]

भारतीयों के नैतिकतापूर्ण चरित्र के सम्बन्ध में मैथिलीशरण गुप्त जी ने लिखा है कि एक तरु के विविध सुमनों से खिले पौरजन परस्पर मिले रहते थे, सभी स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ट, उद्योगी, बाह्यभोगी किन्तु आन्तरिक योगी थे।[3] रूपनारायण पाण्डेय ने भी सीता सावित्री को आदर्श नैतिकता के रूप में प्रस्तुत किया है।[4]

इस प्रकार मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों ने अतीत गौरवगान, आध्यात्मिक उत्कर्ष, नैतिकता, उच्च चारित्र्य, सुसंस्कृत समाज, वैभवशाली नगर, संस्कृति का वर्णन करते हुए अनेक रचनाएं प्रस्तुत की हैं। सांस्कृतिक भारत की महत्ता और गरिमा बखान करते वे कभी थकते नहीं। महाभारतीय और

---

१ सियारामशरण गुप्त—मौर्य विजय, पृ० ७।
२ वही पृ० ९।
३ मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, पृ० २२।
४ रूपनारायण पाण्डेय—'पराग', पृ० ४२।

रामायण के वीरो का वे मुक्त कठ म गान करते हैं ।

रामायण और महाभारत क वीरो का गान सबसे उच्च कठ से मैथिली गरण गुप्त न किया है। इस वणन मे ओज की मात्रा का प्राधान्य है। यह लोकमान्य तिलक जसे उग्र राष्ट्रवादियो का प्रभाव है जिन्होने देशवासियो को अपनी छिपी हुई शक्ति पहचानन क लिए देश क वीर चरित्रो की ओर देखने का प्रयास किया था। राम और कृष्ण जसे ईश्वरीय पौराणिक चरित्रो क अकन म भी कवियो न वीरत्व के प्रबल आग्रह म काय लिया है।

इसी वीरत्व की भावना का मैथिलीशरण गुप्त न 'द्वापर' मे कृष्ण बलराम आदि के दिव्य चरित्रो म आलेखन किया है। जयद्रथ-वध नामक खडकाव्य भी महाभारत युग की वीर भावना को मुखरित करता है। इसम चक्रव्यूह ताडन के प्रयास वीरगति पाने वाले षोडश वर्षीय वीर अभिमन्यु तथा अजुन द्वारा जयद्रथ-वध कर उसकी मृत्यु का प्रतिशोध लेने की कथा है। आय वीर विपक्ष क वभव का दप चूर करते नही तो उस समय उसमे साहस एव पराक्रम का सचार हो जाता था। चक्रव्यूह को देख कर अभिमन्यु म भी वीर भावना का ही सचार हुआ—

> 'अभिमन्यु षोडश वष का फिर क्या लडे रिपु से नही
> क्या आयवीर विपक्ष वभव देखकर डरते कही ?
> सुनकर गजो का घोष उसको समझ निज अपयश-कथा
> उन पर झपटता सिंह शिशु भी रोष कर जब सवथा।'[1]

इस वीर भावना क सम्बन्ध म आ० नददुलारे वाजपेयी न कहा है कि वीर पूजा की निर्विकल्प भावना अभिमन्यु के चरित्र म खिल पडती है। नवयुवक अभिमन्यु राष्ट्रीय यज्ञ मे अपन प्राणो की आहुति चढा देता है।'[2]

रामायण महाभारत और समृद्ध साम्राज्य स्थापित करने वाले चन्द्रगुप्त आदि महान् वीरो क वणन क साथ ही कवियो ने मध्यकालीन राजपूत वीरो का भी गुणगान किया है। १९००–१९२० ई० क काल मे पुरातत्त्व विभाग और कनल टाड के 'राजस्थान' क फलस्वरूप राजस्थान के अनक वीरत्व एव नतिक उच्चादर्शों स पूण चरित्रो का उदघाटन हुआ। साधारण हिंदू जनता को अपने देश की वीर जाति राजपूतो पर गव होना स्वभाविक था। कवियो ने इनकी वीरता का गान कर पराधीन हतोत्साह अवनत भारत जनता को ओज स ही नही भरा वरन् वीर पात्रो के नतिकता द्वारा जनता को सयम

---

१ मथिलीशरण गुप्त–जयद्रथ वध–पृ० ६।

२ आ० न ददुलारे वाजपेयी–हिन्दी साहित्य की बीसवी शताब्दी–पृ० ३५।

पराजय की सम्भावना देखकर उनका जौहरव्रत तो वीरता की चरम सीमा है। 'वीर क्षत्राणी' में लाला भगवानदीन ने इन राजपूत क्षत्राणियों की वीरता का गान किया है। प्रेमघन ने 'स्वप्न बिन्दु' के अन्तर्गत 'स्त्रियों की कीर्ति' शीर्षक कविता में भारत की नारियों का गान करते हुए सावित्री, सीता, पद्मिनी, कमलावती, कर्मदेवी, दुर्गावती सभी का नाम बड़े आदर और श्रद्धा के साथ लिया है।[1] रूपनारायण पाण्डेय ने 'जौहर' काव्य में सती शिरोमणि वीर नारी पद्मिनी के सतीत्व और बलिदान का चित्र अंकित किया है। इसका कथानक इतिहास प्रसिद्ध है। राजा रत्नसिंह की अनन्य सुन्दरी रानी पद्मावती अपने पति को अलाउद्दीन के पंजे से छुड़ाकर स्वयं जौहर की आग में भस्म हो जाती है। अलाउद्दीन छल बल और महाभीषण युद्ध के बावजूद पद्मिनी की राख पाता है। पद्मिनी के कोमल और रौद्र रूप का बड़ा सुन्दर वर्णन कवि ने किया है —

> 'हिममाला है पर ज्वाला भी
> लक्ष्मी है पर काली भी
> दो डग चलना दुर्लभ पर
> अवसर पर रण मतवाली भी॥[2]

श्यामनारायण पाण्डेय ने केवल राजपूत वैभव और शौर्य का वर्णन किया है। आप की वाणी में ओज, ललकार अथवा पौरुष अवश्य है पर भावनाएं बहुधा हो सम्प्रदायवादी परिधि में घिर जाने के कारण समस्त राष्ट्र की अभिव्यक्ति नहीं कर सकी है। वे उस मार्ग का सम्यक अनुसरण करने में पिछड़ गये हैं व्यापक आधारों को लिए हुए हमारा राष्ट्रीय-आन्दोलन जिस पर गतिशील हो रहा था। यदि कहें कि आपने हिन्दू राष्ट्रीयता को स्वर दिया तो अत्युक्ति नहीं होगी।[3]

इन राजपूत वीरों के अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त ने बड़े प्रभावशाली ढंग से सिक्खों के गुरु की तेजस्वी वीरता का 'गुरुकुल' में वर्णन किया है। राणाप्रताप के समान ही युगपुरुष शिवाजी महाराज के शौर्य का वर्णन अनेक हिन्दी कवियों ने किया है। वियोगी हरि ने शिवाजी को 'निरवलम्ब हिन्दुओं का जहाज' कहा है[4] तो मैथिलीशरण गुप्त ने 'दुर्दान्त आलमगीर का गर्व

---

१ प्रेमघन, प्रेमघन सर्वस्व प्रथम भाग पृ० ६२१।
२ श्यामनारायण पाण्डेय—जौहर—पृ० ५३।
३ डा० शिवकुमार मिश्र—नया हिन्दी काव्य, पृ० ६४—६५।
४ वियोगी हरि—वीर सतसई—पृ० ५७।

मिटाने वाला महाराष्ट्र का 'सिंह' के रूप में शिवाजी को चित्रित किया है।[1] रामकुमार वर्मा संस्कृति के आधार स्तम्भ भिन्न भिन्न पूर्व पुरुषों को सम्बोधित करते हुए लिखते हैं—

'और जो स्वतंत्रता की पावन परम्परा
तुमने चलाई थी रहेगी सदा देश में
और हिम गंगा। कहो कमठ शिवाजी से
माता जीजाबाई या भवानी की शपथ ले।।'[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्ययुग के वीरों के नैतिक आदर्श बल-विक्रम, त्याग बलिदान सम्मान और स्वातन्त्र्य प्रेम का, तथा वीरांगनों के पराक्रम आत्मसमर्पण जौहर का कवियों ने मुक्त कंठ से गान किया है।

भारत के प्राचीन वैभव कला-कौशल पराक्रम से अभिमान का सचार हो जाता था किन्तु उसी समय वर्तमान काल की अधोगति अप्रामाणिकता अनैतिकता दुश्चरित्रता दरिद्रता निरधमिता एवं कला कौशल तथा व्यापार का ह्रास देखकर कवियों को बड़ा दुःख होता है और इस वर्तमान स्थिति पर आंसू बहाए बिना उन्हें रहा नहीं जाता। भारत की अतीत कालीन वैभवपूर्ण स्थिति की तुलना में वर्तमान काल की दुर्दशा उन्हें अतीव पीड़ा देती है और इस दुःख को अनेक हिंदी कवियों ने वाणी दी है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अति आर्त्त स्वर में भारत के प्राचीन एवं आध्यात्मिक वीर पुरुषों को वर्तमान दुःखमोचन के लिए स्मरण किया है—

कहँ गए विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर।
चन्द्रगुप्त चाणक्य कहा नाम करि कै थिर।
कहँ क्षत्रिय सब मरे जरे सब गये किते गिर।
कहाँ राज को तौन साज जेहि जानत है चिर।
कहँ दुर्ग सैन धन बल गयो धूरहि दिखात जग।
जागो अब तो खल बल दलन रच्छहु अपनो आर्य मग।[3]

उत्तर से दक्षिण पूर्व से पश्चिम तक भारत की भौगोलिक एकता की तुष्टि करने वाले सुविख्यात नगरों—काशी अयोध्या प्रतिष्ठानपुर इन्द्रप्रस्थ,

---

१ मैथिलीशरण गुप्त-भारत भारती, पृ० ८६।
२ रामकुमार वर्मा आकाश गंगा पृ० ८९।
३ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-भारतेन्दु ग्रंथावली-दूसरा भाग (द्वि० स०) पृ० ६८३-६८४।

पराजय की सम्भावना देखकर उनका जौहरव्रत तो वीरता की चरम सीमा है। 'वीर क्षत्राणी' में लाला भगवानदीन ने इन राजपूत क्षत्राणियों की वीरता का गान किया है। प्रेमघन ने 'स्वदेश बिन्दु' के अन्तर्गत 'स्त्रियों की कीर्ति' शीर्षक कविता में भारत की नारियों का गान करते हुए सावित्री, सीता पद्मिनी कमलावती कर्मदेवी, दुर्गावती सभी का नाम बड़े आदर और श्रद्धा के साथ लिया है।[1] श्यामनारायण पाडेय ने जौहर काव्य में सती शिरोमणि वीर नारी पद्मिनी के सतीत्व और बलिदान का चित्र अंकित किया है। इसका कथानक इतिहास प्रसिद्ध है। राजा रतनसिंह की अनन्य सुन्दरी रानी पद्मावती अपने पति को अलाउद्दीन के पंजे से छुड़ाकर स्वयं जौहर की आग में भस्म हो जाती है। अलाउद्दीन छल बल और महाभीषण युद्ध के बावजूद पद्मिनी की राख पाता है। पद्मिनी के कोमल और रौद्र रूप का बड़ा सुन्दर वर्णन कवि ने किया है —

'हिममाला है पर ज्वाला भी
लक्ष्मी है पर काली भी
दो डग चलना दुर्लभ पर
अवसर पर रण मतवाली भी ॥'[2]

श्यामनारायण पाण्डेय ने केवल राजपूत वैभव और शौर्य का वर्णन किया है। आप की वाणी में ओज ललकार अथवा पौरुष अवश्य है पर भावनाएँ बहुधा ही सम्प्रदायवादी परिधि में घिर जाने के कारण समस्त राष्ट्र को अभिव्यक्त नहीं कर सकी हैं वे उस मार्ग का सम्यक् अनुसरण करने से पिछड़ गयी हैं व्यापक आधारों को लिए हुए हमारा राष्ट्रीय-आन्दोलन जिस पर गतिशील हो रहा था। यदि कहें कि उन्होंने हिन्दू राष्ट्रीयता को स्वर दिया तो अत्युक्ति नहीं होगी।[3]

इन राजपूत वीरों के अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त ने बड़े प्रभावशाली ढंग से सिक्खों के गुरु की तेजस्वी वीरता का 'गुरुकुल' में वर्णन किया है। राणाप्रताप के समान ही युगपुरुष शिवाजी महाराज के शौर्य का वर्णन अनेक हिन्दी कवियों ने किया है। वियोगी हरि ने शिवाजी को 'निरवलम्ब हिन्दुओं का जहाज' कहा है[4] तो मैथिलीशरण गुप्त ने दुर्दान्त आलमगीर का गर्व

१ प्रेमघन प्रेमघन सर्वस्व प्रथम भाग, पृ० ६३१।
२ श्यामनारायण पाण्डेय—जौहर—पृ० २३।
३ डा० शिवकुमार मिश्र—नया हिन्दी काव्य पृ० ६८—६९।
४ वियोगी हरि—वीर सतसई—पृ० ५७।

मटाने वाला महाराष्ट्र का 'सिंह' के रूप मे शिवाजी को चित्रित किया है।[1] रामकुमार वर्मा सस्कृति के आधार स्तम्भ भिन्न भिन्न पूर्व पुरुषो को सम्बोधित करते हुए लिखते हैं—

> "और जो स्वतत्रता की पावन परम्परा
> तुमने चलाई थी, रहेगी सदा देश मे
> और हिम ग ग। कहो कमठ शिवाजी से
> माता जीजाबाई या भवानी की शपथ ले।।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्ययुग के वीरो के नैतिक आदर्श, बल विक्रम, त्याग बलिदान सम्मान और स्वातत्र्य प्रेम का, तथा वीरागनों के पराक्रम, आत्मसमर्पण जौहर का कवियो ने मुक्त कठ से गान किया है।

भारत के प्राचीन वैभव कला-कौशल पराक्रम से अभिमान का सचार हो जाता था, किन्तु उसी समय वर्तमान काल की अधोगति अप्रामाणिकता, अनैतिकता दुश्चरित्रता दरिद्रता निर्धनता एव कला कौशल तथा व्यापार का ह्रास देखकर कवियो को बडा दुःख होता है और इस वर्तमान स्थिति पर आसू बहाए बिना उनसे रहा नहीं जाता। भारत की अतीत कालीन वैभवपूर्ण स्थिति की तुलना मे वर्तमान काल की दुर्दशा उन्हे अतीव पीडा देती है और इस दुःख को अनेक हिन्दी कवियो ने वाणी दी है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अति आर्त्त स्वर मे भारत के प्राचीन एव आध्यात्मिक वीर पुरुषो को वर्तमान दुःखमोचन के लिए स्मरण किया है—

> कहँ गए विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर।
> चन्द्रगुप्त चाणक्य कहा नासे करि कै थिर।
> कहँ क्षत्रिय सब मरे जरे सब गये किते गिर।
> कहाँ राज को तौन साज जेहि जानत है चिर।
> कहँ दुर्ग सैन धन बल गयो धूरहि दिखात जग।
> जागो अब तो खल बल दलन रक्षहु अपनो आर्य मग।'[3]

उत्तर मे दक्षिण पूर्व से पश्चिम तक भारत की भौगोलिक एकता की तुष्टि करने वाले सुविख्यात नगरो—काशी अयोध्या प्रतिष्ठानपुर इन्द्रप्रस्थ

---

१ मैथिलीशरण गुप्त—भारत भारती पृ० ८६।
२ रामकुमार वर्मा आकाश गगा पृ० ८९।
३ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—भारतेन्दु ग्रथावली—दूसरा भाग (द्वि० स०) पृ० ६८३–६८४।

मथुरा, द्वारिका, चित्तौड पाटलिपुत्र की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए इनके पतन या विनाश पर कवि शोक प्रकट करता है—

नहि वह काशी रह गयी, हती हेम मय जौन ।
नहि चौरासी कोस की रही अयोध्या तौन ॥
राजधानि जो जगत की, रही कभौं सुख साज ।
सो बिगहा दस बीस म सिकुडी सी जनु आज ॥ [1]

बालमुकुन्द गप्त ने भी पुरानी दिल्ली कविता म भारत के ऐतिहासिक नगर की प्राचीन गौरव गाथा का चित्र अंकित कर काल के घातक प्रभाव वर्णन किया है ।[2]

जिस भूमि म ज्ञानी गौतम कणाद तथा दानी दधीचि शिवि ने जन्म लिया, जो भूमि एक युग मे विश्व की रानी थी और जिसके अधीन सारी ऋद्धियां सिद्धियाँ थी वही भारतभूमि आज कितनी परिवर्तित होकर दरिद्री बन गई है । देश की अतीत और वर्तमान अवस्था के वैषम्य पर कवि क्षुब्ध हो जाते हैं। वहाँ तो प्राचीन काल का शक्तिशाली भारत जिसकी ओर कोई दृष्टि तक उठाकर देखने का साहस नहीं करता था और कहाँ आधुनिक काल का निर्बल तथा पददलित देश जिसपर सभी अत्याचार कर रहे हैं । कवि इससे दुखी होकर लिखता है —

'रह्यो सकल जगव्यापी भारतराज बडाई
कौन विदेशी राज न जो या हित ललचाई ।
रह्यो न तब नित म इहि ओर लखन को साहस
आर्यराज राजेश्वर दिग्विजयिन के भय बस ।
पै त्वहि वीर विहीन भूमिभारत की आरत
सब सुलभ समुझयो या कहैं आतुर असि भारत । [3]

भारत के अतीत गौरव के स्तम्भ काशी प्रयाग पचनद पानीपत चित्तौड कविया को भारत की भावना की स्मृति दिलाते हैं और साथ ही साथ वर्तमान हीन दशा का कारुणिक चित्र सामने लाते हैं । इन ध्वंसावशेषों व ध्यान पर कवि लज्जा से नतमस्तक हो जाते हैं ।[4] एक युग म अत्यन्त सामर्थ्यशाली कांति

---

१ प्रेमघन—प्रेमघन सर्वस्व पृ० १५५ ।

२ डा० नथन मिश्र—गद्यकार—बाबू बालमुकुन्द गुप्त जीवन और साहित्य पृ० १०८ ।

३ प्रेमघन—प्रेमघन सर्वस्व हार्दिक हर्षादर्श ।

४ भारतेंदु—भारतेन्दु नाटकावली पृ० ६३०–६३१ ।

मान, वैभवपूर्ण मगध का साम्राज्य रहा है। किन्तु वह शक्तिशाली मगध अब मिट्टी में सो रहा है। कवि इस नगर की वर्तमान अवस्था को यथार्थ रीति से अंकित करते हुए लिखता है—

"दायें पार्श्व पड़ा सोता मिट्टी में मगध शक्तिशाली
वीर लिच्छवी की विधवा बायें रोती है वैशाली।"[1]

आज की वर्तमान अवस्था देखकर दिनकर को बरबस अतीत के प्राचीन वीर पुरुषों की तथा वैभव की स्मृति आती है। वर्तमान की पराक्रम शून्यता, शौर्य विहीनता देखकर 'अवध के राम' 'वृन्दावन के घनश्याम' तथा मगध के अशोक एवं बलधाम चंद्रगुप्त की याद आ जाना स्वाभाविक ही है। कवि करुणा के आँसू बहाकर भिखारिणी सुकुमारी मिथिला का वर्णन करता है—

पैरों पर ही है पड़ी हुई
मिथिला भिखारिणी सुकुमारी
तू पूछ कहाँ इसने खोई
अपनी अनन्त निधियाँ सारी।[2]

निराला ने प्राचीन संस्कृति का गौरव जैसा 'महाराज शिवाजी का पत्र' 'जागो फिर एक बार' 'खण्डहर के प्रति' नामक अनेक कविताओं में किया है उसी प्रकार वर्तमान अवस्था को देखकर उसके कारुणिक चित्रों का भी अंकन उन्होंने किया है। भारत की वर्तमान अधोगति देखकर उन्हें विश्वास ही नहीं होता कि भीमार्जुन आदि का कीर्ति क्षेत्र यही देश रहा होगा, अथवा ज्ञान कर्म भक्ति योग की समन्वय की श्रीकृष्ण से कथित गीता की वाणी इस देश में कभी गूँज उठी होगी।[3] यमुना को देखकर कवि को उसके पुरातन युग की वैभव-सम्पन्नता की स्मृति हो जाती है।[4] कवि ने दिल्ली के वातावरण का प्रभावशाली शब्दों में वर्णन किया है कि उसे पढ़कर हम भी उदासीन और गम्भीर हो जाते हैं और आज की वर्तमान अवस्था पर हमें बड़ा खेद होता है और लज्जा से सिर झुक जाता है। कवि लिखता है—

आज वह फिरदौस सुनसान है पड़ा
शाही दीवान आम स्तब्ध है हो रहा

---

१ दिनकर—रेणुका पृ० २७।
२ दिनकर—हिमालय—रेणुका पृ० ८।
३ निराला—अनामिका (द्वि० स०) पृ० ५८।
४ निराला—यमुना के प्रति—परिमल—पृ० ४०।

> दुपहर को पारद में उठता है झिल्ली रव
> बोलते हैं स्यार रात यमुना कछार में ।[1]

निकर और निराला के समान ही वर्तमान गौय शून्य भारत को देखकर कवि सोहनलाल द्विवेदी को महाभारत तथा ऐतिहासिक युद्धवीर-युधिष्ठिर कर्ण द्रोण भीष्म, तथा विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त हुमायून अनार चाणक्य पृथ्वीराज आदि की स्मृति आती है।

अतीत के वर्णन के द्वारा उद्बोधन

अतीत के वैभव की तुलना में वर्तमान दशा का चित्रण करके ही कवियों ने विराम नहीं लिया वरन् इस वर्तमान दुर्दशा को समाप्त करने के लिए अतीत के प्रसंगों के द्वारा स्पष्ट रीति से उद्बोधन भी किया है। अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भ काल में अंग्रेजों ने उदारता की नीति से काम लिया उस समय कवियों ने अंग्रेजी राज्य की सराहना की। परन्तु अंग्रेजों की कूटनीति से अवगत होते ही जनता में असंतोष भड़कने लगा। इस असंतोष को तथा जनता के आन्दोलनों को कुचलने के लिए अंग्रेजी शासन का कठोर दमनचक्र बढ़ता गया सब ओर आतंक छा गया। सन् १८५७ में विद्रोह करने वाले क्रांतिकारियों पर किए गए घोर अत्याचार का घाव जन मानस में ताजा था। अतः प्रत्यक्ष रीति से अंग्रेजी शासन तथा शासकों की भर्त्सना, निन्दा अथवा आलोचना करना मृत्यु को निमंत्रण देना था। फलतः कवियों ने अतीतकालीन दुष्ट अत्याचारी शासकों की निंदा करके अप्रत्यक्ष रीति से अंग्रेजी शासकों की भर्त्सना की। इसका सुन्दर उदाहरण हिन्दी साहित्य में उपलब्ध है। कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर का कीचक वध नाटक पौराणिक कथा पर आधारित है। परन्तु इस नाटक में चित्रित कीचक लोगों को तत्कालीन अत्याचारी अहंकारी दुष्ट शासक लगने लगा। लोगों में उत्तेजना का प्रसार होने लगा और अन्त में इस रूपकात्मक नाटक के खेले जाने पर अंग्रेज शासकों ने प्रतिबन्ध लगा दिया। खाडिलकर के समान ही हिंदी कवियों ने अतीत के द्वारा जनता में असंतोष की प्रवृत्ति का प्रसार करके जन-जागृति का कार्य किया है।

अपने देश के प्रति प्रेम गौरव तथा अभिमान की भावना हरेक की होती है। यदि किसी में इस भाव का संचार न होता हो तो वह नर पशु और

---

१ निराला–दिल्ली अनामिका–पृ० ६२।

. . . प्रभाव होता है ।[1] इस गौरव तथा अभिमान की भावना का जन-समूह म करन का काय सियारामशरण गुप्त के मौय विजय की भावना का सचार है । सियारामशरण गुप्त जी न इतिहास प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त मौय की कथा लेकर मौयविजय म भारतवासिया की सिल्यूकस जस विश्व-विजय के आकाक्षी वार पर विजय दिखाइ है । नि सदह मौय विजय जसी अतीत-गौरव-स्मरण क हत लिखी गयी कृतियाँ पराधीन एव दलित भारतवासिया को स्वाभिमान एव उत्साह से भरन म सहायक थी । मौय विजय म चन्द्रगुप्त की वीरता साहस और उसक युद्ध-कौशल का वणन अतीत भक्ति तक ही सीमित नहा है वरन वह देश की तत्कालीन स्थिति को बदलन क लिए सन्देश देने की क्षमता रखता है । कवि न यह सदेश उद्बोधन द्वारा दिया है—

जग म अब भा गूज रहे हैं गीत हमारे
शौय वीय गुण हुए न अब भी हम स न्यारे
रोम मिस्र चीनादि काँपत रहत सारे,
यूनानी तो अभी अभी हमस हैं हारे ।
सब हम जानते हैं सदा भारतीय हम हैं अभय
फिर एकबार ह विश्व । तुम गाओ भारत की विजय ।[2]

उस देश क निवासी साहसी, निर्भीक बलशाली रह हैं । इस पथ्वी पर एसी कौन सी वस्तु है जिसस इस देशवासिया की उन्नति म तनिक भी गति रोध निर्माण हो सकता है ? दुगम गिरि वन वह्नि प्रबल पानी की धारा सब भारतीया क वश म एक युग म थ । विश्व म एसा कोइ शत्रु नहा है, जिस हम जीत सकत नहा । भारतीया को इस युग म भी पुनश्च बल-वीय का परिचय देना होगा ।[3]

सियारामशरण गुप्त की भाँति ही अपन बलशाली भुजदडा स भारत म एक महान साम्राज्य की स्थापना करन वाले असीम शक्तिशाली विदेशी

---

१ जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है
वह नर नहा नर पशु निरा है और मतक समान है ।
—प० गयाप्रसाद शुक्ल स्वाभिमान और देशाभिमान उद्धत सुधाशु—साहित्यिक निबध पृ० ३६ ।

२ डा० परशुराम शुक्ल विरही आधुनिक हिन्दी काव्य म यथायवाद पृ० ९६ ।

३ सियारामशरण गुप्त— मौय विजय पृ० १० ।

४ वही , पृ० २७ ।

शक्ति सेल्युकस पराजित करने वाले राष्ट्रवीर चन्द्रगुप्त की वीर भावना की अभिव्यक्ति दिनकर ने भी की है।[1] चन्द्रगुप्त नाटक द्वारा जयशंकर प्रसाद ने भी अतीत की वीर भावना के उत्कृष्ट रूप का आदर्श तत्कालीन भारतीयों के सम्मुख रखा है।

भारतीय वीरता के वर्णन द्वारा लोगों में उत्साह एवं आवेग का संचार करने का सफल प्रयास अनेक कवियों ने किया है। सुभद्राकुमारी चौहान अपनी 'वीरों का कैसा हो वसन्त' शीर्षक कविता में रामायण तथा महाभारत काल के पृष्ठों को पलटती हैं। उन्हें ऐतिहासिक पुरुषों तथा ऐतिहासिक स्थानों की स्मृति हो जाती है और वे अतीत के उज्ज्वल पौरुष के आदर्श द्वारा वर्तमान जाति में प्राणों का संचार करना चाहती हैं। कवयित्री अतीत का मौन त्यागकर लंका में क्यों आग लगी थी इसका स्पष्टीकरण देने का आवाहन करती है साथ ही साथ कुरुक्षेत्र को अपने अनन्त अनुभव बताने का भी उपदेश देती है।[2] 'दिनकर' भी अपने पुरातन वीरों को उद्दण्ड जीवन शक्ति को फिर से जागृत होते देखना चाहते हैं। उनके उद्गारों में प्रबल हुंकार और धधकते हुए हृदय की एक पुकार विद्यमान है —

> रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ
> जाने दे उनको स्वर्ग धीर
> पर, फिरा हमें गाण्डीव गदा
> लौटा दे अर्जुन भीम वीर।[3]

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने तो रामायण और महाभारत के वीरों के द्वारा शौर्य हीन भारत का पराक्रम का सृजन किया है। षोडश वर्षीय अभिमन्यु शत्रु के अभिमान को सहन न करते हुए यमराज से भी युद्ध करने के लिए प्रस्तुत होता है। शत्रु का प्रतिकार करने के लिए तेजस्वी वीरों की आयु का प्रश्न ही गौण है यह अपने पराक्रम का परिचय देते हुए अभिमन्यु ने सिद्ध किया। शत्रु की शक्ति कभी न बढ़ने देना चाहिए तथा उसका त्वरित प्रतिशोध लेना चाहिए ऐसा संदेश भी कवि ने दिया है—

> बदला न लेना शत्रु से कैसा अधम है अनय है
> निज शत्रु का साहस कभी बढ़ने न देना चाहिए

---

1 रामधारी सिंह 'दिनकर' पाटलिपुत्र की गंगा से रेणुका पृ० २५।

2 सुभद्राकुमारी चौहान वीरों का कैसा हो वसन्त —मुकुल पृ० १०।

3 दिनकर— हिमालय रेणुका—पृ० ७।

बदला समय में वैरियों से शीघ्र लेना चाहिए
पापी जनों को दण्ड देना चाहिए समुचित सदा।[1]

महच्चरित्र संसार के किसी भी भाग पर उद्भूत हों वे सार्वभौमिक होते हैं। निराला ने शिवाजी के सच्चरित्र का वर्णन किया है। निराला की शिवाजी का पत्र कविता हिन्दी की बहुमूल्य निधि है। कवि का ओजस्वी स्वर ऐतिहासिक नायक का स्पंदन पाकर प्रखर हो जाता है। इस कविता में वीर रस के साथ ही साथ हिन्दू जागरण व सांस्कृतिक उत्थान को प्रश्रय प्राप्त हुआ है। इस पत्र ने राजनीतिक गुलामी से छुटकारा दिलाने की प्रेरणाएँ दी हैं। कवि की यह उद्दाम उत्तेजना का स्वर उसके अमर शब्दों में देखिए –

"सांस्कृतिक चिंतन का दूसरा ध्रुव है।
  हैं जो बहादुर समर के,
  वे मरकर भी
  माता को बचायेंगे।
शत्रुओं के खून से
धो सके यदि एक भी तुम माँ का दाग
कितना अनुराग देशवासियों का पाओगे
निर्जर हो जाओगे, अमर कहलाओगे।[2]

इसी प्रकार "जागो फिर एक बार" में कवि ने गुरु गोविन्द सिंह की वीरता का प्रखर स्वर निनादित कर उनकी वीर प्रतिभा का स्मरण कराया है। सवा सवा लाख पर एक को चढ़ाने की वीर वाणी के कारण उद्बोधन किया है। इस कविता की रचना १९२१ में हुई थी। यह गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन का काल था। जन जनता को जागृत कर स्वतन्त्रता संग्राम की ओर उन्मुख करने के लिए भारतीय इतिहास के वीर चरित्रों का काव्य में वर्णन आवश्यक था वही कार्य इस कविता द्वारा सम्पन्न हुआ है।

माखनलाल द्विवेदी अपने पूर्व पुरुषों के गौरव शाली चरित्रों के आख्यान द्वारा वर्तमान भारतीय जनता में नवीन स्फूर्ति का संचार करने के इच्छुक हैं। कवि मेवाड़ केसरी महाराणा का आह्वान करता है। इस विषम काल में मानो उसकी सारी आशाएँ उसी वीर शिरोमणि पर जाकर केन्द्रित हो

---

१ मैथिलीशरण गुप्त– जयद्रथ–वध पृ० ८।
२ निराला– शिवाजी का पत्र परिमल पृ० १९३।
३ निराला–'जागो फिर एक बार' अपरा–पृ० ९।

जाती हैं। द्विवेदीजी की वाणी मे ओज और करुणा का रोमाचकारी सम्मिश्रण मिलता है—

"जागो। प्रताप मेवाड देश के
ध्वज भेद है जगा रहे
जागो। प्रताप मा-बहिनो के
अपमान-छन्द है जगा रहे
मेरे प्रताप तुम फूट पडो
मेरी आँसू की धारा से
मेरे प्रताप तुम गूँज उठो।
मेरी सतप्त पुकारा से।"[1]

कवि रक्तसनी हल्दीघाटी के एक एक कण कण म वीर योद्धाओ का रूप खोलता हुआ पाता है। कवि के अतरतल म स्वतत्रता की एक प्रबल उमग व्याप्त है और यह वीरता कवि उत्तेजित वाणी द्वारा अभिव्यक्त कर देता है। हल्दीघाटी के आगन म भीषण सग्राम मचा था, जिसमे पल म अगणित राजाओ के राजमुकुट धूलि म मिल गये थे। उस पर अनक युग बीत गए हैं। वही वीरता की स्वातत्र्य उमग आज देशवासियो में सचारित होना आवश्यक है।[2] केसरी महाराणा प्रताप पारिवारिक तथा दरिद्रता की आपत्तियों म हीन दीन एव आत्मस्वरूप विस्मत कराकर अकबर से सधि करना चाहते हैं तब इस सधि म विमुख करके उनमें आत्मतेज की पुनर्स्थापना का श्रेय कवि पृथ्वीराज के पत्र को है। महाराणा के प्रति पृथ्वीराज का पत्र और पृथ्वीराज के प्रति महाराणा का पत्र अनेक कवियो की कविताओ का विषय रहा है जिनमें कवि वर्तमान अवस्था का भी अकन करके राणाप्रताप के वीर आदर्श तथा उनकी सच्चरित्रता वीरता स्वातन्त्र्य-प्रेम सगठन के बल घाता में अविचलित रहने की प्रवृत्ति द्वारा जनता में प्रेरणा और उत्साह का सचार करते हैं।[3]

राणा प्रताप, शिवाजी चन्द्रगुप्त आदि की वीरता के आख्यान तथा अभिमन्यु की वीरता का आख्यान किशोरो के सम्मुख कवियो ने रखा है। इसी प्रकार पद्मिनी दुर्गावती और पद्मा का त्याग बलिदान और शौर्य का

---

1 मोहनलाल द्विवेदी-भैरवी (सन १९४४) पृ० २६।
2 वही पृ० ३।
3 1) माखनलाल द्विवेदी-प्रभाती पृ० ७०।
2) मैथिलीशरण गुप्त-पत्रावली पृ० ५।

आदश रमणियो के सामने रखकर कवि जागरण तथा उद्बोधन का सदेश अबलाओ का दते हैं। महाराज जसवन्त सिंह की पत्नी की वीरता का वणन देखने योग्य है। राज्य प्राप्ति के लिए औरगजेब और दारा का जो युद्ध हुआ था उसम जोधपुर के महाराज न दारा का साथ दिया था। पर अनेक कारणो से औरगजेब की जीत हुई। महाराज जसवन्तसिंह युद्ध से विरत होकर जोधपुर गए। परतु उनकी महारानी न वीरबाला होने के कारण उसका मुँह तक देखना नही चाहा। महारानी ने उनकी हार पर बडा क्रोध किया। सुनते हैं उसन किले का दरवाजा बन्द कर दिया। महारानी सीसोन्नी का तेजस्वी रूप निम्नलिखित शब्दो म कवि ने अकित किया है—

हे ना—नही नाथ नही कहूँगी अनाथिना होकर ही रहूँगी
होने कही जो तुम नाथ मेरे तो भागने क्या फिर पीठ फेरे ?[1]

स्वातत्र्य वीरो का तीर्थस्थान, जो शहीदो की आत्मा है और जो आजादी क दीवाना का मदिर है उस हल्दीघाटी म प्रेरणा का सदश देने वाले कवि आपस की फूट पर दुख अभिव्यक्त करते हैं। हमारी पारस्परिक फूट ही हमारे विनाश का मूल सूत्र है। हमारी त्रुटिया और दुबलताओ ने ही एक अन्य जाति को हमारे ऊपर शासन करन की लोलुपता उत्पन्न की है।

जितनी विरोधी शक्तियो से
हम लड रहे हैं आपस म
सच मानो व्यय है यह
शक्तिया का व्यय ही।[2]

पारस्परिक फूट, कलह तथा आत्म हीनता आदि दुष्प्रवत्तिया के कारण स्वातत्र्य सूय को ग्रहण लगा हुआ है। परतु यह पराधीनता का ग्रहण शाश्वत काल तक रहने वाला नही है। मेघाच्छन्न चद्रमा भी पुनश्च निरभ्र आकाश म अपन समस्त सौंदय तथा गौरव के साथ सचार करने लगता है तथव स्वाधीनता भी चिरकाल तक दुष्प्राप्य वस्तु नही रह सकती। थोडे ही समय म स्वातन्त्र्य का प्रभात हाने वाला है ऐसी अमर आशा का सचार जनसमूहो म कवि करना चाहता है। कवि का दुदमनीय आशावाद का रूप निम्नलिखित शब्दो म झलकता है—

"घरे क्या व्योम म हैं अविरत रहता साम की मघमाला ?
होता है अत मे क्या वह प्रकट नही और भी निवाला ?[3]

१ मथिलीशरण गुप्त—पत्रावली, पृ० २०।
२ निराला—छत्रपति शिवाजी का पत्र अपरा, पृ० ७८।
३ मथिलीशरण गुप्त—पत्रावली, पृ० ५।

हिन्दी कविता पर यह दोष लगाया जा सकता है कि यह केवल हिन्दू सम्प्रदाय की भावना से उद्रेक अथवा जागृति म गतायर है। राष्ट्रकवि मथिली शरण गुप्त का 'भारत भारती काव्य ग्रन्थ' हिंदुत्व और अतीत प्रेम को व्यक्त करता है। इसका प्रणयन भी हिंदुओं के उद्धार तथा उत्साह वर्धन के लिए हुआ है।[1]

पौराणिक या पूवमध्यकालीन आख्यान जो भारतीय हिन्दू अथवा बौद्ध संस्कृति के प्रतीक हैं किस प्रकार मवजन सवेद्य हो सकते हैं ? हिन्दी साहित्य म अतीतकालीन भारत के आध्यात्मिक उत्थान के चित्र पुरातन हिन्दू धर्म हिन्दू एव आध्यात्मिक भावना को दृष्टि म रखकर रचे गए हैं। यह हिन्दू दर्शन तथा पौराणिक संस्कृति भारत के अन्य अल्पसंख्यक क्या मानें ? उनके अपनी पृथक धर्मनिष्ठा एव पुराण भी है। अत हिन्दुओं की संस्कृति उन्हें सवेद्य नहीं हो सकती। मुस्लिम संस्कृति की ओर कविता न अधिक ध्यान क्यों नहीं दिया ? कारण कवियों का ऐसा प्रतीत होता था कि हिंदू जाति का पराभव मुसलमानी शासकों के द्वारा हुआ था। यदि मुसलमान शासक के द्वारा हिन्दू जाति क्षीण न होती तो आज उसको अगरेजों का गुलाम न बनना पड़ता और न ये दुर्दिन देखने पड़ते इसके कारण परम्परा के रूप म मुसलमानी शासन को वह अपने राष्ट्रीय पराभव के लिए उत्तरदायी ठहराता है और मुसलमानी शासन की घोर निंदा करता है।[2] इसका एक और कारण दिया जा सकता है। मुसलमानों ने राष्ट्रीय भावना के विकास म अपना पूर्ण सहयोग प्रदान नहीं किया था और लार्ड कर्जन की बग भंग नीति ने हिंदू मुस्लिम वैमनस्य का बीज वपन कर मुस्लिम लीग जसी साम्प्रदायिक संस्था को जन्म दिया। इस कारण इतिहास के मुसलिम काल और मुसलमान पात्रों के प्रति हिंदी कवियों की संवेदना जागृत नहीं हो सकी थी। युग की ऐतिहासिक परिस्थिति म कवि इतना उदार न बन सका कि देश के मुसलमानों की सांस्कृतिक चेतना को अपना सकता। आर्य समाज स्वामी विवेकानंद और राष्ट्वादी नेतागण यथा लो तिलक आदि की प्राचीन भारतीय संस्कृति, हिंदू-धर्म, वेदग्रंथो पर अटूट श्रद्धा थी जिनसे अधिकांश कवि प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त गाँधीजी के आगमन के पूर्व राष्ट्रवाद का विस्तृत रूप नहीं आ पाया था। तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टिगत कर कवियों

१ डा० केशरी नारायण शुक्ल-आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत पृ० १०७।

२ डा० शम्भुनाथ पाडेय-हिन्दी काव्य में निराशावाद पृ० ५७।

की अतीत कालीन हिंदू सांस्कृतिक चेतना न्याय एवं संगत लगती है।"[1]

इस प्रसंग में यह सूचित कर देना आवश्यक है कि मुसलमानों के आघातों के विरुद्ध मुसलमानी काल में जो आंदोलन हिंदू संस्कृति की रक्षा के लिए चला था और जिसने मराठा जाति को मुसलमानों के विरुद्ध मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए सन्नद्ध किया था उसकी गूँज अब तक बनी थी। आर्य समाज आंदोलन तथा हिंदुओं के अन्य सामाजिक आंदोलनों के प्रभाव से वही थोड़े भेद के साथ फिर जागरित हो उठा। भेद केवल दृष्टि का था। जहाँ पहले हिंदू संस्कृति की रक्षा की भावना हिंदुओं को देश से मुसलमानों को निकाल बाहर करने की उत्तेजना देती थी वहाँ आधुनिक युग में वह हिन्दू जाति, धर्म और समाज की रक्षा तथा उन्नति से संतुष्ट थी। इससे लोगों को देशोन्नति की प्रेरणा मिली।

गांधीजी की उदारवादी राष्ट्रीयता के फलस्वरूप हिंदी कवियों ने हिंदू-मुस्लिम समन्वित जनता के लिए समान रूप से हिंदू तथा मुसलमान शासकों के उज्ज्वल चरित्रों का गान करना प्रारम्भ कर दिया था। गुरुभक्त सिंह का "नूरजहाँ' महाकाव्य इसका श्रेष्ठतम उदाहरण है। महाकवि निराला अग्नि कवि दिनकर ने भी अपनी कविताओं में मुस्लिम वैभव के चित्र खींचे हैं। वैष्णव कवि मैथिलीशरण गुप्तजी की विचारधाराओं में हिंदुत्व का पक्षपात पूर्ण अनुरोध नहीं है। 'गुरुकुल' की रचना द्वारा सिक्खों के धर्म गुरुओं के महान् चरित्रों का उद्घाटन कर 'यशोधरा' रचना द्वारा बौद्धों के साथ गुप्तजी ने अतीत के आधार पर बौद्ध और सिक्खों के एकीकरण का प्रयास किया है। "काबा और करबला' रचना के द्वारा मुसल्मान के श्रेष्ठ चरित्रों का अंकन किया है। अर्थात ये सारे प्रयास अपवादात्मक और हिंदू मुस्लिम एकता के लिए किये गए हैं। मराठी कविताओं में मुस्लिम संस्कृति, वैभव तथा चरित्रों का वर्णन दुष्प्राप्य है। कारण महाराष्ट्र में स्वराज्य की स्थापना ही मुस्लिम राज्य से संघर्ष करके हुई थी।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि हिंदी कविताओं में मुस्लिम जनता अथवा संस्कृति के प्रति कहीं भी विद्वेष की भावना अभिव्यक्त नहीं हुई है। ऐतिहासिक और आधुनिक राष्ट्रवाद के विकास के समय से कुछ कारणों से मुस्लिम संस्कृति का चित्रण काव्य में अधिक नहीं हुआ। इससे काव्य संकीर्ण भावनाओं से ओतप्रोत नहीं है। डा० नगेंद्र स्पष्ट रूप से घोषित करते हैं कि

---

१ डा० सुषमा नारायण भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिंदी साहित्य में अभिव्यक्ति पृ० ७४।

'प्राचीन गौरव का पुनरुत्थान की भावना में स्वभावतः आर्य संस्कृति का ही जयजयकार है। परंतु यह भावना कहीं भी संकीर्ण तथा साम्प्रदायिक न होने पाई है।'[1]

"यद्यपि इस प्रकार की वीर रस परिपूर्ण रचना राजनैतिक परिस्थितियों के परिवर्तित हो जाने के कारण वर्तमान युग की कसौटी पर जाँच करने से एकांगी तथा जातीय सी जान पड़ती है परन्तु इनमें राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए सतत संघर्ष करते रहने की उद्दाम प्रेरणा न मिलती हो यह कहना न्याय संगत नहीं है।'[2] इन कविताओं में राष्ट्रीय उद्देश्य निहित है, आवश्यकता है केवल दृष्टि तथा लक्ष्य के परिवर्तित करने की। कवियों का हिन्दू धर्म प्रधान प्राचीन संस्कृति के गौरव गान करने का वास्तविक उद्देश्य किसी जाति अथवा वर्ग के प्रति विरोध प्रकट करना कदापि नहीं है वरन् उन्होंने राष्ट्रीय जागरण के लिए साधन मात्र के रूप में इसे अपनाया है। अतः उन्हें साम्प्रदायिकता का आवरण चढ़ाने की अपेक्षा देशवासियों में राष्ट्रीयता की एक मदमाती उमंग निर्माण करने के लिए प्रयोग करना ही उचित होगा।

---

१ डा० नगेन्द्र—आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ पृ० ३०।
२ डा० विद्यानाथ गुप्त—हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना पृ० ३१९।

वर्तमान दुर्दशा

जीवन और काव्य का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट है। यह सम्बन्ध कभी प्रत्यक्ष सामाजिक परिस्थितियों में प्रकट होता है तो कभी मानव चेतना बाह्य स्थूल परिस्थितियों की थपेड़ से अन्तर्मुख होकर तज्जन्य निराशा और वेदना की सूक्ष्म अभिव्यक्ति करती है। दोनों ही परिस्थितियों में काव्य चेतना निरपेक्ष नहीं रहती। ऐसा कभी नहीं होता कि जीवन की बाह्य परिस्थितियाँ बदल जायें किन्तु साहित्य न बदले। जीवन का प्रतिबिम्ब होने के नाते समाज की सम्पन्नता विपन्नता विलास संयम आशा निराशा जय पराजय सभी अन्तर्बाह्य परिस्थितियाँ साहित्य में प्रतिबिम्बित होती रहती है।

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में राष्ट्र के अभावात्मक पक्ष अथवा देश दुर्दशा के विभिन्न रूपों के ज्ञान से भी सहायता मिलती है। यदि भारतीय इतिहास पर दृष्टि डाली जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन देश दुर्दशा का प्रमुख कारण था—शताब्दियों की दासता। पराधीन रहने के कारण भारतीय जीवन की गति अवरुद्ध हो गयी थी, उसका विकास रुक गया था। देशवासियों में अज्ञानता, रूढ़िवादिता अंधविश्वास की जड़ें, गहराई में जम गई थी। देश का आध्यात्मिक-नैतिक पतन हुआ था। भारत जैसा महान विशाल एवं सुसंस्कृत देश राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक धार्मिक, सांस्कृतिक हीनता को प्राप्त हुआ था। आध्यात्मिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक भय तापों से त्रस्त जनता को अपने निस्त्राण का मार्ग नहीं सूझ रहा था। विधि ने पूरा विधान रच दिया था। भारत की दुर्दशा सर्वांगीण थी। वह देखी नहीं जाती थी।[1]

राष्ट्र की अभाव ग्रस्त अवस्था का हिन्दी कविताओं में अत्यन्त सजीव भाषा में वर्णन मिलता है। वस्तुतः अतीत के प्रति गौरवपूर्ण चिंतन का ही

---

१ रोवहु सब मिलि के आवहु भारत भाई
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र— भारत दुर्दशा —भारतेन्दु ग्रंथावली पृ० ४६९।

पूरक वतमान की कठोरता का चित्रण है । इस युग के कवियो की अतीत गौरव की तुलना म वतमान दुर्दशा की अनुभूति अधिक तीव्र थी । आधुनिक युग के कवियो की यह विशेषता रही है कि वे केवल भक्तिपूर्ण अथवा अतीत कालीन गौरव की रचनाओ म ही मग्न नही रहे प्रत्युत सामाजिक जीवन के प्रति भी उन्होने उत्साह दिखाया ।[1] सामाजिक कविता हिन्दी म भारतेन्दु तथा मराठी म केशवसुत के युग के पूर्व उपेक्षित ही नही थी वरन् उसका अभाव था । इस सामाजिक वृत्ति के कारण ही कवियो ने भारत के वतमान युग की दुदशा के प्रति सवेदना प्रकट करते हुए इसके विभिन्न रूपो का सहानुभूति से चित्रण किया है । वतमान दुदशा के चित्रण को हम चार प्रमुख भागो म बाँट सकते हैं—

१–सामाजिक
२–धार्मिक
३–आर्थिक
४–राजनीतिक ।

वतमान-दुदशा के इन पक्षो को हम विस्तार के साथ देखेंगे ।

सामाजिक पक्ष

उन्नीसवी शती म भारत की सामाजिक दशा हीनावस्था की पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी । 'हिन्दू जाति का प्रत्येक अग विकृत हो चुका था । समय की प्रगति के अनुसार समाज म आवश्यक सुधार और परिवतन करने के स्थान पर हिंदू परम्परा की लीक पीट रहे थे । गतानुगतिकता और रूढ़िवाद के अन्य भक्त बन बैठे थे ।'[2]

जातिपाँति दहेज, अनमेल विवाह आदि कई प्राचीन रूढ़ियाँ तथा कठोर नियम बन्धन समाज को जकड कर इसकी प्रगति पर कुठाराघात कर रहे थे। समाज का नैतिक पतन हो जाने के कारण ईर्ष्या द्वेष मोह दैन्य दौबल्य अशक्ति हिंसा, स्वार्थासक्ति अकृति असाहस भय, सदेह तथा भोग विलास आदि अनेक विकार समाज म पनप रहे थे । इस प्रकार अनेक व्यसनो से ग्रस्त समाज किंकतव्यविमूढ सा हुआ अध पतन की ओर जा रहा था । 'समग्र रूप से विचार करने पर समाज की सजनात्मक और नवनवोन्मेष शालिनी शक्ति का ह्रास हो गया था । उसम नए प्राण नवीन शक्ति और

१ डा० केसरी नारायण शुक्ल—आधुनिक काव्य धारा—पृ० ५४ ।

२ डा० लक्ष्मीनारायण गुप्त—हिंदी भाषा और साहित्य को आय समाज की देन, प० ४ ।

चेतना फूँकने की आवश्यकता थी ।[1]

कवियो ने समाज की इस दुदशा का वणन किया है । इसे तीन भागो में विभाजित करते हुए हम देखेंगे—

१—अशिक्षा, रूढिवादिता, जातिपाँति, सामाजिक विषमता आदि ।

२—नारी की दयनीय अवस्था ।

३—अछूतो की शोचनीय दशा ।

अशिक्षा, रूढिवादिता, जातिपाति सामाजिक विषमता आदि का वणन

आधुनिक कवियों का लक्ष्य समाज है । समाज से विमुख होकर कोई कवि अपना अस्तित्व नही रख सकता था, इसीलिए इस युग के कवि समाज के समीप स लग्न रहे थे । सास्कृतिक नताओ एव समाज सुधारको के समान इन कवियो को विदित था कि सामाजिक उन्नति के बिना जाति का राष्ट्रीय जीवन विकसित नही हो सकता । अतएव व समाज का यथाथ चित्रण करने की ओर अग्रसर हुए । तत्कालीन समाज जिस अधोगति को प्राप्त कर चुका था, उसका सजीव वणन काव्य म मिलता है । चारो ओर रूढिग्रस्त जनता तथा स्वाथरत समाज । दम्भ पाखण्ड तथा अनेक वाह्याडम्बर समाज के बौद्धिक विकास म बाधक हो रहे थ । ऊँच नीच तथा जातिभेद के कारण जाति की जीवनशक्ति क्षीण हो रही थी । कवियो न इन सब का सकेत अपनी कविताओ म किया है ।

भारतेन्दु मतमतान्तरो के प्रति घृणा तथा जातपाँत के प्रति अवहेलना प्रकट करते हुए समाज की दुरवस्था का चित्रण करते हैं—

> ' रचि बहु विधि के वाक्य पुरानन माँहि घुसाये
> शव शाक्त वष्णव अनेक मत प्रकट चलाए ।
> जाति अनेकन करी ऊँच अरु नीच बनायो
> खान पान सम्बन्ध सबनि सों बरजि छुडायो ।[2]"

इतना ही नही उन्होने उन सामाजिक कुरीतियो पर भी दृष्टिपात किया है, जिसके कारण समाज जजर हो चुका था । विदेश यात्रा पर प्रतिबन्ध, भूत प्रेतादि की पूजा आदि अनक विकारो का यथाथ वणन भारतेन्दु ने किया है ।

भारत का चिरकाल से यह दुर्भाग्य रहा है कि यह देश फूट बैर अनेकता आदि दुर्भावो के कारण ही विदेशियो से आक्रा त होता रहा है । साम्प्रदायिक

---

१ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—आधुनिक हिन्दी साहित्य (१८५०–१९०० ई०) पृ० ११ ।

२ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारत दुर्दशा भारतेन्दु नाटकावली प० ६०४ ।

तथा अंग्रेजों के अनुकूल वातावरण में भारतीयों की दुर्बलता अत्यन्त रूप से बढ़ती गयी। हरिऔधजी ने भारतीयों की दुर्दशा का इस रूप को अति व्यंग्यात्मक शैली में वर्णन किया है। इन्होंने लिखा है कि यदि जाति में एकता पक्की नहीं होती तो फूटनीतिवाला फन न कूट कूट कर फूटता ?[1] अयोध्यासिंह उपाध्याय की सामाजिक भावना अत्यधिक जागरूक है। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों दुर्बलताओं का अत्यन्त गंभीर चित्र व्यंग्यात्मक शैली में किया है। कवि ने समाज के कायर, आलसी, असमर्थ, परमुखापेक्षी, गर्भाधि, धन विलासी, लुभावने रूपवाले बाबू, नामधारी नायक, निकम्मे आदि सम्प्रदायों पर अच्छी फबतियाँ कसी हैं।[2]

'प्रेमघन' को प्राचीन परिपाटियाँ अखरती हैं। समाज को खोखला बनाने वाले रीति रिवाजों में वे परिवर्तन चाहते हैं। वे अनेक मतों में विभिन्न तथा अपार अवगुणों में घिरी हुई जाति का गंभीर वर्णन करते हैं—

> मिथ्याडम्बर दम्भ द्रोह फूट फलान
> अपने मुख से अपने को सबसे निकृष्ट बताने
> प्रतिदिन हाय अधःपतिगामी पर तुम चलते जात
> आर्यवंश को लज्जित करते कुछ भी नहीं लजाते।[3]

अपने सुप्त समाज पर प्रतापनारायण मिश्र भी खेद प्रकट करते हैं और अपने स्वाभिमान तथा गौरव को भुला देने वाली जाति के सुधार के लिए केवल भगवान का सहारा ढूँढ़ते हैं।[4] बालमुकुन्द गुप्त भी अपनी रचनाओं में उन सामाजिक दोषों का दिग्दर्शन कराते हैं जो जातीय एकता में बाधक हैं। जब तक समाज द्वेष, वैर, विरोध तथा अन्य संकीर्णताओं से विमुक्त नहीं होता तब तक उसका जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता।[5] नाथूराम शंकर ने भी जाति की विमूढ़ता तथा उसके अज्ञान की चर्चा की है और मतमतान्तरों की भूल भुलैया में पड़े हुए समाज का दिग्दर्शन कराया है।[6]

समाज में से श्री, उत्साह, शूरता, धन, तेज, बल नष्ट हुआ है और

---

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—पद्म प्रसून—पृ० ३५।
२ डा० द्वारिकाप्रसाद—प्रियप्रवास में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० २३२।
३ प्रेमघन—'होली' प्रेमघन सर्वस्व पृ० ३७४।
४ प्रतापनारायण मिश्र—मन की लहर
५ बालमुकुन्द 'बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली' प्रथम भाग पृ० ५९०।
६ नाथूराम शंकर—प्रातिक पाठ, शंकर सर्वस्व (प्र० सं० सं० २००८) पृ० ६१।

आलस्य कायरता, निरुद्यमता, मूढ़ता वैर, कलह से घिरकर सब रीति से नाश हुआ । 'समाज की अवनति इतनी हो गयी थी कि 'झूठ, दम्भ, विश्वासघात से लोग परधन हरण करते थे, कोई भी अनीति करने में लोग नहीं डरते थे, जो सद्गुण मनुष्य जीवन की उन्नति के साधन हैं उन्हें पट-बाधक मानकर त्याग दिया जाता था ।'[1] इसलिए तो समाज में अनेक अवगुणों ने स्थायी रूप से डेरा जमा लिया था । मोह मदग्रस्त जन समुदाय शिथिल तथा प्राणहीन होकर अपनी जीवनशक्ति क्षीण कर चुका था । देशवासियों का मानसिक पतन इतना अधिक हो चुका था कि भारतीय अधिकारी तथा प्रतिष्ठित लोग विदेशी सरकार से राजा 'सितारे हिन्द', रायबहादुर आदि उपाधियों तथा पदवियाँ प्राप्ति के लोभ में राष्ट्र घातक कार्य करते थे ।[2] ये पश्चिमी सभ्यता में रंग जाने में ही आनन्द का अनुभव करते थे । इसीलिए कवियों ने आपत्ति जनक पश्चिमी विचारों और रहन सहन का विरोध किया । प्रेमघन ने पश्चिमी सभ्यता में रंगे उन नवयुवकों की आलोचना की है जिन्हें हिंदू नाम से लज्जा होती है । विदेश की सांस्कृतिक दासता इनको सबसे अधिक व्यथित करती है । कवि लिखता है—

> 'पढ़ि विद्या परदेस की बुद्धि विदेसी पाय ।
> चाल चलन परदेस की गई इन्हें अति भाय ॥
> अंगरेजी वाहन वसन, वेष रीति औ नीति ।
> अंगरेजी रुचि गृह सकल वस्तु-देस विपरीत ॥'[3]

हिंदी जाति के अधोपतन पर मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी दुख और क्षोभ 'हिंदू' काव्य में प्रकट किया है । हिंदू जाति की दयनीय अवस्था पर तरस खाकर भगवतीचरण वर्मा ने हिंदुओं का यथार्थ वर्णन किया है ।[4] हिंदू समाज कुरीतियों का केन्द्र बना हुआ था । साहित्य-संगीत तो लुप्त हो गया, इसके बदले समाज में चंडू चरस गाँजा, मदिरा व्यसनों का प्रसार हो गया था । रिश्वतखोरी मात्सर्य अनुदारता फूट-द्वेष के मालिन्य से समाज दुर्बल बन गया था । इसके साथ ही सामाजिक रूढ़ियों के कारण जीवनधारा का प्रवाह अवरुद्ध होता था । भयनिर्मित अमित रूढ़ियों की कारा ने मानव को

---

१ रामनरेश त्रिपाठी–पथिक पृ० ४७ ।

२ (१) रामचरित उपाध्याय–राष्ट्रभारती पृ० ४४ ।
 (२) प्रेमघन–प्रेमघन सर्वस्व–प्रथम भाग पृ० १३३ ।

३ प्रेमघन–आर्याभिनन्दन–प्रेमघन सर्वस्व' पृ० ५ ।

४ भगवती चरण वर्मा–हिन्दू–मधुकण–पृ० ५२–५३ ।

मन बाँध लिया था। हृदय जडता की जजीरो म मानव का मीत हृदय जकडा गया था। भारतभूषण इन दुष्ट रूढ़िया का वणन करत हुए लिखते हैं—

> 'सघन बफ की खडी पत सी
> एक एक कर अमित रूढ़ियाँ
> सदिया स जमती जाती हैं
> तह पर तह मानव जीवन पर।
> य आज ठोस दीवार बनी
> हैं रोक रही जीवन की गति
> मन की उन्नति।'[1]

सामाजिक जीवन धारा अवरुद्ध होन क कारण सामाजिक जीवन भी कुत्सित बन गया। अधिकाश जनता को सत्ताहीन अथहीन रद्दी की टोकरी का जीवन बिताना पडता था।[2] समाज म ऊँच नीच श्रेष्ठ कनिष्ठता के भाव व्याप्त थ।

समाज की शोचनीय दशा से विक्षुब्ध हुआ कवि कभी कभी निराश होकर भगवत शरण खोजने लगता है। उस ऐसा अनुभव होता है कि इतने बडे अशिक्षित समाज का सुधार करना कोई सहज काम नहा है। अतएव वह समाज मे फली हुई अविद्या का विनष्ट करने के लिए प्रभु से विनय करता है।[3] वस्तुत यही भारत है जिसने सम्पूण विश्व को ज्ञान विज्ञान की शिक्षा दी थी परन्तु अब वही उचित शिक्षा के अभाव मे विवकशू य हो गया था। विदेशी शासक जिस शिक्षा का प्रचार कर रहे थे वह देश तथा जाति पर मर मिटने की अपेक्षा उनकी स्वाथ सिद्धि की पूर्ति म सहायक थी। इसी कारण गाधीजी ने असहयोग आदोलन के समय सरकारी स्कूलो का बहिष्कार किया था। विदेशी शासन न भारतीयो को केवल राजनीतिक दृष्टि स ही नहा सास्कृतिक दृष्टि स भी पगु कर दिया था। प० रामनरेश त्रिपाठी न भारत की दुदशा का कारण तत्कालीन शिक्षा पद्धति को माना है। विदेशी शासको द्वारा प्रचलित शिक्षा का उद्देश्य केवल राज्य काय के सचालन के लिये प्रजा को तैयार करना था—

> 'प्रजा नितान्त चरित्र हीन हो शक्ति जाय मिट मन की
> शिक्षा का उद्देश्य यही है नीति यही शासन की।

---

१ भारत भूषण अग्रवाल—जीवनधारा—तारसप्तक भाग २ पृ० ९३।

२ केदारनाथ अग्रवाल—युग की गगा पृ० २

३ राधाकृष्ण—राधाकृष्ण ग्रथावली पृ० ६१।

चरित हीन डरपाक अशिक्षित प्रजा अधीन रहेगी ।
है यह भाव निरकुश नप का, सदा अनिति सहगी ।। [1]

सक्षेप म, जातिपाति, विदशयात्रा वधन, "कूपमण्डूक वृत्ति' [2] भूतप्रेतादि की पूजा, फूट, बर, आलस्य, अकमण्यता, अधविश्वास, अविद्या अज्ञान तथा निदनीय रूढिया क कारण 'समाज शरीर के सब अग दूषित हो गए थे।[3] सामाजिक विकृतिया के कारण समाज पुरुष रुग्ण बन गया था, ।

नारी-दशा

उन्नीसवी शती म स्त्रिया की अवस्था निकृष्टतम थी । किसान मजदूर और अछूता के समान ही नारी वग भी शोषित समाज का एक अग है । सवण और तथा कथित भल घरो म स्त्री का जीवन अत्यत क्रूरताआ का लक्ष्य रहा है। इसे मान सम्मान मिलना तो दूर ही रहा पशु से भी बदतर व्यवहार इस के साथ किया जाता था । एक रूसी कहावत प्रसिद्ध है—

ईसाई बायबल मे भी स्त्री को कनिष्ठ दर्जा दिया है । पौल ने जो कौरिथियनो को उपदेश दिया है उसम कहा है —

भारतीय नारी तो दया की पात्र थी, बाल्यावस्था मे वृद्धावस्था पयत उन्हे कष्ट की अनेक भटिटया से पार होना पडता था ।

'पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने
रक्षति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातत्र्यमर्हति ।"

मनु क 'न स्त्री स्वातत्र्यमहति इस मत्र का घोप शताब्दिया से समाज जप रहा था । स्त्री को पिता अथवा पति के घर म किसी प्रकार के अधिकार न थे। पति के घर जाने क पहले उसे उपदेश दिया जाता कि 'पति कुले तव दास्यमपि क्षमम् । इस दासी बनने वाला नारी का अर्जित सपत्ति पर तथा पुत्रो पर भी अधिकार अमान्य किया जाता था । आदिम युग स सभ्यता के विकास तक स्त्री सुख के साधनो म गिनी जाती रही । पुरुष ने उसके अधिकार अपने सुख की तुला पर तौले, उसकी विशेषताओ पर नही अत समाज की सब व्यवस्थाओ म उसके लिए एक विचित्र विषमता मिलती है । जीव मात्र के उद्धार का व्रत लेनेवाले सता और भक्ता ने नारी को विषमता मे मुक्त करने के बजाय, उसे वासना की पुतली और मायाविना के रूप म देखा था । रीति

१ रामनरेश त्रिपाठी–पथिक–पृ० ४७ ।
२ मथिलीशरण गुप्त–हिन्दू–पृ० ३६ ।
३ मथिलीशरण गुप्त भारत भारती–पृ० १४० ।

काल म नारी केवल कामक्रीडा का कदुक बनकर रह गयी थी । विशेष खेद की बात यह है कि पशु के समान ही नारियो का क्रय विक्रय पेशवे काल तक होता था । इग्लण्ड म भी यह प्रथा १८१५ ई० तक प्रचलित थी ।[1] यह नारी विक्रय की प्रथा मानवता पर कलक थी। नारी की दुदशा अनेक प्रकार से होती थी। कोमल आयु म वयस्को और वृद्धो के साथ उन्हे परिणय-सूत्र म आबद्ध कर लिया जाता था। इससे अधिक सख्या म वे विधवा हो जाती थी। अनेक को अनिच्छापूवक सती प्रथा का पालन कर पति के शव के साथ ही चिता म जलना पडता था। अग्रज शासन के प्रारम्भकाल मे सन १८२५ तक लगभग केवल बगाल म सती प्रथा ने ११५ नारियो की जीवन बलि ले ली।[2] इनके लिए आवश्यक शिक्षा और पठन पाठन वर्जित था। परदे की प्रथा का क्षय से आक्रान्त हो कितनी ही युवतिया को अकाल म ही काल कवलित होना पडता था। सक्षेप म स्त्री के लिए बीती हुई शताब्दियाँ उसके सामाजिक प्रासाद के लिए नीव के पत्थर नही बनी वरन् ढहाने के लिए वज्र पात बनती रही हैं।

इस पीडित उपेक्षित नारी के प्रति आस्था जगाने का काय सास्कृतिक आन्दोलनो तथा समाज सुधारको ने १९वी शती के उत्तराद्ध म किया। आधुनिक युग मे स्त्री समाज के प्रति सवेदना सहानुभूति और आदर भावना प्रथमत ही अभिव्यक्त होने लगी। अर्थात छायावादी युग तक स्त्री अधिकारो की चर्चा नही थी उसके चरित्र को भव्य रूप म अकित किया जाता था और उसके प्रति समवेदना व्यक्त की जाती थी। सामाजिक रूढियाँ स्त्री पर अन्याय करने वाली था—जसे विधवा मुडन विधवा विवाह का निषेध बाल विवाह वृद्ध विवाह अनमेल विवाह दहेज आदि। समाज सुधारको ने इन प्रथाओ के विरुद्ध जन समाज को जाग्रत किया और स्त्री शिक्षा का समथन किया। पाश्चात्य सस्कृति के प्रभाव से जन समूहो ने स्त्रियो के प्रति उदारता तथा करुणा का दृष्टिकोण अपनाया। इससे प्रभावित होकर हिंदी कवियो ने भी स्त्री की दुदशा के अनेक रूपो का सहानुभूति से चित्रण करके समाज म उनके प्रति करुणा समवेदना और आस्था जगायी।

भारतीय नारी पुरुष के क्रूर हाथो स ताडित होकर अपना पद तथा महत्त्व खो चुकी थी। चिरकाल से पतित तथा उपेक्षित नारी के प्रति कवि

---

१ अ० डा० दु० का० सन्त– मराठी स्त्री' पृ० २४।
२ वही पृ० ११५।
३ महादेवी वर्मा–शृखला की कडियाँ–प० ९१।

सहानुभूति प्रकट करत है। नारी दुःख की पराकाष्ठा विधवा हा जाने मे है। विधवा के दुःख का वणन अनक कविताओं म कवियो न किया है।

बाल विधवा की समस्या एक हृदय विदारक आपत्ति है। इन अबोध कन्याओ को समाज म घणित एव निम्न स्थान दिया जाता है। व अनक कष्टो से जूझती हुई घुट घुट कर अपने प्राणो को विसजन करती हैं। उन्हें पिता तथा पति दोनो की सहानुभूति और आश्रय से वचित होकर दयनीय दशा मे जीवन व्यतीत करना पडता है। श्रीधर पाठक इनकी सोचनीय दशा पर करुणा प्रकट करते हैं। एक स्थान पर हेमन्त ऋतु की सुन्दरता का चित्रण करते हुए व बाल विधवाओ की हीन दीन दशा पर खूब आसू बहाते हैं—

> दुःखी बाल विधवाओं की जो है गती
> कौन सके बतला किसकी इतनी मती।
> जिन्हें जगत की सब बातो से आन है
> दुख सुख मरना जीना एक समान है।
> जिने को जीते जी दी गयी निलाजली
> उनकी कुछ हो दशा किसी का क्या पडी।[1]

नाथूराम शकर की कविताओं मे विधवाओ का करुण क्रन्दन अधिक मात्रा म परिव्याप्त हुआ मिलता है। उन्होंने गर्भरण्डा रहस्य म बालविधवा समस्या की अच्छी व्याख्या की है। उन्होंने उन अभागिनी विधवाओ के अपार उत्पीडन की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया है।[2] श्रीधर पाठक के मतानुसार इन बालविधवाओ के शाप के कारण यह भूमि पतितावस्था म है।[3]

विधवाओ की सख्या म दिन प्रतिदिन वृद्धि समाज क लिए हानिकारक तथा घातक है। मैथिलीशरण गुप्त जी का विश्वास है कि अल्पावस्था तथा वृद्धावस्था मे विवाह की कुप्रथाओ के कारण बाल विधवाओ की समस्या उत्तरोत्तर जटिल होती जा रही है। मथिलीशरण गुप्त न विधवा कविता मे विधवाओ क प्रति सामाजिक अत्याचारो और व्यभिचारो का भडाफोड किया है।

१ श्रीधर पाठक—मनोविनोद पृ० ७६।
२ नाथूराम शकर—शकर सवस्व—पृ० २६३।
३ श्रीधर पाठक—मनोविनोद—पृ० १७०।
४ (१) मथिलीशरण गुप्त—हिन्दू—पृ० ६२।
(२) मथिलीशरण गुप्त भारत भारती वतमान खंड", पृ० १८०।

'वृद्धविवाह' में भारतवासियों की कूपमण्डूकता और वृद्ध विवाह के कुपरिणामों का दिग्दर्शन कराकर बालविवाह का कवि ने विरोध किया है।[1] निराला ने भारतीय विधवा का जो चित्र अपनी 'विधवा' कविता में खींचा है वह अपूर्व है। ठाकुर" अथवा 'मैथिलीशरण गुप्त' की भाँति इनकी लेखनी ने भारतीय विधवा का जीवन की कुण्ठाएँ विकृतियाँ, सामाजिक अन्याय एवं अत्याचार का वर्णन इतिवृत्तात्मक शैली में नहीं किया है। निराला ने भारतीय विधवा के दिव्य रूप के साथ, उसकी मनःस्थिति के विश्लेषण में सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विक्षोभ के स्वर को मिला दिया है। मधु में छिपे विष की ओर संकेत किया है। दिव्यता में आवृत्त मानव मनोवृत्ति की यथार्थता का मनोवैज्ञानिक उद्घाटन किया है। विधवा के प्रति कवि की संवेदनात्मक अनुभूति गहरी होने के कारण वह सहज ही पाठकों की समस्त सहानुभूति एवं करुणा का पात्र बन जाती है—

> 'वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी
> वह दीप शिखा सी शान्त, भाव में लीन
> वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा-सी
> वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन
> दलित भारत की ही विधवा है।'[2]

जब विधवाओं को अशुभ मूर्ति के समान उपेक्षित माना जाता था तब उसे इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी कहना सहानुभूति और आदर भाव के अतिरिक्त विधवा के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण का भी सूचक है।

विधवा को भग्न मनोरथ होकर आशा कलियों को स्वाहाकार कर यौवन की चिता जलाकर जीवन बिताना पड़ता है इसकी ओर दिनकर ने संकेत किया है।[3]

अनमेल विवाह भी नारियों के लिए घोर शाप है। यह अत्यन्त बुरी प्रथा है। आठ बरस की कोमल कली वधू का अस्सी बरस के बूढ़े वर के साथ विवाह हो जाना विवाह का उपहास है। इन छोटी बालिकाओं का वृद्धों के साथ विवाह कर देना उन्हें मृत्यु के घर पहुँचाने के समान ही है। कवि चुभती शैली में लिखता है—

---

१ मैथिलीशरण गुप्त–स्वदेश संगीत पृ० ४९।
२ निराला "विधवा" परिमल, पृ० ११०।
३ दिनकर "विधवा" रेणुका पृ० ९९।

"जो कली है खिल रही उसके लिए
वर पके सूखे पत्तों जैसा न हो
जो दिनों में जाय जिससे गाँठ पड
भूल गठ जोडा कभी ऐसा न हो।[1]

अनमेल विवाह के समान ही समाज में ठहरौनी की प्रणाली भी अत्यंत निन्दनीय है। ठहरौनी प्रथा के कारण कुलीन युवतियाँ विवशता वश कई यातनाएँ सहन करती है। "यह कुरीति अनेक कुल कन्याओं का कोमल हृदय जला देती है।"[2] परदा पद्धति ने भी स्त्रियों को बडी क्षति पहुँचाई है। खुली हवा प्रकाश और वातावरण इस परदा प्रथा के कारण नही मिलता। इससे अनेक युवतियों को क्षय तथा अनेक रोगों का शिकार होना पडता है। अज्ञान-वश परदा प्रथा का समर्थन होता है। कुलप्रतिष्ठा, ऊँचा घराना लज्जा सभ्यता आदि का यह प्रतीक बन गयी है जो संस्कृति तथा आरोग्य की दृष्टि से भ्रान्त ही धारणा है। श्री रामचरित उपाध्याय समाज के मध्यम वर्ग की परदा प्रथा पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं—

यदि स्त्रियाँ शिक्षा पाती तो परदा सिस्टम होता दूर
और निमित्ता हो वे कारण क्या करती चूडी सिन्दूर।[3]

परदा पद्धति के मूल में अशिक्षा और अज्ञान है परंतु दहेज की प्रथा में मनुष्य की लोभ लालच और नारियों का व्यापार करने की प्रवृत्ति ही प्रकट होती है। इस कुप्रथा ने न मालूम कितने परिवारों और कितनी कन्याओं का जीवन नष्ट कर दिया है। दहेज बंदी कानून बनने के पश्चात भी यह प्रथा समाज में "वरदक्षिणा" अथवा अन्य रूपों में प्रचलित है। इस कुरीति के बिना मिटे हिंदू जाति की उन्नति असम्भव है। इस राक्षसी प्रथा की ओर संकेत करते हुए ठाकुर गोपाल शरण सिंह लिखते हैं—

भगवान हिंदू जाति का उत्थान कब हो भला।
नित यह कुरीति दहेज वाली घोटती उसका गला॥
सुकुमारियाँ वे भोगती हैं यातना कितनी बडी।
जो पूर्ण यौवनकाल में भी हैं बिना ब्याही पडी॥
अगणित कुटुम्बों का किया इस राक्षसी ने नाश है।
तो भी बुझी न अभी अहो इस का रुधिर प्यास है॥[4]

---

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' चुभते चौपदे—पृ० २०१।
२ आ० महावीर प्रसाद द्विवेदी—द्विवेदी काव्यमाला, पृ० ४३७।
३ उद्धृत—प्रो० सुधीन्द्र—हिंदी कविता में युगान्तर पृ० १४८।
४ ठाकुर गोपालशरण सिंह—सरस्वती खंड ८ संख्या १, सन् १९०७।

नारी के शील पावित्र्य को पूँजीवादी समाज व्यवस्था में विशेष स्थान नहीं है। प्राचीन तथा मध्ययुग में स्त्री शील को अत्यन्त महत्ता दी जाती थी। परन्तु पूँजीवादी समाज रचना में नारी की पवित्रता का पतन चाँदी के कुछ टुकडों पर होता है इसका खेदपूर्वक उल्लेख करते हुए सुमन लिखते हैं—

> बिक रहा पूत नारीत्व जहाँ
> चाँदी के थोडे टुकडों में
> धन में पलता धनिक वर्ग
> मदिरा के जूठे टुकडों में।[1]

इसके विपरीत सीता यशोधरा कौशल्या सुमित्रा उर्मिला माडवी कुन्ती द्रौपदी गाधारी यशोदा आदि के व्यक्तित्व में मथिलीशरण गुप्तजी ने नारी के परमोज्ज्वल रूप को प्रस्तुत किया है।

युगों पर दृष्टिक्षेप करने से यह मालूम होता है कि नारी पत्नीत्व के उच्च आदर्श से उतर कर दासी मात्र रह गई है। वह युग-युग के अगणित क्लेशों की करुण कहानी है अखिल विश्व आनन्द दायिनी होकर वह स्वयं आनन्द विहीन है गृहलक्ष्मी होकर भी जग में उसे पराधीन रहना पडा है।[2] परिवार एवं समाज की मंगलता के हेतु उसका मौन बलिदान कभी भुलाया नहीं जायगा।

अस्पृश्यता

नारी के समान ही अस्पृश्यों की स्थिति युगों युगों से शोचनीय थी। शूद्र को दासता के लिए ही विधाता ने जन्म दिया है वह क्रीतमक्रीतम दास है। है यह अत्रि का वचन[3] समाज में अत्यंत दृढमूल हो गया था। वशिष्ठ धर्मसूत्रकार ने तो यम के श्लोक को उद्धृत करके शूद्रजातियों को श्मशान कहा है और इसीलिए शूद्रों के सामने वेदपठन नहीं करना चाहिए[4] ऐसा उपदेश किया है। ये शूद्र उच्चवर्गीय हिन्दुओं के बीच नहीं रह सकते थे। सवर्ण कहे जाने वाले हिन्दुओं के कुओं से वे पानी नहीं भर सकते थे और न वे मन्दिरों में शुद्ध और पवित्र होकर देवता के चरणों में पुष्पांजलि अर्पित कर सकते थे। उत्तर प्रदेश के कुछ पर्वतीय भागों में निम्न जातियों को विवाह आदि के अवसर पर भी पालकी आरोहण का अधिकार न था। दक्षिण भारत में इसमें

---

१ सुमन प्रलय सृजन पृ० ८।

२ ठाकुर गोपालशरण सिंह—आधुनिक कवि भाग ४ पृ० ३९–४०।

३ शूद्र तु कारयेत् दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा।
दास्यायैव हि सृष्टो सौ ब्राह्मणस्य स्वयं भुवा। अत्रि–८–१३।

४ उद्धृत—डॉ० केलकर–प्राचीन संस्कृति, पृ० ५१।

भी हीन दशा थी। "वहाँ उच्च जातिया नीच जातिया के स्पश मे ही नही, छाया तक से अपवित्र हो जाती थी। कोचीन की सरकारी रिपोट के अनुसार ब्राह्मण नायर के स्पश से दूषित समझे जाते थे।"[1] त्रावण की रियासत के वायकोम गाँव मे मन्दिर की ओर जाने वाले माग से जाने की अछूतों को मनाही थी।[2] अछूतो के प्रति अत्यन्त दुव्यवहार किया जाता था। शूद्र ने ब्राह्मण कन्या के साथ दुव्यवहार किया तो उसे फाँसी की सजा दी जाती थी। शूद्रो को सेवाधम के सिवा और कोई चारा नही था स्वगप्राप्ति के लिए भी उसे ब्राह्मणो की सेवा करनी पडती थी। उसे जायदाद अथवा वित्त सचय अथवा न्यायाधिकार नही था। शूद्रो के निवास स्थान गाँव के बाहर होने थे कपडे कफनो द्वारा मिलते थे, टूटे फूटे बतनो म भोजन करना पडता था। सार्वजनिक माग से सप, कुत्ते, गधे जा सकते थे इन पशुओ के दशन से पवित्र हिदूधम को अपशकुन नही होता था, किन्तु अस्पश्य की छाया से हिदू सस्कृति को ग्रहण लग जाता था। हिदू धम ने पाषाण को देवता माना, पेड पौधो, पशु पक्षियो को धार्मिक प्रतिष्ठा दी किन्तु अस्थि माँस के अछूत मनुष्य को निर्जीव पत्थरो से भी तुच्छ माना।

आधुनिक युग मे मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण समाज मे उपेक्षित अस्पृश्यो के प्रति सहानुभूति जगी। अग्रेजो ने पीडित, अपमानित अस्पृश्यो को फुसलाने का तथा हिदुओ और अछूतो म फूट डालने का भरसक प्रयत्न किया। 'साम्प्रदायिक अवाड' के द्वारा भारत की जनता को विभाजित करके अपनी सत्ता बनाए रखने की सरकारी नीति से गाँधीजी का ध्यान अस्पश्यो की ओर गया जिन्हे हिदुओ से पथक कर दिया गया था।"[1] इसके विरुद्ध गाँधीजी ने अनशन किया और पूना पैक्ट के कारण अस्पश्य हिदूधम के ही एक अग रहे। जनता ने भी अछूतो के साथ उदारता का व्यवहार करना प्रारम्भ किया।

हिन्दी कवि के सवेदनशील मन को अछूतो की शोचनीय अवस्था ने अनुकम्पित कर दिया। कवियो ने इनकी दुखद स्थिति पर अश्रुपात करते हुए इनकी यातनाओ का तथा इन पर होने वाले अन्याय और अत्याचार का वणन किया है।

अस्पश्य हिदू समाज का एक महत्त्वपूण अग मानना तो दूर की बात

---

१ हरिदत्त वेदालकार–भारत का सास्कृतिक इतिहास पृ० २७३।
२ महर्षि शिन्दे–माझ्या आठवणी व अनुभव, पृ० ३५४।
३ दिनकर–रेणुका, पृ० १७।

रही हमारे पुरोहित श्रणी के पण्डित लोग उन्हें जानवरो से भी गया बीता समझते थे।" मंदिर म अगर कोई कुत्ता चला जाय तो उतना हर्ज नही है पर अगर कोई चमार दशनाथ घुस पडे तो उसकी मौत समझिए।" इस धार्मिक अत्याचार और अन्याय का सियारामशरण ने आर्द्रा की 'एक फूल चाह' कथा कविता द्वारा मार्मिकता से चित्राकन किया है।

अन्य सामाजिक दोषो की अपेक्षा अस्पश्यता हिन्दू समाज के लिए उच्च तम अभिशाप है। वास्तव म हमारे सार्वभौम धम म–जिसम सब ईश्वर के पुत्र माने जाते हैं कोई अस्पश्य नही होना चाहिए। ' परन्तु भारत म ऋषियो के ये सात करोड पुत्र अछूत समझे जाते है। और सडक पर भी नही चल पाते।[2] मानव की यह गतानुगतिक सकुचित वृत्ति थी। इस गतानुगतिकता की कारा म बद मानव चेतना को नवीन निर्बाध क्षेत्र की ओर आकर्षित करने म निराला को उल्लेखनीय सफलता मिली है।[3] इन हीन दीन जनो का निराला वणन करते हैं—

कहा परित्राण
बुला रहे बधु तुम्हे प्राण।
बीते अविरत गत शत
अन्द नाद अप्रतिहत
उठता–ये जो पदनत
नही इन्हे स्थान।[4]

छुआछूत का सकेत सवप्रथम भारतेंदु की कविताओ म मिलता है। 'भारत दुदशा म सत्यनाश अपना महत्त्व धार्मिक मतभेद और छुआछूत फला कर बताता है।[5] अछूतो की समस्या को लेकर हिन्दी म काव्य रचना तत्का लीन अधिकाश राष्ट्रीय कवियो ने की है। मथिलीशरण गुप्त ने स्वदेश सगीत म समाज म व्याप्त भेद भाव तथा अस्पश्यता की भावना का वणन 'अछूत कविता म किया है। वियोगी हरि ने अस्पश्यता को समाज की काली

१ श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी के कवि और काव्य भाग २ पृ० १८। (सन १९३० सस्करण)

२ निराजना—स० प० वागीश्वर विद्यालकार–वंशी की तान प० १८–१९।

३ डा० परशुराम शुक्ल विरही–आधुनिक हिन्दी काव्य म यथार्थवाद प० २७३।

४ निराला–गीतिका–पृ० ८०।

५ भारतेन्दु–भारतेन्दु नाटकावली– भारत दुर्दशा पृ० ६१६।

करतूत कहा है।[1] साकेत महाकाव्य म मैथिलीशरण गुप्त ने राम सीता को कोल, किरात, भील आदि निम्न जातियों के साथ आत्मीय सम्बन्ध जोडते दिखाया है, जो गांधीवाद का प्रभाव है रामचद्र शुक्ल न अछूतो के दु ख को वाणी देते हुए लिखा है—

हाय हमने भी कुलीनो की तरह
जन्म पाया प्यार स पाले गए
जी बचे फूले फूल तो क्या हुआ
कीट से भी तुच्छतर माने गए।[2]

हिन्दी कविता म अछूतो के दु खो का वणन हुआ है किंतु सामाजिक दुदशा के अन्य रूपो क साथ अछूतो के प्रति सामाजिक अत्याचार के अधिक चित्र नहीं मिलते।

धार्मिक पक्ष

सामाजिक पतन के समान ही धार्मिक अधोगति हो गयी थी। वस्तुत प्रत्येक राष्ट्र अपने धम शरीर से जीवित रहता है। धम राष्ट्र शरीर का मेरु दण्ड है। धम का अथ सप्रदाय नहीं है धम उन नियमो और तत्वो की सज्ञा है, जिनसे समाज का शरीर स्वस्थ रहता है। समाज की बडी विस्तृत देह में धम प्रकाश फलाता है। धम के निवल पडने से सामाजिक देह म अँधेरा छा जाता है लोगो का अपना कत्तव्य सूझना बद हो जाता है। जब कभी जनता का बडा भाग अपन राष्ट्रीय-कत्तव्य की ठीक पहचान खो बठता है उसी को धम की ग्लानि कहते हैं।[3] आलोच्य काल म भारत की यही दशा थी। देश की धार्मिक परिस्थितियाँ भी विचित्र रूप धारण किए हुए थीं। अनेक आदोलनो के उठ खडे होने पर भा धम का वास्तविक स्वरूप जनता की आँखो से भी ओझल ही था। अनेक सम्प्रदाय और मत प्रचलित हो जाने के कारण समाज की एकता खण्डित हो चुकी थी। धर्माडम्बर अन्धविश्वास, पाखण्ड तथा अन्य कई धार्मिक कुरीतियो में सारी जाति ग्रस्त हो रही थी। जादू-टोने भूत प्रेतादि अभी भी लोगों के जीवन मे विलुप्त नहीं हुए थे। ऋषि दयानन्द तथा उनके आय समाज ने महाराष्ट्र मे भाडारकर, आगरकर आदि ने सामाजिक सुधार के साथ साथ धम की कुरीतियो का निषेध किया। उनका प्रभाव विशेष रूप स शिक्षित जनता पर पडा।

---

१ वियोगी हरि—वीर सतसई—पृ० ७८।
२ रामचद्र शुक्ल—अछूत की आह—जातीय कविता—पृ० ५५-५६।
३ वासुदेव शरण अग्रवाल—मातृभूमि—पृ० २७०।

यद्यपि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जागृति दिखाई दे रही थी परन्तु फिर भी धर्म सम्बन्धी आडम्बर और विश्वास अभी तक समाज में छाए हुए थे। धर्म के नाम पर अनेक पापाचार आदि को पुष्ट कर रहे थे। शास्त्रानुकूल आचरण तथा पवित्र सत्य धर्म का और जनता की रुचि का प्रायः ह्रास ही हो गया था। धार्मिक कट्टरता तथा संकीर्णता के कारण जाति का सामाजिक जीवन भी छिन्नभिन्न हो गया था। धर्म का कोई ऐसा अंकुश समाज पर नहीं था जो उसे अधिक पतन से रोक सकता। ईविङगन नामक अंग्रेज यात्री का कहना है कि आर्थिक दृष्टि से १८८२ तक में हिन्दी प्रदेश कंगाल रह गया था जो अंग्रेजों के आने पर था। इतिहास में पहली बार वह राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से परमुखापेक्षी बना। फलतः हिन्दी भाषा भाषियों का धार्मिक जीवन किसी नवीन आदर्श से प्रेरित न होकर निस्पन्द पड़ा था।[1] अंग्रेजों के आगमन के साथ और अनन्तर धार्मिक अवस्था में विशेष अन्तर नहीं आया।

अंग्रेजी सभ्यता संस्कृति और साहित्य तथा अंग्रेजी शासन ने जहाँ और सामाजिक सुधारों को जन्म दिया और सांस्कृतिक जागरण की भूमिका प्रस्तुत की वहीं अंग्रेजी शासन ने जान बूझकर देश को सामाजिक दृष्टि से विशृंखल करने का प्रयास किया—जानबूझकर भारतीय धर्मों में साम्प्रदायिक वैमनस्य उत्पन्न करना ही अंग्रेजी शासन की नीति थी।[2]

इस काल की धार्मिक परिस्थितियों के अवलोकन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि एक ओर यदि धार्मिक पतन दिखाई दे रहा था तो दूसरी ओर उसके सुधार के लिए भी भाँति भाँति के प्रयत्न हो रहे थे। हिन्दी कवियों ने धर्म की दुर्गति के विविध रूपों का चित्रण किया है।

धर्म की अवनति पर कवियों को बड़ा खेद होता है। धर्म के रोने की ध्वनि कवि प्रसाद को दुःखद लगती है। वे धर्म की अवस्था का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

> गज समान ग्रस्त द्रौपदी सदृश त्रस्त
> सुदामा सा विह्वल गौतमी सम अपमानित
> धर्म रोता है।[3]

---

१ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—आधुनिक हिन्दी साहित्य—पृ० ९।

२ श्री डी० डी० कोसाम्बी—'एन इण्ट्रोडक्शन टू दि स्टडी आफ इण्डियन हिस्ट्री' पेज २६०, उद्धृत—डा० रामगोपालसिंह चौहान—आधुनिक हिन्दी साहित्य—पृ० ७।

३ प्रसाद—काननकुसुम—पृ० १०९।

धर्म के अनेक सम्प्रदाय, ऊँच नीच जातियों तथा खान पान सम्बन्धी का मार्मिक शब्दों द्वारा चित्रण कर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र धर्म की अधोगति का यथार्थ वर्णन करते हैं—

रचि बहु विधि के वाक्य पुरानन माँहि घुसाए
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगट चलाए
जाति अनेकन करी ऊँच अरु नीच बनाये ।
खान पान सम्बन्ध सबनि सों बरजि छुड़ाओ ।
बहु रखी देवता भूत प्रेतादि पुजाई
ईश्वर सों सब विमुख किए हिन्दू घबराई ।[1]

प्रेमघन सभी धर्मों का एक ही उद्देश्य बताते हैं । उनके मतानुसार सभी धर्म के सत्य और सिद्धान्त समान हैं केवल उपासना भेद हैं, जिनके कारण वैर का विस्तार नहीं होना चाहिए। चारों वर्ण और चारों भिन्न धर्म के भागी हैं । वे अपने अपने मतानुसार प्रत्येक को जीवन की उस सच्ची राह पर बढ़ने की ओर प्रेरित करते हैं जिसमें मिथ्याडम्बर राग द्वेष अथवा छल कपट का नाममात्र न हो ।[2]

भारत से सच्चे धर्म योग और भक्ति का लोप ही हो गया है ऐसा कवियों को लगा । बालमुकुन्द गुप्त होमतप छोड़ने वाले ब्राह्मणों खड्ग का त्याग करने वाले क्षत्रियों और सदव्यवहार का तजने वाले वैश्यों की कटु आलोचना करते हैं ।[3] भारत भारती में मैथिलीशरण गुप्त जी ने धार्मिक दुर्दशा का चित्रण किया है । विभिन्न पंथों में मतभेद हैं धर्म कमजोर बनकर सम्प्रदाय प्रबल बने हैं तीर्थ में पड़े नित्य कर्म करते हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सब अपने कर्म से विमुख हैं, और पाखंड अधिक बढ़ गया है । वर्णों का धर्म से विमुख होने का दुख पूर्णजी को भी है ।[5]

धर्म के नाम पर साधु लोगों को लूटते हैं । अपना उद्देश्य भूलकर वे समाज का भार बन हुए हैं । मैथिलीशरण ने इन पाखंडी साधु संतों की कटु निन्दा की है ।[6] इसके साथ ही यज्ञ की भी भर्त्सना की है क्योंकि यज्ञ में दारुण

---

१ भारतेंदु हरिश्चन्द्र– भारत दुर्दशा' भारतेंदु नाटकावली, पृ० ६०४ ।
२ प्रेमघन आनन्द अरुणोदय प्रेमघन सर्वस्व–पृ० ३७५–३७६ ।
३ बालमुकुन्द गुप्त–स्फुट कविता–श्रीरामस्तोत्र–पृ० ७ ।
४ मैथिलीशरण गुप्त–भारत भारती पृ० १३१ ।
५ पूर्ण–पूर्ण संग्रह–पृ० १८४ ।
६ मैथिलीशरण गुप्त हिंदू–पृ० १३४–१३५ ।

हिंसा और दम्भ ही दिखलाई पडते है रुधिर के झडने करने पर भी पशु हत्या की तृष्णा नहीं बुझती ।[1]

भारतीय धार्मिक विषमता की ओर संकेत कर धन पर आधृत धर्म की व्यवस्थाओं पर व्यंग्यपूर्ण आघात करते हुए दिनकर ने लिखा है—

"पर गुलाब जल में गरीब के अश्रु राम क्या पायेंगे
बिना नहाए इस जल में क्या नारायण कहलायेंगे
मनुज मेघ के पोषक दानवत्व आज निपट निर्द्वन्द्व हुए
कैसे बचे दीन प्रभुजी, धनियों के गृह में बन्द हुए ।[2]

धर्म की अवनति के कारण अन्य धर्मीय हिंदुओं को अपने जाल में फँसाने का उद्योग करने लगे थे । समाज का हीन दीन, अज्ञानी पददलित उपेक्षित *अपमानित वर्ग इन धर्मों की समानता की ओर आकृष्ट हो रहा था । धर्मांतर* साधारण बात बन गई थी । मैथिलीशरण गुप्त ने लालच लोभ तथा असमानता के व्यवहार से होने वाले इस धर्मांतर की ओर हिन्दू धर्मियों का *ध्यान आकर्षित कर लिखा है—*

बने विधर्म वे अनजान
मुसल्मान किंवा क्रिस्तान
तो हो जाते है सुस्पृश्य
हाय दैव क्या करुण दृश्य
रखते हो यदि हम कुछ मर्म
कर न अपनों को वधर्म ।[3]''

आर्य समाज अपने सामाजिक सुधारों तथा क्रांतिकारी विचारों को लेकर साहित्य में उपस्थित हुआ । आर्य समाज अवतार के विरुद्ध झंडा उठाए हुए था । इनका फल साहित्य पर भी पडा और अयोध्यासिंह उपाध्याय और रामचरित उपाध्याय ने कृष्ण और राम को यथासंभव मानव चरित्र के रूप में चित्रित किया ।[4]

आर्थिक पक्ष

इतिहास का सत्य है कि पहले भारत विदेशियों के हाथ बिक गया फिर वह उसके द्वारा शासित होने लगा । ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना का

१ मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर—पृ० ९१ ।
२ दिनकर—बोधिसत्व—रेणुका—पृ० १८ ।
३ मैथिलीशरण गुप्त—हिन्दू—पृ० १०८ ।
४ डा० श्रीकृष्णलाल—आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—पृ० ४३ ।

उद्देश्य ही भारत के तैयार माल को यूरोप मे बेचना था परन्तु उद्योगपति पूँजीवादियो ने इस क्रम को उलट दिया और भारत को बाजार बना दिया। अँगरेजी राज्य भारत के घोर आर्थिक शोषण का ही दूसरा नाम है। 'मोहमद गजनवी ने आक्रमण करके अठारह बार भारत को लूट लिया। उसने अठारह आक्रमणों द्वारा जितनी सम्पत्ति लूट ली, इसकी अपेक्षा कई गुना अधिक सम्पत्ति अंग्रेज शासक भारत म से लूट कर ले जाते थे। गजनवी की लूट अठारह आक्रमणो के बाद बन्द हो गई किन्तु अँग्रेज शासको द्वारा निरंतर शोषण होता रहा।' साम्राज्यवादियो की यह आर्थिक शोषण की नीति भारत के स्वातन्त्र्य की प्राप्ति के बाद बन्द नही हुई। इसी कारण भारत दरिद्र बना।

विदेशी पूँजीवाद देशी व्यापार पर नाना प्रकार की पाबन्दियाँ लगाकर उसे चौपट करता जा रहा था। विदेशी तैयार माल की खपत और कच्चे माल के निर्यात म जनता की आर्थिक स्थिति बिगडती चली जा रही थी। जब तक देशी रजवाड रहे उनके सहारे सहस्रो परिवार अपना पेट पालन करते रहे किन्तु देशी सामन्तवाद के विनाश के कारण वे भुखमरी का शिकार बनने लगे। जो भारत अंग्रेजो के आगमन के पूर्व औद्योगिक दृष्टि से अत्यंत सम्पन्न था, और अपना तैयार किया हुआ माल चीन जापान, अरब, फारस, इग्लैंड तथा अन्य योरोपीय देशो म भेजा करता था, जिसकी मलमल की कमनीयता तथा रेशमी और ऊनी वसन की मदुलता के सम्मुख विदेशो की मिल मेड माल भी निकृष्ट होता था। वही भारत साम्राज्यवादियो की दूषित व्यापारिक नीति तथा शोषण प्रवृत्ति के कारण स्वयं दूसरो का याचक बन गया।

अंग्रेजो की इस शोषण नीति का परिणाम यह हुआ कि भारत की अर्थ नीति अकाल और दुर्भिक्ष की कहानी बन गई। उन्नीसवीं शताब्दीयो मे अनेक बार अकाल पडा। सन १८७६–७८ म जब देश का दक्षिण भाग दुर्भिक्ष से पीडित हो रहा था तब लार्ड लिटन सम्राज्ञी विक्टोरिया की स्वर्ण-जयन्ती मनाने के लिए दिल्ली म अपार धनराशि पानी की तरह बहा रहा था। १९०० ई० के भीषण अकाल म भी लाखो व्यक्ति भूख से पीडित होकर मृत्यु विवर म प्रवेश कर गए। विदेशी सरकार की अनीति तथा शोषण ने ही भारतीय जनता को भूखा मरने पर विवश किया।

अंग्रेजो की शोषण नीति का प्रभाव कृषक पर भी पडा। भारत प्रमुख तथा कृषि प्रधान ग्रामो का देश है। इग्लैंड भारत को कृषि प्रधान देश ही बनाये रखना चाहता था जिसमे भारत म उसे हर तरह का कच्चा

मिले। जब कभी भारतीय सरकार ने देशी व्यवसाय को प्रोत्साहन देने का निश्चय किया तब तब इंग्लैंड की सरकार ने उसके उस निश्चय का विरोध किया। विदेशी शासकों ने सर्वप्रथम भारतीय ग्रामों की आत्म निर्भर प्रणाली, हस्तकला उद्योग तथा संगठित जीवन को विच्छिन्न कर एक नवीन जमींदारी तथा रैयतवारी प्रणाली में जकड़ लिया। अन्य कला-कौशल के अभाव में अधिकांश ग्रामवासियों की आजीविका का साधन कृषि कम ही रह गया था। सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक अंधविश्वासों के कारण उनकी आय की अपेक्षा व्यय ही अधिक था अतः ऋण आवश्यक था। ऋण पाने की उचित व्यवस्था न होने के कारण ग्राम वासियों को महाजन एवं साहूकारों का आश्रय लेना पड़ा। अतः जमींदार तथा साहूकार दोनों ने अज्ञानी किसानों की अशिक्षा का लाभ उठाकर शोषण किया। इस पर और आपत्ति यह थी कि भूमि पर लगान प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। किसानों को दो जून खाना मिलना मुश्किल हो गया।

इसी के साथ एक और विपत्ति थी। अंग्रेज लोग भारत से प्रतिज्ञाबद्ध मजदूर पकड़कर अपने दूसरे उपनिवेशों में उद्योग में काम लेने के लिए ले जाते थे। ये मजदूर 'कुली' कहलाते थे जो दास का ही नया नाम था।

नागरिक जीवन में भी अनेक आर्थिक समस्याएँ उठ खड़ी हुई थीं। विदेशी शासक वर्ग ने जिस प्रकार शिक्षा का प्रचार किया था, उससे अधिक संख्या में क्लर्कों की ही भरमार हो सकती थी। आजीविकोपार्जन में सहायक स्वतन्त्र व्यवसाय सम्बन्धी शिक्षा न मिलने के कारण शिक्षित वर्ग को सरकारी नौकरी का द्वार खटखटाना पड़ता था जिससे दिन प्रतिदिन बेकारी की समस्या बढ़ती जा रही थी।

ब्रिटिश सरकार की आर्थिक शोषण नीति, पूँजीवादियों के अत्याचार कृषक तथा श्रमिकों की अतिशय दरिद्रता, कला कौशल एवं उद्योगधंधों का ह्रास करती हुई सुशिक्षित बेकारी अकाल आदि से भारतवासियों की स्थिति अत्यंत दयनीय हुई। दादा भाई नवरोजी ने ब्रिटिश शासकों को चेतावनी दी ऐसी ही दुर्दशा रही तो ब्रिटिश राज्य का जहाज इसी चट्टान पर टकराकर चकनाचूर हो जायगा।[1]

ब्रिटिश साम्राज्य की शोषण नीति के विरुद्ध बहिष्कार आंदोलन तथा स्वदेशी आन्दोलन चल पड़ा। जो स्वदेशी आन्दोलन चला उसमें विदेशी

---

१ उद्धृत आ० जावडेकर-आधुनिक भारत-पृ० १४३

वहिष्कार" का आन्दोलन आर्थिक विद्रोह ही कहा जायगा ।[1] देश की आर्थिक निभरता के लिए स्वदेशी वस्तुओं से प्रेम और विदेशी वस्तुओं का त्याग अत्यत आवश्यक था । तिलक जी ने अपनी चतु सूत्री म "स्वदेशी" का अतर्भाव किया था। गाधीजी ने खादी के प्रचार तथा स्वावलम्बन, ग्राम निभरता प्रणाली द्वारा देश की आर्थिक निभरता प्राप्त करने का प्रयास किया ।

उन्नीसवी शती म अगरेजी शासन की शोषण नीति, दुर्भिक्ष तथा महा मारियो के परिणाम स्वरूप देश की आर्थिक स्थिति इतनी क्षीण हो चुकी थी कि प्रथमोत्थान काल के कवियों को राजनीतिक दासता का उतना शोक नहीं था, जितना आर्थिक पराभव का । कवियों ने आर्थिक दुदशा के विविध रूपों का सविस्तार चित्रण किया है । इसे निम्नलिखित भागों म बाटा जा सकता है--

(१) आर्थिक शोषण और उद्योग धधों का ह्रास ।
(२) आर्थिक विषमता ।
(३) किसान और मजदूरों की दु स्थिति ।
(४) अकाल ।
(५) स्वदेशी आदोलन ।

इनको हम सविस्तार देखेंगे ।

आर्थिक शोषण और उद्योग धधो का ह्रास

अंग्रेजों की शोषण नीति से देश की आर्थिक निभरता अत्यत सोचनीय हो गयी थी । रामनरेश त्रिपाठी ने स्वदेश प्रेम के अतिरेक म देश-दशा का अत्यधिक करुण एव भावात्मक चित्र खीचा है । उनकी यह सबसे बड़ी विशेषता है कि तत्कालीन देश दशा के चित्रण के लिए कथा काव्य का आश्रय लिया है । 'पथिक' का क्रूर एव अन्यायी नृप अग्रेजी शासन का प्रतीक है जिसकी अनीति के कारण देश का आर्थिक स्थिति का विघटन हुआ था । 'पथिक' खडकाव्य म प्रेम-कथा के सहारे देश की आर्थिक दुदशा के चित्र प्रस्तुत किए हैं । भारतीयो की हीन दशा देखिए--

> धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर घर म
> मास नहीं है, सिरी साँस है, शेष अस्थि पजर म ।
> अन्न नहीं है वस्त्र नहा है रहने का न ठिकाना
> कोई नहीं किसी का साया अपना और बिगाना ।।[2]

भारतेन्दु हरिश्चद्र को भारत की आर्थिक स्वाधीनता की आवश्यकता

---

१ डा० सुधीन्द्र हिन्दी कविता म युगान्तर ।
२ रामनरेश त्रिपाठी-पथिक पृ० ४ ।

प्रतीत होती है। विदेश मे भारतीय धन के अपहृत होकर चले जाने से य बहुत क्षुब्ध हैं। व लिखत हैं --

अगरेज राज सुखसाज सजे सब भारी
प धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी ।[1]

रामनरेश त्रिपाठी ने 'मिलन' म विदेशी शासन की आर्थिक शोषण तथा भारत के लूट जाने पर प्रकाश डालते हुए अंग्रेजो के कारण आर्थिक विपन्नता अत्याचार कुनीति आदि का मार्मिक शब्दो म वणन किया है। 'अंग्रेजो के कारण ही यह स्वणभूमि कौडी का मुहताज बनी है।'[2] मथिली शरण गुप्तजी ने 'भारत भारती' के वतमान खण्ड म देश के आर्थिक सकट का विशद एव आद्र चित्र प्रस्तुत किया है। भारत क अमित अपव्यय की कथा कहते हुए कवि के हृदय का रोदन फूट पड़ा है कि श्रीहीन भारत म कमल क्या जल तक नही है केवल पक शेष है। विदेशी शासको ने इसके वभव का *शोषण कर अत्यधिक हीन दीन अवस्था मे पहुँचा दिया है।*[3] अंग्रेजो ने यहाँ क व्यापार, उद्योग कलाओ तथा सपन्नता को मटियामेट कर दिया इस पर 'प्रेमघन' को बडा दुख होता है।[4] तो भारतेन्दु अंग्रेजो की शोषण नीति पर अपह्नुति का प्रयोग कर व्यग्य करते हैं --

भीतर भीतर सब रस चूस
हँसि हँसि के तन मन धन मूस
जाहिर बातन म अति तज
क्यो सखि सज्जन नहिं अंग्रेज ।[5]

कवियो ने जनता के सम्मुख धन वल वभव आदि के ह्रास के भयानक रूप प्रदर्शित किए। जहाँ एक समय शस्य श्यामल मा अधिक अन्न उपजाते थे *जहाँ गोधन की समृद्धि क कारण सदा दूध की धाराए प्रवाहित होती थी* जिसक कला कौशल की श्रेष्ठता के कारण यहा का बनी वस्तुओ की अन्य देशाय लाग याचना करत थ उसका लगभग भूभाग का घोर पतन था।

भारत म लाखो करोडो निराहार रहत हैं विविध रोग ग्रस्त हैं फटे पुरान चिथडो म तन ढकते हैं। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' रूप दरिद्रता

---

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-भारतेन्दु नाटकावली-पृ० ५९८।
२ रामनरेश त्रिपाठी-मिलन (हिन्दी मन्दिर प्रयाग ५ वाँ स०) पृ० ४।
३ मथिलीशरण गुप्त-भारत भारती पृ० ८६।
४ प्रेमघन-प्रेमघन सवस्व पृ० ६३४।
५ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-भारतेन्दु ग्रन्थावली-भाग २ पृ० ८११।

से भलीभांति परिचित थे। इनका दृढ़ विश्वास था कि शिल्प की उन्नति के बिना देश की उन्नति कठिन है।[1]

अंग्रेजों ने कलाकारों के हाथ काट कर डाल कर, अनेक पाबंदियाँ लगाकर भारतीय व्यापार को चौपट कर दिया। कलाकारों पर किये गये इन अत्याचारों का उल्लेख माधव शुक्ल दुःख के साथ करते हैं।[2]

आर्थिक विषमता

पाश्चात्य संपर्क से नयी सभ्यता का प्रादुर्भाव भारत में हुआ। जमींदार अमीर के साथ उद्योग पति का वर्ग भी भारतीय समाज व्यवस्था के क्षितिज पर उदित हुआ। एक ओर विलासिता, श्रृंगार, धन, बल मदोन्मत्तता आलस्य, ऐश आराम तो दूसरी ओर घोर दरिद्रता, भूख कठोर परिश्रम लाचारी। सारा समाज उच्च मध्य और निम्न वर्गों में विभाजित हो गया। आर्थिक विषमता के शिकार दलित वर्गों का तथा वैभव सम्पन्न उच्च वर्ग का चित्रण कवियों ने किया है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भारत की विपन्नता के प्रतीक भिखारी की स्थिति और स्वरूप दोनों का स्पष्ट और सप्राण चित्र खींचा है—

> वह आता—
> दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
> पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
> चल रहा लकुटिया टेक
> मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
> मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता
> दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।[3]

इस कविता में 'निराला जी' ने भारत की दयनीय स्थिति का अत्यंत करुण चित्र खींचा है। भिक्षुक को अपने बच्चों के साथ जूठी पत्तलों को चाटने में भी चैन न मिल पाता था क्योंकि उन्हें झपट लेने को कुत्ते अड़े हुए थे। किसी भी देश की इससे आर्थिक दुर्दशा क्या होगी "तोड़ती पत्थर" कविता में निराला ने पूँजीवाद के कारण उत्पन्न भारत की निम्न

१ प्रेमघन, 'प्रेमघन सर्वस्व' स्वागत पृ० ५।
२ माधव शुक्ल "जागत भारत" पृ० ६८।
३ सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', अपरा, पृ० ६९।

वर्ग की नारी की दयनीय दशा का सजीव एवं प्रभावात्मक चित्र प्रस्तुत किया है।[1]

प्रभाकर माचवे ने निम्न मध्य वर्ग का चित्रण किया है। शहर की तमाम गलियों की सड़ांध इनके दिमाग में घुस नहीं पाती। ये लोग बस पच्चीस माहवार पर जीते रहते हैं किन्तु सब उच्च वर्ग की नकल उतारते हैं। इनका मन आशाहीन दासत्व से जर्जरित होता है और ये आर्थिक विषमता की विराट चक्की में पिस पिस कर महीन आटा बन जाते हैं। कवि इनका वर्णन करता है।[2]

भगवतीचरण वर्मा ने भी 'राजा साहब का वायुयान' कविता में आर्थिक विषमता का चित्रण किया है। अन्य एक कविता में गरीबों की अस्थि मास पर खड़ी इमारतों की ओर लक्ष्य करके कवि विषमता का भीषण चित्र उपस्थित करता है। कवि लिखता है—

> पर उस कमरे की दीवारें भर भर कर विष की फुफकारें
> कह उठीं ' तुम हत्यारे तुम सदा घोटते रहे गात
> हम खड़ी हुई उन नीवों पर जो चुनी गई कंकालों से
> इतिहास हमारा तुम पूछो उन भूखा मरने वालों से। '[3]

केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं कि घाट धर्मशाला विद्यालय वेश्यालय सारे श्रमजीवी की हड्डियों पर टिके हैं।[4] निराला ने आर्थिक विषमता के अनेक चित्र खींचे हैं। कवि ने सामन्तशाही का यथार्थ वर्णन किया है। राजा किला बनाकर रहा उसमें सेना रखी। चापलूसी ब्राह्मण उसके सेवक बनकर जनता को उन्होंने पोथियों में बांध दिया। राजा के पराक्रम के गीतों की रचना हुई तथा उन पर नाटक लिखे जाने लगे। समाज पर राजा वर्ग का जादू चला। लोक नारियों के लिए रानियाँ आदर्श हुईं धर्म और सभ्यता के नाम पर खून की नदियाँ बहीं और जनता ने उसमें सक्रिय भाग लिया।[5]

निराला ने इस कविता द्वारा सामन्तशाही का उत्कृष्ट चित्रण कर यह दिग्दर्शित किया है कि किस प्रकार राजा ब्राह्मण लेखक और कवि सामन्त

---

१ निराला तोड़ती पत्थर अनामिका पृ० ७९।
२ प्रभाकर माचवे, 'निम्न मध्यवर्ग' तारसप्तक भाग १ पृ० २०१।
३ भगवतीचरण वर्मा विस्मृति के फूल, राजासाहब का वायुयान, पृ० ६० ६५।
४ भगवतीचरण वर्मा विस्मृति के फूल, पृ० ४०।
५ केदारनाथ अग्रवाल, युग की गंगा पृ० ३५।
६ निराला नये पत्ते, पृ० ३२।

शाही के प्रशमक और प्रचारक रहकर, जनता को लूटते रहे और अपनी विषम समान रचना जनता पर थोपते रहे। अन्य एक कविता म कवि न आर्थिक शोषण क कारण आर्थिक विषमता का निमाण कम होता है इसका प्रभावशाली ढग से चित्राकन किया है।[1]

सुमित्रानन्दन पत न ग्रामो की हीन द शा का चित्रण किया है। ग्राम म असख्य लोग दख म जजरित होकर पशु सम जीवन बिताते हैं।[2] ग्राम में युग युग स अभिशापित अन्न वस्त्र से पीडित असभ्य और निबु द्ध जन रहते हैं। यह भारत का ग्राम सभ्यता-सस्कृति स हीन अपरिचित नरक है।[3]

किसानों और मजदूरो की दुदशा

आर्थिक विषमता क सबसे बडी बलि कृषक और श्रमिक रहे हैं। किसान तो हमारे राष्ट्र क मेरुदण्ड हैं अन्नदाता हैं जिन्हे अग्रेजी शासनकाल म दीन दरिद्र बनना पडा और जमीदार प्रथा न उन्हें चूसकर बरबाद कर दिया। ग्रामवासियो का सम्पूर्ण जीवन ही विदेशी शासको की पूँजीवादी व्यवस्था पर आश्रित हो गया था। अन्य हस्त उद्योग के अभाव म कृषि कम ही भारत के बहुसख्य ग्रामवासियो की आजीविका का एकमात्र साधन रह गया था। नवीन बनाविक प्रणाली स आश्रित जमीदारी व्यवस्था से त्रस्त महाजनो के ऋणी अशिक्षित एव अज्ञानी कृषक को परिवार क लिए भोजन जुटाना कठिन था। लगातार पडने वाले दुर्भिक्ष न किसानो की अर्थ व्यवस्था चौपट कर दी। अग्रेजी राज्य म सबसे अधिक कर किसानो पर ही बढाया जा रहा था। जमीदारो क जुल्मो के गुर्गे तहसील के चपरासी लाल पगडी वाले पुलिस कर्मचारी पटवारी सूदखोर महाजन इत्यादि कृषको क रक्त पर ही पल रहे थे। जमीदार नरहत्या करने वाले थे तो किसान नरनारायण बनकर जग के पोषणकर्ता थे। इन नरनारायण किसानो के अस्थिपजरो पर प्रसाद खड़े हो जाते थे। आधुनिक सभ्यता की चमक दमक भडक विलासिता शृगार धर्म-पूजा पद्धति साधारण सब किसानो पर निर्भर हैं। परन्तु इन्ही किसानो पर अत्याचार होते थे और गोरे शासक किसानो पर होने वाले अत्याचारो के प्रति उदासीन थे।

कृषको की दयनीय अवस्था का विस्तृत वणन अनेक कवियो ने किया है।

---

१ निराला नये पत्ते पृ० २९-३०।

२ सुमित्रानन्दन पत ग्राम्या पृ० १३।

३ वही, , पृ० १६।

मैथिलीशरण गुप्त ने भारत भारती में कृषकों की अवस्था का वर्णन किया है।[1] 'सनेही द्वारा लिखित दुखिया किसान'[2] मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखित कृषक कथा[3] किसानों की दयनीय स्थिति का परिचय देने के लिए लिखे गये हैं। इस युग में कृषकों के प्रति शिक्षित जनता का ध्यान आकृष्ट करने के लिए दो प्रबंध काव्य भी लिखे गये–'कृषक क्रन्दन और किसान। दोनों प्रबंधों के नायक किसान है। 'कृषक क्रन्दन के नायक का परिवार सूदखोर महाजन अत्याचारी राजासाहब और पुलिस के कर्मचारियों के जुल्मों का शिकार बनता है। एक भरा पूरा कृषक परिवार एक एक करके नष्ट हो जाता है। नायक भी भूख की ज्वाला से तड़प तड़प कर दम तोड़ देता है। मरते समय भगवान् से वह प्रार्थना करता है कि कृषक का जन्म फिर से न देना।[4] किसान का नायक भी कठोर परिश्रम और दुखद जीवन को पुनश्च नहीं चाहता।[5]

'कृषक क्रन्दन और किसान दोनों प्रबन्धों की विशेषता यह है कि दोनों प्रबन्ध के नायकों के हृदय में अत्याचारियों से प्रतिशोध लेने की भावना या तो जागती ही नहीं और रोष का भाव जागृत होता भी है तो शीघ्र शान्त हो जाता है। इस प्रवृत्ति के विपरीत प्रगतिवादी काव्य की विशेषता यह है कि वहाँ कवि पूँजीपतियों के अत्याचारों का बखान करके केवल आँसू पोंछकर मौन नहीं रह जाता अपितु क्रान्ति की आवाज बुलन्द करता है।[6]

सुमित्रानन्दन पन्त निराला जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द रामनरेश त्रिपाठी केदारनाथ अग्रवाल निराला भगवतीचरण वर्मा आदि कवियों ने कृषकों की हीन दशा का वर्णन किया है। सुमित्रानन्दन पन्त ने युगवाणी की कृषक रामनरेश त्रिपाठी ने मिलन में किसान की दुःस्थिति का वर्णन किया है। केदारनाथ अग्रवाल ने धरती के किसान[7] निराला ने कुत्ता भौंकने लगा[8] तथा रामविलास शर्मा ने रूढ़िग्रस्त मिट्टी के पुतले[9] कविताओं में किसानों

---

१ मैथिलीशरण गुप्त–भारत भारती– वर्तमान खण्ड पृ० ९३।

२ सरस्वती–जनवरी १९१२।

३ सरस्वती–जनवरी १९१५।

४ सनेही–कृषक क्रन्दन पृ० ८-९।

५ मैथिलीशरण गुप्त–किसान छन्द संख्या २३।

६ डा० शम्भुनाथ पाण्डेय– आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका पृ० १९।

७ केदारनाथ अग्रवाल–युग की गंगा–पृ० ४५।

८ निराला–कुत्ता भौंकने लगा –नये पत्ते–पृ० ६२।

९ रामविलास शर्मा–तारसप्तक भाग १ पृ० २३२।

के दुख का वणन किया है।

किसानो का जीवन नरक समान होता है। अन्न, वस्त्र, निवास होता ही नही। 'धनिको के घोडे पर झूलें पडती हैं, किसानो को कडी ठण्ड मे वस्त्र-हीन रहना पडता है वर्षा म गीले घर म जग कर रात बितानी पडती है।'[1] जेठ अथवा पूस किसी भी ऋतु म उ हे आराम नही मिलता। भुजाओ मे शक्ति है कि तु सूखी रोटी दाना समय नही मिलती और सुख का तो नाम ही नही होता।[2] कवि दिनकर की 'हाहाकार' शीर्षक रचना म हमारे कृषको के श्रम मय जीवन और द यग्रस्त अवस्था का शब्दचित्र करुणा स अकित है। राष्ट्र पति राजेद्रबाबू इस कविता को सुनकर रो पडे थे।

अमीरो के वैभव की बलि कृषक व्यथा को दिनकर वाणी देत हैं। पहले राजा अपने शत्रुओ को जीतकर अश्वमध करत थे, आज पूँजोपति कृषक मध करत हैं। आज कृषको की बलिवेदी पर पूँजीपतियो का बबर पाशविक अट्ट हास हो रहा है। नगरो म एक स एक सुदर महल बनत जा रह है और उ ही क बगल म झुकी हुई झोपडियाँ उजडती जा रही है—

विद्युत की इस चकाचौध म, देख दीप की लौ रोती है
अरी हृदय को थाम, महल क लिए झोपडी बलि होती है
देख, कलेजा फाड कृषक द रह हृदय शोणित की धार
बनती ही उनपर जाती है वैभव की ऊँची दीवारें।[3]

भगवतीचरण वमा न 'भसागाडी' म बसन वाली जनता की पतितावस्था का सजीव चित्राकन किया है। ग्रामीण का करुण क्रन्दन क्षुधाग्रस्त बच्चो की हाहाकार चाँदी के टुकडो पर अभिमान करन वालो क अत्याचार स पीडित कृषक की विवशता का हृदय भेदी वणन उनकी कविता म खूब मिलता है।[4]

पतक सपत्ति देखन हो हमारे सामन सपत्तिशाली बाप के बेटो की पैतक सपत्ति का दृश्य आ जाता है कि तु दरिद्र किसानो क बेटे को विरासत मे आपत्ति मिलती है। ग्रामीण कृषक यह जानता है कि पिता की मत्यु के उप-रात उस साहूकार का भारी कज विरासत क रूप म मिलेगा।[5]

इन किसानो का जमीदार और महाजन रक्त चूसते है। किसानो का

---

१ जगन्नाथप्रसाद मिलिंद–नवयुग के गान–पृ० ७।

२ दिनकर–हाहाकार हुकार–पृ० २२।

३ दिनकर–'कस्मै देवाय'–रेणुका–पृ० ३२–३३।

४ भगवतीचरण वर्मा–भसागाडी–स्मृति क फूल–पृ० ५०–५१।

५ केदारनाथ अग्रवाल–युग की गगा–पृ० ५०।

आर्थिक शोषण पर भी प्रकाश डाला है। इनका शोषण इतना भीषण होता है कि किसान 'अग्नि नाग' जीवन्मृत और कंगाल बन जाता है। महाजनों का ब्याज चुकाने के लिए उसे हल-बैल बेचने पड़ते हैं, भूखा मरना पड़ता है। इस भूमि का किसान होकर बम्बई को मजदूर बनकर जाना पड़ता है।[1] जिस समाज में विषमता, शोषण, अत्याचार और अन्याय है उस समाज की बलि निष्प्राण किसान हो जाता है।[2]

किसानों को दरिद्रता के कारण कर्ज लेना पड़ता है और उस कर्ज को चुकाने के लिए उसे अनाज, गाय, बैल, घर आदि बेचना पड़ता है। भिखारी बनकर अनाज के एक एक दाने के लिए उसे तरसना पड़ता है। वास्तव में कृषक की मृत्यु के साथ ही मानव संस्कृति की भी मृत्यु होती है परन्तु इस तथ्य से अपरिचित उन्मत्त प्रासादवासी उसके मरण पर हँसते हैं।[3]

किसानों की दुर्दशा का वर्णन अनेक कवियों ने किया है। गोविन्द कवि ने *किसानों की हृदय द्रावक अवस्था का वर्णन किया है। कवि लिखता है 'भूख से पीडित इन किसानों का कोई संरक्षक नहीं है।* दरिद्रता के कारण महाजन से सूद पर कर्ज लेना पड़ता है, सरकार को टैक्स देना पड़ता है। द्रव्याभाव के कारण खेती में अच्छी फसल नहीं उगा पाते, मवेशियों को खाने के लिए घास नहीं होती। कर्ज वसूल करने के लिए उसके घर की कुर्की की जाती है।[4] सरकार भी किसानों की सहायता नहीं करती।

इस प्रकार किसान की दुर्दशा, दरिद्रता, शोषण तथा किसान के कठोर परिश्रम एवं भाग्यवाद का वर्णन हिन्दी कवियों ने किया है।

किसानों की भाँति मजदूरों का जीवन भी नारकीय बन गया है। भारत में पूँजीवादी व्यवस्था की स्थापना कर अंग्रेजी शासकों ने थोड़े से भारतीयों को धनाढ्य बनाकर उनकी सहायता से साधारण जनता को चूसने की अनोखी रीति निकाली। मजदूरों का जीवन अनेक अभावों से ग्रस्त था। रोज सुबह अधमरे युवक मिल में काम के लिए जाते हैं। भूखी सूखी चीमड़ सी अधनंगी नारियाँ भी कठोर परिश्रम करती हैं। इनकी मुस्कान फाँसी के तख्त

---

१ अज्ञातवासी– सावकारा –अज्ञातवासीची कविता पृ० २३ ।
२ यशवंत–यशोधन– भूपतीस पृ० ४८ ।
३ कुसुमाग्रज– बळी लिलाव –विशाखा–पृ० ४२–४३ ।
४ ग० ल० ठोकळ– सावकारी पाश'–मळाभाकर पृ० २१–२२ ।
५ कुसुमाग्रज– बळी विशाखा–पृ० ४१ ।
६ गोविंद–'शेतक याची दु:खद कहाणी –कवि गोविंद याची कविता, पृ० ३६ ।

जा रहा था कि भारतवष जसा अकिंचन देश जब तक थोडे म निर्वाह करना नही सीखता, कला कौशल म दक्ष होन के लिए वह स्वय प्रयत्नवान नही होता जब तक इसम चकाचौंध करन वाली विदेशी वस्तुआ के प्रति घणा के भाव जागत नहा होते तब तक कोई भी राष्टीय योजना सफल नही हो सकती।

विदेशी वस्तु त्याग और स्वदेशी वस्तु व्यवहार देश की गिरी हुई आर्थिक दशा का सुधारने का एक सवमान्य प्रारम्भिक उपाय था। सभवत इसीलिए विदेशी वस्तु का आदोलन स्वाधीनता का एक प्रमुख अग बना लिया गया था। देश के राजनीतिक रगमच मे एक ओर तो विदेशी वस्तु त्याग का आदोलन चलता था और दूसरी ओर स्वदेशी वस्तु व्यवहार के अनुकूल भावनाएँ जागत की जाती थी। विदेशी वस्तुआ म कपडे का सबसे अधिक आयात था, विशेषता यह थी कि हम अपनी रुई सस्ते दामा म विदेशिया को वेचते थे। विदेशी वस्तुआ म विदेशी वस्त्र के व्यवहार के विरुद्ध ही आन्दोलन हुए। विदेशी माल की भारत म होलिया जलाई गइ।

स्वदेशी से भारत का कल्याण हो सकता है। विदेशी वस्तुआ के विक्रय के *कारण ही भारत का धन विदेश चला जा रहा है और देश दिन प्रति दिन* निधनता प्रमित हो रहा है। इसीलिए गाढा झीना जो भी मिले पर स्वदेशी पहनना चाहिए। भारत के कोरी और जुलाहे भूखे मर रहे हैं कला-कौशल नष्ट हो रहा है क्योकि स्वदेशी की उपक्षा हो रही है। अत छोटी सी-छोटी वस्तु भी स्वदेशी होनी चाहिए अथवा उनका प्रयोग नही करना चाहिए।

स्वदेशी तथा खादी प्रचार की आर्थिक योजनाओ ने राजनीति म महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त किया था। बहिष्कार आदोलन क फलस्वरूप जनता का ध्यान इस ओर बहुत गया राष्टीय क्षेत्र म गांधी जी के आगमन क पूर्व ही स्वदेशी आदोलन तीव्र गति स चल चुका था। गांधीजी के आगमन के साथ चरखा खादी का प्रचार अधिक बढ गया। लाखो नवयुवक स्वदेशी व्रत धारण कर उसे आमरण निभाने लग। स्वदेशी आदोलन ब्रिटिश साम्राज्य की आर्थिक नीति पर प्रबल प्रहार था।

इन राष्ट्रीय विचारो से तत्कालीन कवि भी प्रभावित हुए और उन्होने राष्ट्र का हित ध्यान म रखते हुए देश की आर्थिक दशा के इस पहलू का हृदयगम किया और स्वदेशी आदोलन मे अपनी शक्तिशाली कलम का योगदान दिया। काव्य की अपेक्षा उपन्यासो एव कहानियो म इसका विस्तृत चित्रण मिलता है क्योकि उसम इसकी अभिव्यक्ति की सभावना कम थी। काव्य मे

पर झूलने वाले शव सी लगती है । उन्हें अयाय और अत्याचार हर रोज सहन करना पडता है ।[1] मजदूर के अगो पर लगोटी है छोटी झोपडी मे वह भूखा प्यासा विप के घूँट पिए रहता है उसकी देह म न मांस है न रुधिर है ।[2] जब रोटी के दीवाने कुत्ते से बदतर य घिसते हैं तब शोषक वग सुविधाभोगी, आराम तलब, ऐयास, वभव एव ऐश्वर्यों से युक्त है ।[3] इसी कारण जब कि अय भारतीय स्वाधीन भारत चाहते थे तब मजदूर समतावादी भारत चाहते थे ।

किसान की दुदशा के समान ही हिन्दी कवियो न मजदूरो की हीन दशा का, शोषण का, यथाथ चित्रण किया है ।

अकाल

भारतवष म अग्रेजी शासनकाल मे अनेक अकाल पड गये थे । यातायात साधनो के अभाव, विदेशी साम्राज्य सत्ता धारियो की लापरवाही वत्ति, किसानो तथा दलितो की दरिद्रता, अज्ञानता, अशिक्षा के कारण लाखो लोग काल के कराल गाल म कवलित हो जाते थे । हजारो वद्ध बालक नारियाँ, यवक भूख से तडपत हुए अस्थिपजर बन जाते थे । यह महाराक्षस—अकाल जीवन के सारे मूल्यो को, पवित्रता को शील को समाप्त कर देता है । पति पत्नी पिता पुत्र, माता कन्या का रिश्ता-नाता, अथवा प्रेम न रहकर अनाज के चार दान ब्रह्म, पवित्रता मातापिता सब कुछ बन जाते थे । मुट्ठीभर अनाज क लिए पत्नी तथा कन्या का शील बेचा जाता था ।

गरीबो क लिए अवषण दवोऽपि दुबल घातक के समान होता है । अनेक हिन्दी कवियो ने अकाल का वणन किया है । बालमुकुन्द गुप्त ने अकाल का भीषण चित्र खीचा है—

> 'जहँ तहँ नर ककाल वे लगे दीखते ढेर ।
> नर न पसुन क हाड सो भूमि छई चहुँ फेर ।
> अब या सुखमय भूमि महँ नाही सुख को लेस ।
> हाड चाम पूरित भयो अन्न दूध को देस ।
> बार बार मारी परत बारहिं बार अकाल ।
> काल फिरत नित सीस पै खोले गाल कराल ।

१ कमलश—आजके लोकप्रिय कवि—रामश्वर शुक्ल अचल, प० ७३ ।

२ सियारामशरण गुप्त—दनिकी—प० १७–३५ ।

३ कदारनाथ अग्रवाल—युग की गगा पृ० ४१ ।

४ बालमुकुन्द गुप्त—स्फुट कविता—पृ० २१ ।

बगाल के भीषण अकाल म तो पचास लाख लोग भूख से तडपते हुए मर गय । बगाल के अकाल पर अनेक कविताएँ लिखी गयी ।[1] उनम बच्चन की 'बगाल का काल नाम का खडकाव्य प्रसिद्ध है । इसम अकाल के भयकर रूप का वणन करते हुए व लिखते हैं—

मगन हो मत्यु नत्य करती ।
नग्न हो मत्यु नृत्य करती ।
दती परम तुष्टि की ताल
पड या बगाल म काल
भरी कगालो से घरती
भरी ककालो स घरती ।[2]

स्वदेशी आदोलन

स्वदेशी आदोलन का जम अगरेजो की आर्थिक नीति के कारण हुआ ।[3] अगरेजो की राजनीतिक महत्त्वाकाक्षा तथा चेष्टा उनके व्यापार की रक्षा और वद्धि के लिए हुई थी । ज्यो ज्यो इग्लड का भारत म आर्थिक लाभ बढता *गया त्यो त्यो उसका राजनीतिक स्वाथ भी बढता गया । फलत आर्थिक* शोषण के कारण देश की अत्यत दुदशा हुई । राजनतिक नता आर्थिक दुदशा को ही राजनतिक अधोगति का मख्य कारण मानते हुए विदेशी वस्तुओ के परित्याग तथा स्वदेशी पदार्थों के प्रयोग का प्रचार कर रहे थे । विदेशी सरकार के प्रति अस तोष प्रकट करने तथा देशवासियो के सामान्य लक्ष्य के लिए जागत करने का 'स्वदेशी आदोलन उपाय निश्चित किया गया । १८७० ई० मे गणेश वासुदेव जोशी ने महाराष्ट म सावजनिक सभा की स्थापना कर स्वदेशी वस्तु के प्रचार के हेतु कुछ दुकानें खुलवाई तथा देशी करघा के ताने बाने स बने वस्त्रो द्वारा देशवासियो को स्वदश प्रेम के रग म रग देन का प्रथम प्रयास होगा ।[4] इसके बाद वग भग के परिणाम स्वरूप सम्पूण देश म स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ हो गया ।

स्वदेशी वस्तुओ को अपनाने का आग्रह वास्तव म देश की अथ यवस्था को दष्टि म रखकर ही किया जा रहा था । राजनतिक क्षेत्र म यह अनुभव किया

---

१ रामविलास शर्मा–तारसप्तक भाग १, प० २४८ ।
२ बच्चन बगाल का काल–प० ८ ।
३ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय–आधुनिक हिन्दी साहित्य प० ७५ ।
४ डा० सुषमा नारायण–भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य म अभिव्यक्ति प० १७ ।

न्दिया था कि भारत को अधीन रखना तुम्हारा कतव्य है।[1]

दिनकर की "हाहाकार" कविता चारों ओर शोषण अत्याचार और राजनीतिक दमन पर केन्द्रित हुई। विजित पराजित और शोषित सहिष्णुता तथा शान्ति का उपहास करते हुए कवि लिखता है—

> टाक रही हो सुई चमपर शान्त रहे हम तनिक न डोलें
> यहा शान्ति गरदन काटती हो पर हम अपनी जीभ न खोलें
> शोणित से रग रही शुभ्रपट, सस्कृति निष्ठुर लिए करवाल
> जला रही निज सिंह पौर पर दलित दीन की अस्थि मशालें।[2]

राजभक्ति की भावना

'सन १८५७ के विप्लव की विफलता के पश्चात असतोष की अग्नि बुझी तो नहीं किन्तु महारानी विक्टोरिया के उदारता पूवक घोषणा पत्र के कारण कुछ अवश्य दब गई।'[3] सन १८५८ का महारानी का घोषणा पत्र भारतीय जनता ने अक्षरश सत्य समझ कर ही ग्रहण किया। महारानी विक्टोरिया जैसी करुण हृदया दयालु रमणी के भारत की सम्राज्ञी होने पर भारतीयो का हृदय राजभक्ति के भावो से परिपूण हो गया। इसी कारण राजभक्ति की भावना राजनीति और साहित्य दोनो मे प्रमुख है। यह राजभक्ति केवल दिखावे की नहीं थी वह हृदय की सम्पूण श्रद्धा से समन्वित थी। राजभक्ति सम्बन्धी प्रस्ताव कांग्रेस मे बराबर पास होते रहे थे और डा० पटठाभि सीतारामय्या ने यहाँ तक लिखा है कि पुराने जमाने मे कांग्रेसी लोगो को अपनी राजभक्ति की परेड दिखाने का शौक था।[4]

राजा ईश्वर का अंश होता है यह विचारधारा इस राजभक्ति की रचनाओ की आड मे काय करती लक्षित होती है। इसके साथ ही अंग्रेजो के शासन मे अनेक सुधार देखकर अग्रेजी राज्य के प्रारम्भिक अवस्था मे लोकहित वादी म० कृष्ण स्वामी राजन्, गोखले आदि विद्वान् तथा नेता अंग्रेजी राज्य को ईश्वरी वरदान मानते थे। गोखले ने सन १९०५ मे भारत समाज

---

१ उद्धृत डा० सावित्री सिन्हा युगचारण दिनकर पृ०३६।
२ दिनकर हाहाकार' हुँकार पृ० २१।
३ गुलाबराय काव्य विमर्श पृ० १८९।
४ डा० पटठाभि सीतारामय्या कांग्रेस का इतिहास प्रथम खड पृ० ५९
५ लोकहितवादी शतपत्रे क्र० ४६।

की स्थापना के अवसर पर समाज-सेवकों ने यह प्रतिपादित किया था कि 'ब्रिटिशों का और भारतीयों का सपर्क दैवी योजना है और भारतवासियों के लिए कल्याणकारक है।'[1]

जो कवि राजा अथवा रानी की कृपा सम्पादन करने के लिए तथा स्व कीर्ति प्रसार के हेतु स्तुत स्तोत्र गाते थे, उनकी कविताओ में आस्था की अपेक्षा उदार भावना अधिक होती है। जो राष्ट्र परकीय आक्रमण से क्वचित ही पीड़ित हुआ है, उस राष्ट्र म कवियों के जगत के प्रति देखने के दृष्टिकोण म जितना अहकार होगा उतनी ही विदेशी आक्रमणों से पीडित देश के कवियों मे हीनता की भावना होगी। अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भिक दिनो म हीनता की भावना हमारे कवियों मे लक्षित होती है। पराधीनता के कारण गुलामी वृत्ति को बढ़ावा मिला और विकास म बाधा पड़ गयी। अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भिक युग मे भारत को उदारचेता सहिष्णु परोपकारी राज्यकर्ता प्राप्त हुए। उन्होने समाजहित के अनेक काय किये। जिस युग म ब्रिटिश राज्य वरदान है यह धारणा प्रबल थी उस युग म विदेशी राज्यकर्ताओ के सम्बन्ध म कवियों के सम्मान दशक उद्गार स्वाभाविक हैं।[2] इसी कारण राजनिष्ठ गीतों की नया राजा रानी तथा गवनरो के दुखद निधन पर शोक गीतों की रचनाएँ होती थी।

इस समय की अधिकाश राजनीतिक कविताए सुव्यवस्थित शासन की स्वीकृति और नवीन सुविधाओं की आशा से विक्टोरिया वायसराय तथा गवनरो के प्रति प्रदर्शित राज्यभक्ति से ओतप्रोत होती थी। भारतेंदु रचित भारत भिक्षा, भारत वीरत्व, विजय वल्लरी विजयिनी विजय-वैजयन्ती, तथा रिपनाष्टक म राज्यभक्ति और कृतज्ञता के उद्गार हैं। प्रेमघन की आर्याभिनन्दन भारत बधाई हार्दिक हर्षादश और स्वागत तथा अम्बिकादत्त व्यास की नेत्रोत्सव-दृश्य इसी प्रकार की रचनाए हैं।

भारतेंदु विक्टोरिया रानी की जय जय विजयिनी जयति भारत महारानी राजा गन मुकुट मनी धन बल गुन खानी ' कहकर प्रशसा करते हैं तो राधा कृष्ण विक्टोरिया के निधन पर दु ख मानते हैं।

> मातहीन सब प्रजावृन्द करि जगत रुलाई
> मातु विजयिनी हाय सुरलोक सिधाई।

---

१ पाध्ये प्रभाकर आज काल्चा महाराष्ट्र पृ० २०५।
२ डा० बा० सा० पाठक आधुनिक वाङ्मयाचे अन प्रवाह पृ० १२६-१२७।
३ भारतेन्दु भारतेंदु ग्रथावली भाग २ पृ० ७३७।

अपन दश का बना हुई वस्तुआ का अपनान का अनुराध करते है और उसे देश की पूँजी के विनाश को रोकने का आदेश दा हैं।[1]

स्वराज्य और विदशी वस्त्र वहिष्कार का उल्लेख प्रेमघन ने चरखे की चमत्कारी के गीत मे किया है। व लिखते है कि एकता के साँचे म स्वराज्य का सिक्का ढल रहा है और होलिका म विदेशी बसन जल रहे हैं।[2]

भारत की अधिकाश ग्रामीण जनता का दयनीय दशा को सुधारने के लिए ही गाधीजी खादी के प्रयोग तथा ग्रामोद्योग का ओर प्रवत्त हुए थे। खादी और चरखे का गाधीजी ने प्रचार किया। खादी अब राष्ट्रीय जीवन का एक आवश्यक अग बन गई। अनेकों ने खादी पहनने का व्रत लिया। कवियों ने खादी के महत्त्व से अवगत कराने के लिए अनेक प्रभावोत्पादक रचनाएँ की। सोहनलाल द्विवदीजी ने जनता म खादी द्वारा राजनतिक चेतना निर्माण करते हुए लिखा है—

खादी के धागे धागे मे अपने पन का अभिमान भरा
माता का इसम मान भरा अन्यायी का अपमान भरा
खादी ही भर भर देशप्रेम का प्याला मधुर पिलायगी
खादी ही दे सजीवन मुर्दों को पुन जिलायेगी।[3]

सोहनलाल द्विवेदी जी ने गाँधीजी के खादी सम्बन्धी विचारों को काव्यरूप प्रदान करत हुए प्रत्यक दृष्टि स राष्ट्रीय उत्थान के लिए उपयोगी ठहराया है। उनके मत म राष्ट्रीय एकीकरण आर्थिक सुसपन्नता, ग्राम सुधार एव विदेशी साम्राज्यवाद रूपी शत्रु पर विजय प्राप्ति का एक साधन खादी है। "खादी से ही भारत का रूठी आजादी घर आयेगी।"[4]

कवि का यह विश्वास है कि गाँधीजी के तुच्छ सूत के धागे न विदेशी यत्र कला को चुनौती देकर उसे लज्जित किया। 'खद्दर के सूतों म नवजीवन, आशा, स्पृहा एव आल्हाद का सदेश है।'[5]

हिन्दी कवियों ने आर्थिक दुदशा के विविध रूपों का आर्थिक शोषण और उद्योग धधों का ह्रास आर्थिक विषमता, किसान और मजदूरों की

---

१ महावीर प्रसाद द्विवेदी, द्विवेदी काव्यमाला पृ० ३६८–३६०।
२ प्रेमघन, 'चरखे की चमत्कारी' 'प्रेमघन सर्वस्व" प्रथम भाग, पृ० ६३३–६३४।
३ सोहनलाल द्विवेदी भरवी प० ६–८।
४ वही , प० ८।
५ सुमित्रानन्दन पत, पल्लविनी प० २५७।

दु स्थिति अकाल, स्वदेशी आन्दोलन को यथार्थ रीति म चित्रित किया है। ब्रिटिश व आर्थिक शोषण ने सारे देश को कगाल बना दिया था। इसकी जो प्रतिक्रियाए जन समूहो मे उठी उनका प्रतिबिम्ब हिन्दी कविताओं म स्पष्ट रूप से लक्षित होना है। इसका सुन्दर उदाहरण है स्वदेशी आन्दोलन जो सारे देश म विद्युत के समान व्याप्त हो गया था और जिसका प्रचार कवियो ने प्रबलता से किया। आर्थिक पक्ष का उद्घाटन हिन्दी कवियो ने प्रभावशाली ढग से किया है।

राजनीतिक पक्ष

राजनीतिक पराधीनता देश का सबसे बडा दुर्भाग्य था। शौय स्वाभिमान, सदगुण तेजस्विता आदि का लोप होने के कारण देश परतत्र बना। देश को स्वतत्र करने के लिए अनक प्रयास किए गए। प्रचण्ड आदोलन बलिदान शहादता, सशस्त्र सग्राम तथा क्रान्तिकारियो के हत्याकाण्ड ने देश मे एक अपूव जाग्रति हुई थी। कवि भी इससे प्रभावित हुए। राजनीतिक पक्ष को हम निम्नलिखित रूपो मे विभाजित करना चाहते हैं—

(१) राजनीतिक दुदशा
(२) राजभक्ति की भावना और देशी राज्य की स्थिति
(३) लोकमान्य तिलक युग
(४) म० गाँधी युग।

राजनीतिक दुदशा

स्वाधीनता होन के बाद भारतीय निष्क्रिय बन गए। देशवासियों म यश प्रताप तेज निभयता निश्चय त्याग सयम अनालस्य अविचल उद्योग निष्ठा नीति प्रतिष्ठा साहस शौय चारु चरित का अभाव था। अनभिज्ञता तथा चतुर्दिक लाचारी से देश की हानि हो रही थी। वीरता के प्रतीक क्षत्रिय प्रमदा मदिरा माँस के दास बनकर कायर क्लीव बन गय थ।[१] देश क्षुधा दासता विग्रह का आगार बन गया था।[२] एक ओर लाचार पराजित गौरवशून्य भारत था तो दूसरी ओर विजयोन्माद म सेक्रेटरी आफ स्टेट लार्ड बकन हैड जस एक विजेता के समान विजित भारत पर निरकुश नीति को आरोपित कर रह थे। १९२७ म उन्होंने आक्सफोर्ड विद्यार्थियो को सदश

१ वियोगी हरि, वीर सतसई प० ७३।
२ नरेन्द्र शर्मा, हसमाला, प० ३२।

हाय दया की मूर्ति, हाय विक्टोरिया माता
हा अनाथ भारत को दुख म आश्रयदाता ।[1]

श्रीधर पाठक ने विक्टोरिया की प्रशसा की है ।[2] हरिऔध ने पद्यप्रमोद म राजभक्ति विशेष रूप स व्यक्त की है । स्तुति सवस्व के अन्तगत 'वाइसराय स्तुति मे कवि ने लाड हार्डिग की स्तुति की है । स्तुति सवस्व ' म ही ' शुभ स्वागत शीषक कविता म कवि न श्री जाज क शुभागमन पर हष प्रकट किया है ।[3]

हरिश्चन्द्र भारतेंदु न अग्रेजी राज सुख साज सजे सब भारी ' कहते हुए प्रशसा करत हैं तो प्रेमघन ज्ञान, विद्या, स्वास्थ्य उन्नति, प्रदान करनेवाले ' ब्रिटिश शासन की गुणावली का उल्लेख करते हुए लिखते है कि अग्रेजी राज के पूव काफिले लूटे जाते थे, दुगम स्थलो म जाना असम्भव था परन्तु अग्रेजी राज्य म रेल यान स अधेरी रात म अध पगु असहाय बालक तथा अबला तक निभयता से जा सकत हैं । विद्युत गस के प्रकाश म रात म राजपथ सु दर लगते हैं महानदियो पर बड बड सतु बाँधे हैं और पाठशालाए विद्यालय तथा विश्वविद्यालय खुलवाए हैं ।[4]

इन कवियो की राजभक्ति पूण उक्तियाँ आज खटकती हैं परन्तु तत्कालीन सदभ मे ये उद्गार स्वाभाविक हैं । उस समय ' भारतीय राष्टवाद के जनक न्या० रानडे भी कवल सुराज्य चाहत थ । ब्रिटिश राज्यकर्ता हिन्दी लोगो के साथ समता का व्यवहार करें और देशवासी ब्रिटिश साम्राज्य के साथ एक निष्ठ रहें, यही उनका तत्कालीन तत्त्व था । ' विक्टोरिया के शासन द्वारा अशात परिस्थिति का अन्त और शान्ति एव सुरक्षा के समय का आरम्भ हो गया । जनता सन सत्तावन की अशान्ति से ऊब उठी थी इसी से उसने नियमित और व्यवस्थित शासन का स्वागत किया । ईस्ट इडिया कम्पनी के शासन से देशवासी असतुष्ट थे, इसे जनता की सुविधा की कोई चिन्ता नही थी । इसी से देशवासियो ने विक्टोरिया की घोषणा का हृदय से स्वागत किया । इनको

---

१ राधाकृष्ण राधाकृष्ण ग्रथावली विजयिनी विलाप ', पृ० ६ ।
२ श्रीधर पाठक, विक्टोरिया' मनोविनोद, प० ३० ।
३ हरिऔध पद्य प्रमोद ' शुभस्वागत , प० ८ ।
४ प्रेमघन प्रेमघन सवस्व, प्रथम भाग, प० २४८ ।
५ प्रेमघन हार्दिक हर्षादश ', प्रेमघन सवस्व प० २७३ ।
६ आ० जावडेकर, आधुनिक भारत, पृ० १८३ ।

पूरा विश्वास था कि घोषणा में किए हुए वचन पूरे किए जायेंगे। फलतः शासनाधिकारियों को ये अपनी राजभक्ति का विश्वास बारम्बार दिलाते थे। आज लोगों को चाहे इसका अनुभव हो रहा हो कि इन लोगों की आशाएं कितनी भ्रान्तिपूर्ण थीं किन्तु इसका अनुभव भारतेंदु युग के तथा मराठी कवि केशवसुत के पूर्व कवियों के बाँटे में पड़कर वर्तमान युग के लोगों के हिस्से पड़ा। इसलिए राजभक्तिपूर्ण इन उद्गारों को कोरी चाटुकारिता नहीं कहा जा सकता। इनमें भारतवासियों की सच्ची भावना की अनुभूति की झलक भी है। ब्रिटिश शासन की नई सुविधाओं और विज्ञान के नूतन आविष्कारों से कवियों तथा जनता दोनों की मति आच्छादित थी। इसी से कवि ब्रिटिश राज का गुणगान करते थकते नहीं थे। रेल सड़कें नहरें गैस बिजली और साथ ही शांति सुव्यवस्था की सभी कवि प्रशंसा करते हैं।[1]

डा० रामविलास शर्मा के अनुसार जनता में नवचेतना फैलाने के लिए ही राजभक्ति की आड़ ली गई थी।[2] डा० शम्भुनाथ पाण्डेय के विचार से तो—*राजभक्ति प्रदर्शित करना केवल साधन था साध्य तो अंग्रेजी शासन की घातक* नीतियों का पर्दाफाश करना ही था। किन्तु यह काम राजभक्ति का बिना कवच पहने हुए सम्भव नहीं था इसलिए राज परिवार की प्रशंसा और शुभ *कामना इन कविताओं में अवश्य रहती हैं।*[3]

डा० रामविलास शर्मा और डा० शम्भुनाथ पाण्डेय के विचारों का तथ्यांश मान्य करते हुए डा० केसरीनारायण शुक्ल का इस सन्दर्भ में विवेचन समीचीन लगता है कि सुव्यवस्था शांति तथा वैज्ञानिक साधनों से सुखकारक राज्य से जनता और कवि प्रभावित होकर ब्रिटिश राज्य की प्रशंसा करते थे। ये कवि शासन विद्रोही हैं राज विद्रोही नहीं हैं। उनका शासन के प्रति निष्क्रिय विद्रोह राजभक्ति के आवरण में पच्छन्न है। २० वीं सदी के प्रारम्भ तक इस काल के नेताओं ने ब्रिटिश सरकार के प्रति आस्था प्रकट की परन्तु इससे इनकी देश भक्ति पर अविश्वास करना सर्वथा अनुचित है यही बात कवियों पर लागू है।

इन कवियों की रचनाएं आरम्भ में राजभक्ति से ओत प्रोत हैं। परन्तु जब उनकी आशाएँ मृग मरीचिका के समान मिथ्या एवं भ्रममूलक सिद्ध हुई तब क्रमशः मोह का परदा हटता गया और समय एवं दासता की कठोरता

---

१ डा० केसरीनारायण शुक्ल—आधुनिक काव्यधारा—पृ० ७० ।

२ डा० रामविलास शर्मा—भारतेन्दु युग (द्वि० सं०) पृ० १४ ।

३ डा० शम्भुनाथ पाण्डेय—आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका, पृ० ५० ।

सामने आनी गई जिससे इनका बाद की रचनाओं में असंतोष की भावना स्पष्ट मिलने लगी।

रियासत अवस्था

देश के राजनीतिक नेता अंगरेज जाति की सच्चाई में पूर्ण विश्वास रखते थे। वे स्वयं को ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिक कहलाने में गर्व का अनुभव करते थे। ब्रिटिश साम्राज्य के वैज्ञानिक साधनों तथा सुधारों से देशवासियों की आंखें प्रथमतः चकाचौंध हो गई थी, किन्तु धीरे धीरे मोह का परदा हटता गया, और जनता अंग्रेज शासकों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए सन्नद्ध हो गई। उसी समय देशी रजवाड़े अत्यंत विलासप्रिय निकम्मे एवं प्रतिक्रियावादी बन गए थे। शिवाजी राणाप्रताप के ये वंशज संकुचित वृत्ति के कायर, भीरू, पराक्रमशून्य गौरवहीन तथा असंस्कृत थे। पराधीन भारत में रियासतों में इनके द्वारा अनेक अत्याचार होते थे। अन्याय, जुल्म, विषमता, दरिद्रता और राजा के अमर्याद अधिकारों से देशी राज्य पीड़ित थे। भारतीय देशी राजा लोकाभिमुख नहीं थे। प्रजानुरंजन और प्रजापालन के बदले वे ब्रिटिशों के खुशामदी लाचार दुर्बल सेवक बन गए थे। इन्हें अपनी जनता के सुख दुख से विशेष सरोकार नहीं रह गया था। प्रजातंत्र युग में राजाशाही की आवश्यकता नहीं रही थी। स्वातन्त्र्य-आंदोलन में उन्होंने किसी प्रकार से सक्रिय सहायता नहीं दी। अलंकारों से और कीमती वस्त्रों से सजी हुई इन निर्जीव गुड़ियों की भारतेंदु ने निम्नलिखित शब्दों में आलोचना की है—

> कहीं उदयपुर जैपुर, रीवां पन्ना आदिक राज
> परबस भए न सोचि सकहिं कछु करि निज बल बेकाज
> अंगरेजहु को राज पाइकै रहे कूढ़ के कूढ़
> स्वारथ पर विभिन्न ह्वै भूलै हिंदू सब ह्वै मूढ़ ।[1]

कवि काव्य विहारी ने देशी राजाओं के अत्याचार का वर्णन करते हुए लिखा है कि राज्य का स्वामी राजा की प्रजा को अत्यंत पीड़ा देता है और न्याय नीति को त्याग कर माता भगिनी को भ्रष्ट कर अनीति से प्रजा की लूट करता है। ऐसी स्थिति में भी वह सिंहासन से च्युत नहीं होता।[2]

---

१ भारतेंदु हरिश्चंद्र—भारत दुर्दशा भारतेंदु नाटकावली पृ० ६१।

२ राज्याचा धनि त्या अनन्वित पणे गांजी प्रजेला सदा
सोडी भ्रष्ट करोनी माय भगिनी गुंडाळुनी कायदा
सत्ताधीश परन्तु तो म्हणुनि त्या कोणी न वाकूं शके
अन्यायें लुटितो प्रजा परि सुखें सिंहासनी ता टिके।
—काव्य विहारी

म हुई । जनमत वग भग का घोर विरोध कर रहा था । 'वग भग के आदो लन का प्रभाव कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक प्राय सभी प्रान्ता पर पडा ।[1] इसका कुछ फल न हुआ उल्टे दमन ने और भी उग्र रूप धारण किया । अ त म ई० १९११ म आयोजित दिल्ली दरबार म बगाल के विभाजन का प्रस्ताव निषिद्ध हो गया । भारतीयो ने इसे अपनी विजय समझी ।

माखनलाल चतुर्वेदी ने लार्ड कर्जन की वग भग जसी विदेशी सत्तावादियो की नृशस नीति का क्षोभपूर्ण शब्दा म वणन किया है ।[2]

वग भग के आदोलन ने भारतीय जनता की दबी हुई चेतना के लिए चिनगारी का काम किया जिसके फलस्वरूप समस्त देशवासियो म राजनैतिक जागृति उत्पन्न हो गई । वग भग के अनुपग से स्वदेशी बहिष्कार, स्वशिक्षा स्वात य इस चतु सूत्री का प्रसार होने लगा ।

म० गाधी युग

म० गांधी का उदय तिलक युग की समाप्ति पर हुआ। म० गांधी ने भारतीय राजनीतिक रगमच पर प्रवेश करते ही काग्रेस म सम्पूणत परि वतन लाकर उस जनता की सघटना बनाई । सन् १९२० क बाद क स्वातन्त्र्य आदोलन गांधीवाद स परिचालित हुए । गांधीमत म हिंसात्मक साधना की गुजाइश नही है । गांधीवाद का तत्त्व चिन्तन पीडा का तत्त्व चितन है जिसका जन्म एक परतन्त्र देश की चिरपराजय म हुआ ।[3] गांधीजी मनुष्य स्वभाव पर विश्वास रखत थ और मानव क चरित्र बल का अधिकाधिक परि ष्कृत करने पर बल देत थ । छल कपट असत्य हिंसा षडयन्त्र आदि अनैतिक मानुषीय कूटनीति की चाल चलना तो राजनीति क आवश्यक अग मान जाते रह हैं । यह तो गांधीजी ही थ जिन्होंने सत्य अहिंसा तथा बन्धुत्व के बलबूते पर विदेशी सत्ता की विकराल शक्ति को चुनौती दी और विश्वभर क राष्ट्रो क सम्मुख यह आदश प्रस्तुत कर दिया कि घृणा को प्रेम से हिंसा को अहिंसा से बबरता को सत्य से भी विजित किया जा सकता है । गांधीजी राजनीतिक क्रिया-कलापो को सांस्कृतिक धारा का अविच्छिन्न अग मानत थ । इसीलिए उन्होंने स्वतन्त्रता की उपलब्धि क लिए सत्य और अहिंसा को नैतिक साधना के रूप में ग्रहण किया था । इसी भूमिका पर उनके आर्थिक

---

1. मन्मथनाथ गुप्त—भारत में सशस्त्र क्रान्ति का रोमांचकारी इतिहास प्रथम भाग, प
2. माखनलाल चतुर्वेदी—माता—पृ० ६१ ।
3. राजेन्द्रसिंह गौड़—हमारे कवि—पृ० ३५५–३५६ ।

और सामाजिक कायक्रम नियोजित थे। इससे भारतीय स्वातन्त्य सग्राम में "उन्होंने समूचे देश के हृदय म एक व्यापक राष्ट्रीय चेतना जागत कर उसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रतिरोध मे डटकर होने के योग्य बनाया।[1]" गाँधी दशन भारत की प्राचीन सस्कृति का सस्करण मात्र है जिससे जनता ने आत्मीयता की भावना स उसे ग्रहण किया।

सन १९२० स १९४७ तक गाँधीजी द्वारा तीन महत्त्वपूण देश व्यापी आन्दोलनो का सचालन किया गया। प्रथम १९२०–२१ का असहयोग आदोलन द्वितीय १९३० का सविनय आदोलन ततीय १९४२ का 'भारत छोडो आन्दोलन। इन सत्याग्रह आन्दोलनो म सत्य एव अहिंसा उनके साधन थे। 'शीघ्र स्वराज्य प्राप्ति' की आशा स उन्होने देश जीवन म नवीन चेतना का रस घोल दिया था। असहयोग आन्दोलन का मूल मत्र था राष्ट हित विरोधी शक्तियो के प्रति पूण असहयोग द्वारा राष्ट्रजीवन को उन्नत, पुष्ट तथा स्वतन्त्र करना।

हिन्दी साहित्य अपने युग की राष्ट्रीय भावना एव गाँधीजी के व्यक्तित्व तथा सिद्धान्तो म अत्यत प्रभावित है। या तो गाधीवाद का प्रभाव इस युग म सवव्यापी रहा है। हिन्दी का कोई कवि इससे अछूता न रहा हो।[2]" वस्तुत प्रथम असहयोग आदोलन के पश्चात हिन्दी साहित्य पर राजनीति का अत्यधिक प्रभाव दष्टिगोचर होता है।

गाधी दशन क सत्य अहिंसा प्रम का हिन्दी कवियो ने अपनी कविताओ द्वारा प्रचार किया है। सियारामशरण गुप्तजी ने गाधी दशन को समग्रत ग्रहण कर लिया है।[3] उनका उन्मुक्त एक सजीव नाटयगीत है, जिसकी प्रेरणा कवि को अहिंसावाद स मिली है। आज प्राय सभी राष्टो की शक्ति सयत्रल अजित करने मे लगी है। विनाश और सहार के स्वर धरती को कँपा रहे ऐसा परिस्थिति म कवि अहिंसा का प्रचार करता है—

> हिंसा म शान्त नही होता हिंसानल
> जो सबका है वही हमारा मगल है
> मिला हम चिर सत्य आज यह नूतन होकर
> हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।[4]

---

१ डा० शिवकुमार मिश्र–नया हिन्दी काव्य प० २५।
२ डा० नगन्द्र–हिन्दी काव्य का मुख्य प्रवत्तियाँ प० ५१।
३ डा० नगन्द्र–सियारामशरण गुप्त–प० ७३।
४ सियारामशरण गुप्त–उन्मुक्त–प० १६३।

यह गाँधी नीति का अविकल अनुवाद है। इतना ही नहीं तो इनकी समा समालोचना में मूलाधार यह है। ईश्वर आस्था, नवल, दलितों आदि में गाँधी वाद की अभिव्यक्ति है। डा० रामसकल राय शर्मा ने उपर्युक्त में अभिव्यक्त गाँधीवाद की आलोचना करते हुए लिखा है कि उपर्युक्त में गाँधीवादी विचार धारा का प्रचार अवश्य हुआ है परन्तु वास्तव में अहिंसा का सिद्धान्त हिंसक तथा दुर्दान्त पशु प्रवृत्तियों का सामना टिकता नहीं उनसे पार पाने के लिए शक्ति साधना और युद्ध कूटनीति ही रामबाण सिद्ध होती है। कवि की भावना अलबत्ता ऊँचे धरातल पर तो सराहनीय है किन्तु राष्ट्रीय नीति की नींव डालने और जीवन समाज का रचना में यह कोरा सिद्धान्त मात्र होगा।[1]

अहिंसा में त्याग सहन तथा आत्मशक्ति का आग्रह था। गाँधीजी ने अहिंसा को सिद्धान्त रूप में अपनाया था क्योंकि बन्दूक में रक्त बहाने की नीति उनके मन में अधार्मिक ही नहीं मानवता के प्रतिकूल भी था। उन्होंने विदेशी शासकों की क्रूरता से नैतिक तथा आत्मिक बल की श्रेष्ठता का प्रति पादन किया था। माखनलाल चतुर्वेदी में गाँधीवाद का भावात्मक रूप अधिक मिलता है व्यावहारिक कम। अहिंसा नीति के सम्बन्ध में माखनलाल जी लिखते हैं—

जो कष्टों से घबड़ाऊँ तो मुझमें कायर में भेद कहाँ ?
बदले में रक्त बहाऊँ तो मुझमें डायर में भेद कहाँ ?[2]

चतुर्वेदी जी ने गाँधीजी के अहिंसात्मक विचारों नैतिक एवं आत्मिक बल की श्रेष्ठता तथा सत्य के वास्तविक स्वरूप का अंकन तत्कालीन गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित होकर किया था। डा० स्नातक के अनुसार हिन्दी कविता में गाँधीवादी विचारधारा का सबसे अधिक और प्रबल समर्थन माखनलाल जी ने किया है।'[3] माखनलाल जी के प्रति उचित आदर रखते हुए इस मत को मान्य नहीं कर सकते। गाँधीवादी विचारधारा के प्रमुख कवि हैं मैथिलीशरण गुप्त सियारामशरण गुप्त माखनलाल चतुर्वेदी त्रिशूल सुभद्राकुमारी चौहान वियोगी हरि सोहनलाल द्विवेदी रामनरेश त्रिपाठी बालकृष्ण शर्मा नवीन' आदि। इनमें गाँधीवादी विचारधारा के प्रमुख कवि

१ डा० रामसकलराय शर्मा द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य, पृ० ३७१।
२ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ५३।
३ उद्धृत डा० रामसिंहासन तिवारी माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्ति और काव्य, पृ० २१०।

हैं सियारामशरण गुप्त जिनके रग रग म और शब्द शब्द मे गाँधीवाद समाया हुआ है।

रामनरेश त्रिपाठी गाँधावादी विचारधारा मे प्रभावित कवि हैं। उनके तीनो खण्ड काव्य—पथिक, मिलन, स्वप्न जो सन १९३० के राष्ट्रीय आन्दोलना के दिना प्रत्येक राष्ट्र प्रेमी युवक के कण्ठहार बने हुए थे।[1] उन्होंने पथिक' नामक खडकाव्य म गाँधीजी के सत्य अहिंसा की पुष्टि की है। उनका नायक पथिक स्वदेश प्रेम हित अपना जीवन उत्सग कर देता है। सत्य, न्याय तथा अहिंसा इसके जीवन के मूलाधार हैं। पत्नी तथा पुत्र की मत्यु भी उसे सत्य तथा अहिंसा के माग से विचलित नही कर पाती। अत्याचार से विक्षुब्ध युवक वग को हिंसान्मुख देखकर वह अहिंसा की श्रेष्ठता तथा कल्याणकारिता को समझाते हुए कहता है—

रक्तपात करना पशुता है, कायरता है मन का।
अरि को वश करना चरित्र से शोभा है सज्जन की॥
भाग्यहीन जब किसी हृदय म क्रोध उदय होता है।
बढती ह पाशविक शक्ति आत्मिक बल क्षय होता है॥[2]

श्री मथिलीशरण गुप्त ने भी गाँधीवाद का प्रचार किया है। अहिंसा सवधम मम भाव दशभक्ति अछूतो के प्रति मानवीय व्यवहार, स्त्री शिक्षा तथा अन्याय का शान्तिपूण विरोध गाँधीवाद की प्रमुख अभिव्यक्तिया है जो गुप्तजी के साहित्य म उपलब्ध है।[3] उनके नाट्य काव्य अनघ का मूलभूत विचार बिन्दु सत्य-अहिंसा है। मघ भगवान बुद्ध का एक साधना वतार है। गुप्तजी मघ द्वारा समाज मे सत्य तथा अहिंसा की स्थापना करा कर अधम अनीति, अन्याय को मिटा डालना चाहते हैं। मघ आत्मा की आज्ञा मानता है और सच्चे अर्थों म मानव धम का पालन करता है।'[4] वास्तव म मघ गाधीजी का प्रतिरूप है जो सत्य एव अहिंसा स उच्चादर्शों स परिपूण है।[5]

---

१ शिवदान सिंह चौहान हिन्दी साहित्य के अस्सी वष प० ८१।

२ रामनरेश त्रिपाठी, पथिक प० ६४।

३ डा० परशुराम शुक्ल विरही' आधुनिक हिन्दी काव्य म यथाथवाद प० २०५।

४ मथिलीशरण गुप्त, अनघ, प० १८।

५ गाधी नीति की साकार प्रतिमा मघ के आदश चरित्र की कल्पना अनघ की मूल विशेषता है। —डा० उमाकान्त गोयल मथिलीशरण गुप्त, कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, पृ० २३।

गांधीजी द्वारा संचालित सत्याग्रह आन्दोलन आध्यात्मिकता पर आधारित था। सत्य, साहस एवं अहिंसा उसका आधार थी। उनके मतानुसार सत्य का हर अथवा उच्च अर्थ का परमेश्वर। साधारण तथा अन्य अर्थ में सत्य का अंतर का सत्याग्रह, सत्यविचार तथा सत्यवाणी। सत्य अथवा परम तत्त्व की प्राप्ति के लिए आत्मा की परमावश्यकता थी। अहिंसात्मक मार्ग के अनुगमन द्वारा सत्य की प्राप्ति निश्चित थी। त्रिशूल ने सत्य तत्त्व की विवेचना करते हुए लिखा है—

> सत्य सृष्टि का सार, सत्य शिव का स्वर है
> सत्य सत्य है, सत्य शिव है, अमर अक्षय है।
> जायत-मर में सत्य निरन्तर। सभी समय है
> सो सत्यमय सुन्दर सौरभ निर्भय है।[1]

नि:सन्देह गांधीजी का सत्य चिर पुरातन था। यह वही सत्य था जिसका आश्रय ले ध्रुव और प्रह्लाद ने अन्याय और अत्याचार के प्रतीक उत्तानपाद तथा हिरण्यकश्यप पर विजय पाई थी। इसी सत्यपालन के हेतु दशरथ ने कैकयी के वरदान की पूर्ति में प्राण त्याग दिये थे।[2]

ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध संघर्ष करने का एक प्रमुख साधन था सत्याग्रह। सत्याग्रही वीर राजपूतों से भी बढ़कर थे। राजपूत वीरों की यह विशेषता थी कि वे व्यक्तिगत वीर थे, अपनी मान प्रतिष्ठा और गौरव के लिए मर मिटने वाले थे। परन्तु आधुनिक काल के सत्याग्रही वीर राष्ट्रीयता और जातीयता की भावना से मर मिटने वाले हैं। इन्हें व्यक्तिगत मान-अपमान का तनिक भी ध्यान नहीं। फिर ये वीर राजपूतों की भाँति शस्त्र लेकर संग्राम में जूझने वाले नहीं वरन् मानसिक योद्धा हैं जो दृढ़व्रत अहिंसा और त्याग की भावना को शस्त्र बनाकर युद्ध करते हैं। ये अपने प्रतिद्वन्द्वी को मारना नहीं चाहते केवल उसे ठीक रास्ते पर लाना चाहते हैं, उसे यह बतलाना चाहते हैं कि उन्हें स्वतन्त्रता अपना जन्म सिद्ध अधिकार मिलना चाहिए।

सत्याग्रही के कर्तव्यों का विवेचन भी काव्य में मिलता है। श्री त्रिशूल ने इतिवृत्तात्मक शैली में सत्याग्रही कर्तव्यों की विवेचना की है। सत्याग्रही का कर्तव्य है कि सत्याग्रह जानकर अन्यायी कानून तथा असत्यादेश को न मानना तथा प्रेम और आनन्द के गीत गाते हुए सत्य को अपनाकर रण में जाना और

---

१ श्री त्रिशूल, राष्ट्रीय मन्त्र पृ० ४।
२ मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, पृ० ६४।

युद्ध तीव्र होने ही उत्साह से रण मे दृढ रहना ।"[१] बल्प्रहार को रोकन वाला सत्याग्रह है ।[२]

सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता मे सत्याग्रही वीरत्व और नारी की भावुकता का मिश्रित भाव झलकता है । इसका कारण था कि गाँधीजी द्वारा क्रियान्वित अहिंसात्मक राष्ट्रीय-आन्दोलन ने भारतीय पुरुष एव नारी दोनों को एक अपूव उत्साह, स्वाभिमान तथा आत्मबलिदान की भावना स भर दिया था । राखी जसे पुण्यपव पर, नारी ने अपने सत्याग्रही वीरो के लिए गौरव का अनुभव किया था । व अपन असहयोगी सत्याग्रही वार भाई के लिए रेशम की नही, लोह की हथकडियो का राखी भेजती हैं जिसस व भारतमाता के बन्धन काटने म समय हो सकें ।[३]

सुभद्राजी तत्कालीन नारी जागति और राष्ट्रीय चेतना की प्रतीक हैं । सुभद्राजी के काव्य म अहिंसाव्रतधारी सत्याग्रही वीरो की सघष प्रणाली का वणन प्रतीकात्मक शली म मिलता है । 'विजयी मयूर' कविता म मयूर सत्याग्रहा का प्रतीक है । विदेशी सरकार की क्रोधरूपी काली घनघोर घटाओ के अत्याचार रूपी पत्थरा स भी उसने अपनी स्वराज्य की पुकार बन्द नही की । अत मे मयूर की विजय सत्याग्रही वीर का विजय है ।

सियारामशरण गुप्त न "बापू' काव्यग्रथ म म० गांधी के प्रति अपनी अनन्य श्रद्धा एव भक्ति समर्पित करते हुए, सत्याग्रह आन्दोलन की लोकप्रियता पर प्रकाश डाला है । वस्तुत गाँधीजी न देशव्यापी आदोलन को जन्म दिया था । सियारामशरण गुप्त न लिखा है कि जब बापू अपने सत्याग्रही वीरा की टोली लकर सत्याग्रह आन्दालन क लिए चलते थे तो माग म जनता उत्सुकता वश उनके दशनो के लिए खडी खडी रहती थी ।[५]

गाँधीजी का सत्याग्रह आदोलन जन-आन्दालन था । सम्पूण देश राष्ट्रीयता के रग मे रगकर आदोलन उत्साह स भर गया था । माखनलाल चतुर्वेदी की 'बन्धन सुख', "निःशस्त्र सेनानी', "सत्याग्रही का बयान' आदि कविताएँ सत्याग्रहिया पर लिखी गया है । उन्ह बलि पशु की उपमा दा गई है और

---

१ त्रिशूल, राष्ट्रीय मत्र, पृ० ४ ।

२ सुमित्रानन्दन पन्त, पल्लविनी (तृ० स०) पृ० २५६ ।

३ सुभद्राकुमारी चौहान, मुकुल, प० ७० ।

४ वही, , प० ७९ ।

५ सियारामशरण गुप्त, बापू पृ० ११ ।

"अस्थिर किया टोपवालों को गांधी टोपी वाले ने
शस्त्र बिना संग्राम किया है इन माई के लालों ने ।
अपने निश्चय पर दृढ़ हैं मारो पीटो बन्द करो
अजब बाँकापन दिखलाया है इनकी सीधी चालों ने ।
यहाँ जमाई है अपनी जड़ पश्चिम के जिन पौधों ने
असहयोग के फल उपजाये उनकी ऊँची डालों ने ।"[1]

माधव शुक्ल ने असहयोग के सम्बन्ध में लिखा है कि भारत को स्वतन्त्र करने का शान्तिमय संग्राम छिड़ा हुआ है । इससे जो प्राणी भी दूर हटेगा वह नमक हराम कहलायेगा । विद्यार्थी वर्ग को पढ़ना तथा व्यापारियों को व्यापार छोड़ देना चाहिए ।[2] उन्होंने जाग्रत भारत की 'चरखा वेदान्त' कविता में चरखे को चारों वेदों तथा असहयोग को ब्रह्मा से उपमा दी है । जागृत भारत की 'असहयोगामृत' कविता में कवि ने असहयोग को एक रक्षक धर्म बताया है । त्रिशूल ने असहयोग की आग भड़काने के लिए बार बार भारतीयों की हीनावस्था तथा उनके उत्पीड़न की ओर ध्यान आकृष्ट किया है ।[3] माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्राकुमारी चौहान ने असहयोग का वर्णन अधिक भावात्मक शैली में और कलात्मकता के आग्रह के साथ किया है । पापी शासन से असहयोग कर, गांधीजी ने स्वेच्छया शासकों के दण्ड को स्वीकार किया था । सत्याग्रही के नाते उन्होंने अदालत में जो बयान दिया था उसका संक्षिप्त काव्य रूपान्तर चतुर्वेदी जी ने सत्याग्रही का बयान कविता में प्रस्तुत किया । माखनलाल जी ने लिखा है कि अत्याचारी शासन से प्रेम नहीं रखना चाहिए उससे उद्धार नहीं होगा । अत्याचारी का वध पशुता है परन्तु पापी शासन पर अप्रियता उपजाना श्रुति सम्मत है । अहिंसक असहयोग से देश आजाद हो जायगा ।[4]

इस युग में लिखे गये महाकाव्यों में भी प्रच्छन्न रूप में राजनीतिक संघर्ष की झलक मिल जाती है । जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' में शासक और शासित का द्वन्द्व दिखाया गया है । स्वेच्छाचारी शासक के विरुद्ध विप्लव की भावना प्रसाद के अपने युग की राजनीतिक दुर्दशा की देन है । गुरुभक्त सिंह की नूरजहाँ में शेर अफगान की निर्बल प्रजा पर अत्याचार अप्रत्यक्ष रूप से

१ मैथिलीशरण गुप्त–स्वदेश संगीत–पृ० १२८–१३१ ।
२ माधव शुक्ल–जागृत भारत–पृ० १२ ।
३ त्रिशूल–राष्ट्रीय मन्त्र, पृ० ४१ ।
४ माखनलाल चतुर्वेदी–हिमकिरीटिनी–पृ० ७० ।

उनकी पाशविकता का और अधिक क्या वर्णन किया जाय ?[1] इसीलिए माखनलाल चतुर्वेदी जी ने अंगरेज राज की भर्त्सना करते हुए कहा है कि—

काली तू रजनी भी काली
शासन की करनी भी काली ।[1]''

इन राष्ट्रीय आंदोलनों में कारावास का महत्त्वपूर्ण स्थान था, क्योंकि विदेशी शासकों ने राष्ट्रीय वीरों को कारावास का दण्ड देकर देश की राष्ट्रीय भावना कुचलने का साधन ढूँढ़ा था। वहाँ अनेक प्रकार के कष्ट दिए जाते थे। जिससे वे राष्ट्रीयता के सत्य मार्ग से विचलित हो जायें। विदेशी शासकों ने दमन की कोई भी योजना अछूती न छोड़ी लेकिन देशवासियों ने शान्ति पूर्वक गांधीजी द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर राष्ट्रीय भावना को अधिक प्रबल रूप प्रदान किया। गांधीजी की अहिंसात्मक नीति तथा सत्याग्रह आंदोलन ने कारा गृहों को मन्दिर बना लिया था जहाँ बंदिनी भारतीय जनता को अपने सत्य रूपी ... की प्राप्ति हो सकती थी। गांधीजी के प्रभाव से विदेशी शासन का कठिन से कठिन कारावास जनता के लिए पुण्यतीर्थ स्थल बन गया जेल जाना तीर्थ यात्रा हो गया। हिन्दी साहित्य में कवियों की वाणी में कष्ट सहन की इस अनोखी रीति तथा कारावास का अनेक रूपों में वर्णन मिलता है। कवि ने मौन रूप में जेलखाने की मार सहकर अनीति अन्याय और अधर्म से संघर्ष के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कारावास को रंगमहल का रूप दिया।[1] बच्चन ने कारागार को स्वतंत्रता का द्वार माना है। बालकृष्ण शर्मा नवीन ने जेलखाने का प्रभावशाली चित्रण किया है।[1] गोपालशरण सिंह को हथकड़ियाँ मातृ भूमि की सेवा की जयमाला सी विजय ... सी एवं स्वतंत्रता की फुलझड़ियाँ सी लगती हैं।[1] माखनलाल चतुर्वेदी जी ने ... और ... कविता में कारावास यातना का चित्रण किया है। उन्होंने व्यंग्यात्मक शैली में कारागार के जीवन ... की दशा का सजीव चित्र खींचा है—

क्या ?—देख न सकती जंजीरों का गहना ?
हथकड़ियाँ क्यों ? यह ब्रिटिश राज का गहना

---

1. सियारामशरण गुप्त—आत्मा सर्ग—पृ० ९१।
2. माखनलाल चतुर्वेदी—... और ...—हिमकिरीटिनी पृ० १४।
3. त्रिशूल—राष्ट्रीय मंत्र—पृ० ८।
4. बच्चन—बंगाल प्रारम्भिक रचनाएँ भाग १ पृ० ६।
 बालकृष्ण शर्मा—नवीन कुसुम—पृ० १०...।
5. गोपालशरण सिंह—...—पृ० ८७।

कोल्हू का घरक चूं ? जीवन की तान
मिटटी पर लिखें अगुलिया ने क्या गान ?
हूँ मोट खीचता लगा पेट पर जूआ
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड का कूआ ।[1]

रूपनारायण पाडेय न 'कारागार' कविता मे कारागार की यन्त्रणाओ तथा ब्रिटिश शासको के अत्याचार का उल्लेख किया है ।[2]

द्विवदी युग का काव्य राष्ट्रीय काग्रस का त्रिगुल था । "वदेही वनवास का वनगमन आनन्द उत्साह गौरव तथा सदभावनाएँ लिए हुआ है । यह तो काग्रेसी नताओ की जेलयात्रा का सा दृश्य उपस्थित करता है । सीता एक आधुनिक नेत्री की तरह जाती है ।[3]

मथिलीशरण गुप्त न ब्रिटिश अत्याचारा का वणन करके जेल जीवन के नरक समान जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है। रोटी मिटटी, ककड, घुन, अनाज एक साथ पीसकर बनाई हुई थी। प्राकृतिक नेह धम करने म कठिनाइयो का सामना करना पडता था—

इन पिडो म एक एक म सौ सौ बन्दी
ऊमस म भी बन्द रात म मरना होगा
जाड बिना मल मूत्र, इन्ही मे करना होगा
जिस जन का यह गह विधान वह वनचर अब भी ।[4]

गाँधीवाद म ग्राम सवा की महत्ता थी। भरवी की अधिकाश कविताओ म ग्रामो के सरल सीधे जीवन का वणन है।[5] सेवा धम गाँधीवाद की विशेषता थी। म० गाँधी के विचारो और आन्दोलना स प्रभावित समाज म सेवा भावना का उदय हुआ। उस समय क कविया न भी अपने काव्य द्वारा सेवाभाव जागत किया। रामनरेश त्रिपाठी न बडे आवशक एव प्रभावशाली ढग स समाज-सवा भावना का प्रचार किया। 'पथिक' का नायक अहिंसावादी समाज सवी क रूप म चित्रित किया गया। 'स्वप्न' और 'मिलन' म भी सवा भावना मुखरित हुई है। मैथिलीशरण गुप्त रामनरेश त्रिपाठी रामचरित उपाध्याय आदि की कविताओ म सेवा भावना को आश्रय मिला है। हरिऔध ने कृष्ण

---

१ माखनलाल चतुर्वेदी–हिमकिरीटिनी–पृ० १७ ।
२ रूपनारायण पाडेय–पराग–पृ० ५९ ।
३ डा० रामसकलराय शर्मा–द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य–पृ० ३५० ।
४ मथिलीशरण गुप्त–अजित (प्र० स०)–पृ० ११ ।
५ सोहनलाल द्विवेदी–भैरवी–पृ० १५ ।

को जाति सेवा एव देशोद्धार का ज्वलत प्रतीक माना है । प्रियप्रवास के कृष्ण भगवान न होकर लोकनायक बनकर लोक सेवा करते हैं ।[1] राधिका तो लोक सेविका के रूप म चित्रित की है । वह न॰ यशोदा, गोप गोपिका वृद्ध रुग्ण आदि की सेवा करती है ।[2] कवि ने स्वावलम्बन का प्रचार भी किया है । मथिलीशरण गुप्तजी ने सीताजी को चित्रकूट की रमणीय प्राकृतिक भूमि में लाकर उनके हाथो म चरखा और तकली के साथ खुरपी और कुदाल भी दे दी है, जिससे वे स्वावलम्बी बनें, और मूल मानवता से दूर चली न जाँय ।[3]

गोलमेज परिषद् का उल्लेख कवि ने किया है । सविनय-अवज्ञा आन्दोलन के मध्य मे गाँधीजी गोलमेज कान्फ्रेंस म सम्मिलित होने विलायत गए थे यद्यपि यह यात्रा व्यर्थ हुई थी । कवि बच्चन ने गाँधीजी के विलायत प्रस्थान पर भारत माता की विदा कविता म गाँधीजी की इस यात्रा का भावात्मक चित्रण किया है ।[4]

गाँधीजी तथा यतीन्द्रनाथ के उपवास का वर्णन कवियो ने किया है । सोहनलाल द्विवेदी ने प्रभाती की कविताएँ ऐतिहासिक उपवास' तथा 'व्रत समाप्ति गाँधीजी के उपवास तथा उनकी सफल समाप्ति पर लिखी हैं। गाँधीजी ने खिलाफत प्रश्न पर हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रयास किया था । खिलाफत आदोलन का समर्थन कर गाँधीजी ने उसम सम्मिलित होने को हिन्दुओ को आदेश दिया । त्रिशूल ने खिलाफत सम्बन्ध म लिखा है—

मनाते हो घर घर खिलाफत का मातम
अभी दिल म ताजा है पजाब का गम ।[5]

जुलाई १९२३ मे टर्की के स्वतन्त्र राष्ट्र बन जाने के कारण खिलाफत का प्रश्न समाप्त हुआ । गाँधीयुग म ही कौसिल प्रवेश का आदोलन चित्तरजन दास, मोतीलाल नेहरू आदि द्वारा प्रारम्भ हुआ । अर्थात गाँधी नीति के विरुद्ध यह आदोलन था । जागत भारत की इस कौसिल म मत जाना म कवि ने कौंसिल प्रवेश का निषेध किया है क्योकि इसम हम अन्न विलायत जाना नही रोक सकेंगे, टक्स नहा घटा सकेंगे डायर-से पापी को दण्ड नही दिलवा सकेंगे केवल कर चुकाने का अधिकार हमे प्राप्त होगा । खिलाफात की समस्या का

1. हरिऔध–प्रियप्रवास–पृ० १५० ।
2. हरिऔध–प्रियप्रवास–पृ० २६६ से २६९ ।
3. आ० नददुलारे वाजपेयी–आधुनिक साहित्य–पृ० ९७ ।
4. बच्चन–प्रारम्भिक रचनाएँ–दूसरा भाग–पृ० १५ ।
5. गयाप्रसाद शुक्ल त्रिशूल'–राष्ट्रीय मन्त्र–पृ० ३५ ।

हल नही कर सकेंगे ।[१] सन् १९२८ म मोतीलाल नहरू न जो 'नेहरू रिपोट' लिखी थी, उसम और उग्रारदल की समझौतावादी नीति स कवि असतुष्ट है।[२]

गांधी युग की युगातरकारी घटना १९४२ का भारत छोडो आन्दोलन है, जो अत्याचार और जुल्म क विरुद्ध प्रारम्भ हुआ था और जिसकी तुलना रूस की क्राति से अथवा फ्रेंच राज्यक्राति की 'वास्तिल विजय' स की जाती है। परतु इस आदोलन का कोई विशेष प्रभाव साहित्य पर नही है।[३] 'भारत छोडो' प्रस्ताव पास होन पर राष्ट्र के सारे अग्रणी नता जेल म बन्द थे। राष्ट्र दिशाहीन हो गया था। दिनकर न इस घटना का चित्रण इस प्रकार किया है—

> सुलगती नही यज्ञ की आग
> दिशा धूमिल यजमान अधीर
> पुरोधा-कवि कोई है यहाँ
> देश को दे ज्वाला के तीर
> धुआं म किसी वन्द का आज निमत्रण लाना है कोई ?[४]

साहित्यिक दृष्टि स १९४० स १९४७ ई० का समय भारत म महत्त्वपूण परिवतनो और भयानक अशान्ति का था। यद्यपि राजनीति म वधानिकता की प्रधानता हो गई थी फिर भी राजनीतिक क्षत्र की घटनाएँ ऐसी थीं, जिनसे जनता प्रभावित हुई। १९४२ ई० क्राति, इडियन नशनल आर्मी के उत्तेजक काय, मुसलमानो द्वारा पाकिस्तान की मांग, बगाल का अकाल, भयानक हिंदू मुस्लिम दगे और अन्त म स्वराज्य प्राप्ति य सभी घटनाएँ एसी थी, जिन्होंने जनता को प्रभावित किया था। फिर भी साहित्य म इन सभी परिस्थितियो क उल्लेख अपक्षाकृत बहुत कम मिलते हैं।[५]

गाधीहत्या के साथ ही गाधीयुग की समाप्ति हो जाती है।' गांधीजी के जीवन मरण को लकर हिंदी मे अनक कविताएँ लिखी गइ। प्रमुख कवियो म पत सियारामशरण गुप्त, नवीन दिनकर बच्चन नरेंद्र और सुमन आदि न व्यवस्थित रूप स रचनाएँ की हैं। उनके बलिदान स प्रेरित होकर भी प्राय

१ माधव शुक्ल—जागत भारत—पृ० ८१।
२ माखनलाल चतुर्वेदी—'मरण त्योहार' हिमकिरीटिनी—प० २८।
३ डा कीर्तिलता—भारतीय स्वातत्र्य आन्दोलन और हिन्दी साहित्य पृ० २४१।
४ दिनकर—सामधेनी—प० १२।
५ डा० कीर्तिलता—भारतीय स्वातत्र्य आन्दोलन और हिन्दी

इन्ही कवियो ने अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की।'' दिनकर ने गाँधी हत्या पर लिखा है कि बापू की हत्या हुई तो अब कुछ भी हो सकता है धरणी विदीर्ण हो सकती है अम्बर धीरज खो सकता है। गांधीजी की लाश मनुजता की लाश है। बापू हत्या से हम पर पर्वत सा महावज्र टूटा और हमारा सब तरह से ह्रास हुआ। हमारा सत्यानाश हुआ है हम रोते दास।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधीजी ने विश्व के सम्मुख पशुबल की अपेक्षा जिस सत्य तथा अहिंसा का सिद्धान्त रखा था राष्ट्रवाद का जो उच्च आदर्श प्रस्तुत किया था राष्ट्र स्वाधीनता के लिए असहयोग सत्याग्रह आदि जो आंदोलन सचालित किये थे उसका पूर्ण अनुमोदन हिन्दी काव्य में मिलता है।

संक्षेप में हिन्दी कविताओं में वर्तमान दुर्दशा के सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष का उद्घाटन जितना अधिक समय और विस्तार से हुआ है उतना राजनीतिक पक्ष का नहीं हुआ। कारण यह हो सकता है कि मनुष्य का हररोज आर्थिक और सामाजिक बातों से अधिक सम्बन्ध आता है। मनुष्य सामाजिक अत्याचार से अधिक भयभीत होता है कारण समाज के बिना वह जीवित नहीं रह सकता। आर्थिक क्षीणता से वह जीवन निर्वाह नहीं कर सकता। आर्थिक शोषण उद्योग धन्धों का ह्रास कला कौशल की हानि से उसे भी क्षति पहुँचती है। राजनीतिक अत्याचार एवं राजनीतिक गुलामी उसके दैनिक जीवन को प्रभावित नहीं करती। सामान्य मनुष्य राजनैतिक समस्याओं के प्रति उदासीन ही रहता है। अतएव कविताओं में राजनीतिक पक्ष की अपेक्षा सामाजिक और आर्थिक पक्ष को अधिक प्रधानता मिला। राजनीतिक पक्ष के सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय आंदोलन के उस युग में जब विदेशी शासकों का दमन चक्र कठोर रीति से चल रहा था, शासकों के विरुद्ध एक शब्द बोलना मृत्यु को निमंत्रण देना था, प्रेस एक्ट के कारण विचारों की अभिव्यक्ति करना कठिन था तब इन कवियों ने जिस निर्भयता एवं साहस से राजनीतिक दुर्दशा का चित्रण किया है वह प्रशसनीय है।

हिन्दी कवियों ने वर्तमान दुर्दशा का चित्रण यथार्थता एवं प्रभविष्णुता से किया है।

२ डा० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध—स्वतंत्रता के पश्चात हिन्दी साहित्य—पृ० ९०।

३ दिनकर—बापू—पृ० ६०।

उद्बोधन एव आवाहन

वतमान दुदशा के प्रनि मनस्वियो न, नेताओ न तथा साहित्यकारो ने जनता का ध्यान आकृष्ट किया। भारतीय जन समुदाय लीक पर चलकर, आधुनिक युग की ओर ध्यान न दकर रूढिप्रियता से गतिहीन बन गया था। उस प्राचीनवादिता का केंचुल फककर नवीन धारण करने के लिए आधुनिक राष्ट के सम्पक म जाना आवश्यक था। आधुनिक सस्कृति के प्रतोक इग्लड से सम्पक जात ही भारत म नये विचारा द्वारा नवे जागरण होन लगा। 'मानव समाज शास्त्र क नियम से जब तक प्रगतिशील शक्तिया किसी परतत्र दश को अभिभूत नही करती तब तक उसम उदवाधन और चतना का स्फुरण नहा हाता।'[1] भारत की उन्नति और प्रबुद्ध राष्टो के साथ स्पधा करने की प्रवत्ति की आधुनिक चतना का जन्म ईसा की उन्नीसवा शताब्दी म हो चुका था। इसा शताब्दी म भारतीय और यूरापीय सस्कृतिया तथा सभ्यताओ का सगम समागम हुआ था। बीसवी शताब्दी क जीवन और साहित्य म यही चेतना नवजागरण के रूप म प्रतिफलित हाती दिखाइ दती है। भारत क नव जागरण का श्रय यूरोपीय सस्कृति का है। अग्रेज भारत म अपन साथ डाक तार, रेल आदि वज्ञानिक सुधार समद्ध साहित्य परम्परा, नवशास्त्र नीति लेकर आए। देशवासी इन बाता स विस्मित हो गय। इस प्रारम्भिक युग म नव सस्कृति एव सभ्यता क समक्ष उन्होने अपनी सस्कृति और सभ्यता की हीनता का अनुभव किया। भारत पराधीन बन गया था इसी कारण केवल ईसाइ पादरी ही नही वरन् अग्रजी पढे लिख भारतीय भी भारत क धम और सस्कृति की निंदा कर रहे थे। ये लोग नवोत्थान क नेता नही प्रत्युक्त उसकी कुत्सा, आलोचना करन क कारण दड क पात्र थे। नवोत्थान नव शिक्षित हिंदुओ क नतृत्व म नहा उनके विरुद्ध आया था और उसका उद्देश्य उन लोगा का भारतीय वृत मे सुरक्षित रखना था जो नयी लहर म बहते हुए परिधि स बाहर जा रहे थ। भारतीय सस्कृति न यूरोप को अपन स सवता-भावन कभी श्रेष्ठ नहा माना न उसका पूणत अनुकरण किया।

---

१ डा० सुधीन्द्र हिन्दी कविता म युगान्तर, पृ० १।
२ दिनकर, सस्कृति क चार अध्याय, पृ० ५३८।

नवोत्थान द्वारा ही नवजागरण हुआ। इस नवजागरण की प्रक्रिया अतीत काल की वभवसपन्नता एव सस्कृति की स्मृतियो से प्रारम्भ हो गयी। भारतीय प्रनावतो को भारतीय सस्कृति के सामने पाश्चात्य की आधुनिक सस्कृति बहुत ही हीन दिखाई देने लगी। इसी कारण अतीत काल का चित्रण होने लगा। यह चित्रण देशभक्ति का सदेश दने के लिए उपस्थित किया गया।

इन कवियो की रचनाओ म आए व्यक्ति प्राचीन हिन्दू इतिहास एव परम्परा के रत्न और हिन्दू सस्कृति के प्रतीक है। इसी स य रचनाएँ हिन्दू भाव को सबसे पहले उदबुद्ध करती हैं। किन्तु इसी कारण हम इन कवियो को अनुदार और साप्रदायिक नही कह सकत। हिन्दू होने क कारण इन कवियो का हिन्दू–रत्नो की ओर सकेत अनिवार्य था। य केवल हिन्दुओ की उन्नति के ही अभिलाषी नही थ सम्पूर्ण भारत के उत्थान की चिंता म व्यग्र थे। इनका उदबोधन किसी विशेष समुदाय के प्रति नही था समग्र देशवासियो क प्रति था।[1] अतीत के द्वारा उदबोधन को हमने पिछले– अतीत का गौरवगान अध्याय म देखा है। इसे पुन दोहराना अना– वश्यक है।

इस अध्याय म हम निम्नलिखित बातो पर विस्तार क साथ विचार करगे—

(१) उद्बोधन एव आवाहन
(२) स्वर्णिम भविष्य
(३) क्रान्ति की भावना
(४) बलिदान की भावना
(५) अभियान गीत
(६) कीर्तिगाथा
(७) मानवता की भावना

उद्बोधन एव आवाहन को तीन रूपो म विभाजित कर हम देख सकते हैं—
(१) प्ररणा और भत्सना (२) जातीय एकता (३) दासता का बोध।

प्रेरणा और उदबोधन

उद्बोधन एव आवाहन क अन्तगत समाज को प्ररणा देन और समाज की कुरीतियो अथवा आपाननता की भत्सना करन की प्रवृत्ति का प्राधान्य रहा है। इसके अन्तगत भारतीयो का आलस्य तद्रा कर्तव्यहीनता निरुपमता अज्ञान पराक्रम हीनता, कायरता आदि का निन्दा और आशावाद स्वत्व स्वाभिमान का प्रसार तथा समाज विद्यार्थियो नारियो युवको को उत्साहित कर

[1] डा० केसरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा पृ० ३६।

राष्ट्रोन्नति के लिए प्रेरित करना आदि बातें आ जाती हैं। अजगर के सम सुप्त पड़े हुए भारत पुरुष को जगाने का यह प्रयास है। यूरोप की संस्कृति एवं सभ्यता के संपर्क में आते ही देशवासियों को अपने दोषों का ज्ञान होने लगा। अतिभौतिकता की टकराहट में भारत की ऊँघती हुई बूढ़ी सभ्यता की नींद खुल गयी और वह इस भाव से घर के सामानों पर नजर दौड़ाने लगी कि जो चीजें लेकर यूरोप भारत आया है वे हमारे घर में हैं या नहीं। भारतीय सभ्यता का यही जागरण भारत का नवोत्थान था। प्रेरणा और भावना प्रवृत्ति के प्रचार के मूल स्रोत आध्यात्मिक क्षेत्र में विवेकानन्द सामाजिक क्षेत्र में राजाराम मोहन राय दयानन्द स्वामी एवं बुद्धिवादी आगरकर, राजनीति में लो० तिलक और म० गांधी थे।

विवेकानन्द के उपदेशों से हमें यह ज्ञान हुआ कि हमारी प्राचीन संस्कृति प्राणपूर्ण एवं आज भी विश्व का कल्याण करनेवाली है। अंग्रेजी पढ़े लिखे हिंदू जो अपने धर्म और संस्कृति की खिल्ली उड़ाने में ही अपनी सार्थकता समझते थे विवेकानन्द के उपदेशों और कर्तव्य में अनिमगार पाराजित हुए। यह भी हुआ कि विवेकानन्द के उपदेशों में ही भारतवासी अपने पतन की गहराई माप सके अपने शारीरिक क्षय एवं आधिभौतिक विनाश अपनी क्रिया विमुखता और आलस्य अपने पौरुष के भयानक ह्रास को पहचान सके। दयानन्द स्वामी ने इसाई एवं इस्लाम धर्म के दावों का पर्दाफाश करके वैदिक धर्म की महत्ता प्रतिष्ठित की। इससे देशवासियों का अपने धर्म के प्रति हीनता का भाव हट गया और प्रेम और अभिमान का भाव उसके स्थान पर जगा। आगरकर जी ने जीर्णशीर्ण कुप्रथाओं पर प्रबल प्रहार किए और बुद्धिगत बातों को अपनाने का प्रचार किया। तिलकजी ने 'गीता रहस्य' द्वारा कर्म और अपने जीवन कर्तव्य द्वारा निर्भयता का संदेश दिया। म० गांधी ने ब्रिटिशों के साथ संघर्ष की प्रेरणा दी। रवीन्द्रनाथ ने भी भारतीयों को उपदेश दिया था कि हम क्षुद्र जन्तु नहीं हैं वरन हमारा भी एक प्रकार का व्यक्तित्व है। इन उपदेशों के कारण समाज स्वस्थ, स्वाभिमान और सामर्थ्य की भावना का उदय हुआ।

हिंदी कवि नवजागरण से प्रभावित हुए। उन्होंने उद्बोधन के गीत गाकर समाज जागरण का यत्न किया। हिन्दी में द्विवेदी युग का उदबोधन युग ही कहा जाता है। मैथिलीशरण गुप्त रामनरेश त्रिपाठी श्रीधर पाठक, प्रेमघन सनेही त्रिशूल आदि द्विवेदी युग के कवियों ने उद्बोधन गीतों द्वारा समाज में जागरण स्फूर्ति तथा आशा का संचार करने का सफल प्रयास किया। दिनकर नवीन निराला माखनलाल चतुर्वेदी आदि **द्विवेदी**

अपनी एक कविता में कवि आराम, सुन्दर स्त्री, शराब, पुराना धाम और नाम छोड़कर निर्भयता से अग्नि की ओर बढ़ने का आह्वान देता है।[1] निराला की वाणी में अनोखा प्रभाव रहा है। शब्दों में शक्ति और शासन का अपूर्व संचार करने की शक्ति निराला की लेखनी में है।

राष्ट्रीय जागरण के विभिन्न स्वरों को बजानेवाले कवियों में दिनकर की वाणी का स्वर एक प्रमुख स्वर था। 'उन्होंने भारतीयों के प्राणों में उस समय नव जागरण का मंत्र फूँका, जब वह युद्ध के प्रभाव से विजड़ित और पराधीनता की बेड़ी से आक्रान्त था।'[2] म्रियमाण जाति में प्राण फूँककर उसको आलोड़ित कर जागरण गान गानेवाले विभापुत्र दिनकर हैं।

धनगर्जन, तिमिराच्छन्न निमिष, गगन तड़ित पात हो जाय तो भी युवकों को सिर उठाकर चलना चाहिए। फूँक फूँक कर काँटों से चलकर शुरू कर अथवा पथ में छाले पड़ें, इसलिए जवानी कभी रुकती नहीं। गति की तपन रखनेवाली जवानी समय से होड़ लगाकर आगे बढ़ती है। उस जवानी को सम्बोधित करके उस जययात्रा के लिए उत्तेजित करते हुए दिनकर कहते हैं—

जागरण की जय निश्चित हार चुके सोनेवाले
बकरी का गर्मी पीता उँगता घर गड़ा अजगर सा भरा जमाना
ज्वाला मुखियों पर अभय बैठे अपना मंत्र जगाते हैं।
मिट्टी का यह पुतला खींच इन्हें सुरपुर का बर्बाद करे
लूट जन्नत वीराना को आबाद करे।[3]

पाश्चात्य राष्ट्रों में पददलित लोगों का उत्थान हो रहा है और पौर्वात्य में यह ज्वाला प्रसरित होनेवाली है, उसका स्वागत करने के लिए जवानी का झंडा उड़ा कर नौजवानों को खड़ा हो जाने के लिए कवि उपदेश देता है। अन्याय, अपहरण और शोषण के विरुद्ध शस्त्रग्रहण करना पाप नहीं है। शौर्य की शिराएँ प्रतिशोध से दीप्त होती हैं।[5]

दिनकर की कुरुक्षेत्र रचना तेजस्विता, वीरता और निर्भयता का संदेश देती है। माखनलाल चतुर्वेदी, नौजवानों के खौलते हुए रक्त में पृथ्वी आकाश एक करने की प्रचंड शक्ति होती है, सारी दुनियाँ में भूडोल करने की सामर्थ्य

---

१ निराला—बेला—पृ० ७३।
२ डा० सत्यदेव चौधरी—प्रतिनिधि कवि (सन् १९५८) पृ० १९२।
३ दिनकर—'अनल किरीट हुंकार—पृ० २७–२८।
४ दिनकर—जवानी का झंडा'—सामधेनी—पृ० ७९।
५ दिनकर—कुरुक्षेत्र—पृ० ३१।

होती है पर विश्वास करते हैं। उनके भावोदगार मे आत्मविश्वास, ज्वाला मुखी विस्फोट की भीषण शक्ति और आतुरता है। कवि नवयुवकों को ही चेतावनी नही देना वरन अवलाओ को भी रणवेश धारण कर वीर दुगा काली वनने का उपदेश देना है—

चूडिया बहुत हुई कलाइयो पर प्यारे भुजदण्ड सजा लो
तीर कमानो से सिंगार दो जरा जिरह बखतर पहना दो
जीमें सोय स सुहाग । जग उठो, पुतलिया पर आ जाओ।
बिना तीसरे नेत्र दष्टि म अजी प्रलय ज्वाला सुलगा दो।[1]

इसके अतिरिक्त हिमकिरीटिनी के अनेक गातो म चतुर्वेदी जी न जागरण का सदेश दिया है।[2]

भारतीयो का कीचड क कीडा के समान व्यथ जीवन देखकर कवि बच्चन अपनी आवशमय वाणी म देशवासियो को आत्मसम्मान आत्म अवलम्ब और आत्मविश्वास का अगीकार करने का उपदेश देते हैं।[3]

जीवन स उदासीन बनने से कोई लाभ नही होना। जीवन का सत्य केवल तप नही है। प्रकृति परिवतनशील है। प्रकृति के यौवन का शृगार वासी फूल नही कर सकते। पुरातनता का निर्मोक प्रकृति पलभर भी सहन नही कर सकती।[4] इसीलिए रामचरित उपाध्याय को बुरे दिनो के बाद अच्छे दिन आने का विश्वास है। निम्नलिखित पक्तियो म कवि की आशा उमड पडी है—

ज्योही हुई पतझड त्योही पत्तिया उगन लगी।
जग म जहाँ आइ शारद सब मघ मालाएँ भगी।
जो गिर गया है वह उठेगा शीघ्र ही या देर म।
तू कम का है मानने वाला पडा किस फेर म।
हो जायगा फिर भी समुन्नत सोच कुछ करना नही।
वर वीर भारत स्वप्न में भी विघ्न से डरना नही।[5]

प्रेमघन त्रिशूल, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, रामनरेश त्रिपाठी आदि न भारतीयो को नीद स जागकर बर, फूट, दीनता अन्याय दुख को हटाकर सुमति कला, विद्या, बल स्वप्न उद्यमशीलता, देशभक्ति का अगीकार करके आगे बढने का

---

१ माखनलाल चतुर्वेदी–सिपाहिनी–हिमकिरीटिनी–पृ० १६०।
२ माखनलाल चतुर्वेदी–जवानी सिपाही विद्रोह।
३ बच्चन–बगाल का काल–पृ० ८३–८४।
४ प्रसाद–कामायनी–पृ० ६५।
५ 'आश्वासन' सरस्वती–खड १७ सख्या ५ सन् १९१६।

सदुपदेश दिया है। प्रेमघन संगीत काव्य के अंतर्गत एक गीत में भारतीयों को जागृति का सदेश देते हुए कहते हैं कि मूढ़ता की नींद छोड़कर आलस्य को दूर बहाओ अपना स्वत्व पहचानो। साहस और उद्योग करो। मिथ्या डर छोड़ दो क्लीव और कुमति मत कहलाओ। भारतमाता के हृदय में उन्नति की आशा बँधाओ।[1]

राष्ट्रोन्नति के लिए विद्यार्थी मजदूर और कृषकों को जागरित होकर सगठित होने के लिए कवि कहते हैं। आँसू बहाने से कुछ नही होता। भारत की उन्नति के लिए कवि सभी प्रकार के लोगो को जगाने का यत्न कर रहे हैं। कवियो का विश्वास है कि केवल देशवासी ही देश का उद्धार कर सकते हैं। फलत वे जागृति और सगठन का सदेश सुना रहे है। इन कवियो को छात्रो से सबसे अधिक आशा है। कवि विद्यार्थियो को मातृभूमि की उन्नति के लिए आमन्त्रित करते हैं। श्रीधर पाठक विद्यार्थियो से सत्सेवा का व्रत धारण करने को कहते है।[2]

भगवतीचरण वर्मा हिन्दू-की भर्त्सना करते हुए लिखते हैं कि यह ससार आत्मबल और भुजबल से जीवित है। प्रबल परिस्थिति चक्र से लड़ना ही इष्ट है। सकल विश्व बल छलनीति से युक्त है। रिपु दल से रक्षा केवल साहस ही कर सकता है। सबल लुटेरा से भिक्षा की चाह नही की जाती। यह तुम्हारा घोर पतन सारा अस्तित्व ही मिटा देगा।[3] अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए देश गौरव और मान के लिए प्राण उत्सर्ग करना यही एक उपाय है।

जातीय एकता

उदबोधन में कवियो ने फूट का निषेध और एकता का समर्थन किया है। भारत में अनेक धर्म पंथ और जाति के लोग निवास करते हैं, उनके ऐक्य के बिना राष्ट्रोन्नति असभव है। धर्म की एकता भी अपना विशेष स्थान राष्ट्रीय एकता में रखती है। धर्म की एकता ने राष्ट्रीय एकता के निर्माण में सहयोग दिया है, इतिहास इसका साक्षी है। भारत के सम्बन्ध में यह निर्विवाद है कि प्राचीनकाल में आर्यों का एक वैदिक धर्म था।[4] यह भी पाया जाता है कि प्राचीन आर्य अथवा हिन्दू जाति में सहिष्णुता तथा समन्वय की भावना थी

---

१ प्रेमघन-प्रेमघन सर्वस्व-प्रथम भाग-पृ० ४८० ।
२ श्रीधर पाठक- विनोद जन्मभूमि-पृ० ३९ ।
३ भगवतीचरण वर्मा-हिन्दू-मधुकण-पृ० ५४-५५ ।
४ जवाहरलाल नेहरू-विश्व इतिहास की झलक (संक्षिप्त १९५७) पृ० १५।

और उन्होंने धम के विषय म सदा उदारता से काम लिया है। श्रीकृष्ण का भक्ति कम तथा ज्ञान के समन्वय पर प्रकाश डालना तथा पुराणकारा का त्रिमूर्ति की कल्पना कर ब्रह्मा विष्णु महेश तीना देवो का एकीकरण करना प्राचीन हिन्दू जाति के समन्वयवादी दष्टिकोण का ही परिचायक है। बौद्ध जन इत्यादि धम जो अपने को अनीश्वरवादी घोषित करते थे वे भी समय पाकर हिन्दू धम क अग बन गए। यहाँ तक कि महात्मा बुद्ध की गणना हिन्दुओ के दशावतारा म की जाने लगा। नहरू जी इस सम्बन्ध म लिखते हैं '—आय धम क भीतर वे सभी मत आ जात है जिनका आरम्भ हिन्दुस्तान म हुआ वे मत चाहे वदिक हा चाहे अवदिक। इनका व्यवहार बौद्धो और जना ने भी किया है और उन लोगो ने भी जा वदा को मानते हैं बुद्ध अपने बनाए मोक्ष के माग को हमशा आय माग कहत थ।[१]'

इस प्रकार बहुत प्राचीन काल से ही भारतवष म एक व्यापक धम की स्थापना हुई जो सवमान्य तथा सवग्राही होने क कारण आज तक असीम तथा विशाल रूप रखता चला आ रहा है। फिर यह भी सिद्ध ही है कि यह कभी किसी क प्रति अनुदार नही हुआ वरन अन्य धम विश्वासा तक को आत्मसात कर अपन स्वरूप का विकास करता रहा है। इसने कभी किसी धम का विरोध नही किया है। इसके विपरीत योरोपियन इतिहास पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होगा कि एक धम के माननेवाला न दूसरे पर क्या क्या अत्याचार नही किए ? धार्मिक विभेद क कारण ईसा को सूलीपर लटकाया गया, सुकरात को विष का प्याला पीना पडा। धम क नाम पर यूनान फ्रास, इग्लड इत्यादि बड-बडे देशा म खून की होली होती रही। परन्तु भारतवष म धम के नाम पर कभी कोई विवाद नही हुआ सभी धम यहा अपन-अपन स्थान पर आदर णीय समझे जाते रहे है। जन, बौद्ध पारसी यहूदी सिक्ख ईसाई इत्यादि भिन्न भिन्न धर्मों का पालन करत हुए स्वतंत्र धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं। 'भारतीय जनता की एकता के असली आधार भारतीय दशन और साहित्य हैं जो अनेक भाषाओ म लिखे जाने पर भा, अन्त म जाकर एक ही साबित होते हैं। सभी भारतीयों के बीच एक सास्कृतिक एकता भी है।[२]'

किन्तु मध्ययुग म मुस्लिमो न इस देश पर आक्रमण कर यहा के व राजा बन गये। व हिन्दू धम म समाविष्ट न होकर अपन आचार विचार आदि से

१ जवाहरलाल नहरू—हिन्दुस्तान की कहानी (द्वि० स०) प० ९७।
२ दिनकर—रेती के फूल—पृ० ३६–३८।

तभी साथक हो सकता था जब देश म बसनेवाले सभी लोग जाति अथवा वग की तुच्छ साम्प्रदायिक भेद भावना को विस्मत कर राष्टीय एकता के बधन स आवद्ध हो जायें। इस एकसूत्रता जातीय एकता का महत्व पहचान कर एकता का आदेश इस युग के कवियो ने दिया है। साहित्यकारो न एकता उत्पन्न करन के लिए कभी हिंदू मुस्लिम दगो या वमनस्य का चित्र खीचा है और कभी दोना जातियो के निश्चल प्रेम का। गाँवो क चित्रण मे लेखको ने अधिकतर यह दिखाया है कि वहा सभी जातियाँ प्रमपूवक रहती है। यह चित्रण केवल काल्पनिक नही है इसमे यथाथ का अश ही अधिक है। शहरो मे जातिगत वमनस्य जितना था उतना गाँवो म नही था।

प्रतापनारायण मिश्र,[1] माधव शुक्ल[2] बालमुकुन्द गुप्त[3] हरिऔध[4] प्रेमघन[5] रामनरेश त्रिपाठी[6] ने एकता का प्रचार किया है। रूपनारायण पाडेय समस्त जातियो को आपस म भ्रात भाव रखने के लिए कहते हैं। वे चाहते हैं कि विभिन्न जातियाँ भारत को अपनी मात भूमि मानें। पाडेय जी भारतीयता की भावना से ओतप्रोत दिखाई दते है। कवि लिखता है—

> जन बौद्ध पारसी यहूदी मुसलमान सिख इसाई
> काटि कठ से मिलकर कह दो हम सब है भाई भाई॥
> पुण्य भूमि है स्वगभूमि है जन्म भूमि है देश वही।
> इससे बढकर या ऐसी ही दुनिया म है जगह नही॥

जातियो की एकता के समान सब प्रान्त निवासियो की एकता पर भी कवि बल दते है। वस्तुत सभी प्रान्त निवासी तो एक भारत रूप शरीर के ही भिन्न भिन्न अग है। जातीय एकता की मनोरम कल्पना रायदेवी प्रसाद पूर्ण अपनी शब्दावली म व्यजित करते हैं—

> भारत-तनु म है विविध प्रान्त निवासी अग
> पजाबी सिंधी सुजन महाराष्ट तलग।
> महाराष्ट्र तलग बग देशीय बिहारी

---

१ प्रतापनारायण मिश्र—लोकोक्तिशतक—प्रताप लहरी—प० ६३—७०।
२ माधव शुक्ल—भारत गीताजलि—१७ पालू २४ पद।
३ बालमुकुन्द गुप्त—बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली—प्रथम भाग प० ७११।
४ हरिऔध—जीवनस्रोत भारत पद्मप्रसून—प० ६२—६४।
५ प्रेमघन—प्रेमघन सवस्व—प० ६३२।
६ रामनरेश त्रिपाठी—मिलन—प० ६९।
७ रूपनारायण पाडेय—मातृमूर्ति' सरस्वती खड १४, सख्या ६, सन

हिंदुस्तानी मध्य हिन्द जन पूर्व बरारी ।
गुजराती उत्कली, आदि दशी सबा रत
सभी लोग हैं अंग बना है जिनसे भारत ।[1]

राष्ट्रीयता के सद्धान्तिक तत्त्वो म जातीय एकता क महत्त्व स कवि अन भिज्ञ नहीं हैं । कवि हिन्दू मुस्लिम एकता को खण्डित करन वाले को देशद्रोही कहकर पुकारता है । कवि फूट का निषेध करता है ।[2] फूट मे कौरवो का नाश हुआ, लकापुरी ध्वस्त हो गई और जयचद क कारण आज तक गुलाम रहना पडा । इसीलिए वर त्यागकर भ्रातृ भाव को ग्रहण करने को भारतेंदु कहते हैं ।[3] हिन्दू ईसाई एकता तथा हिन्दू-मुस्लिम भाइयो को प्रीति का सदेश देकर फूट का लाभ अन्य कोई न उठाए इसलिए सतक रहन क लिए मथिलीशरण गुप्त कहते हैं ।[4] मथिलीशरण गुप्त न भारत भारती तथा गुरुकुल म भी एकता का सदेश दिया है ।[6] कवि पत न भी एकता का प्रबल समथन स्वण धूलि म किया है । नरेन्द्र शर्मा हिन्दू मुस्लिम भाइयो को देश की भलाई के लिए एक हो जाने का आग्रह करते हैं । वे नाना जातियो को सकीण भेद भावो को विनष्ट करन का आदेश देते है ।[8] रागेयराघव अनुभव करते हैं कि जबतक दोनो जातियो का मिलाप नहीं होता तब तक परतत्रता की लौह शृखलाएँ नहीं टूटगी । वे बापू तथा जिन्ना के नाम पर दोनो जातियो से सगठित होने की अपील करते है ।[9] कवि का विश्वास है कि यदि दोनो जातियाँ हृदय स एक होकर दश की स्वतत्रता का प्रण लें तो फिर स्वतत्रता देवी के दशन दुलभ नहीं हैं ।[10]

एकता क प्रयत्नो क बावजूद भी दोनो जातियो म वर वह्नि सुलगती रही और वह साम्प्रदायिक दगो के रूप म प्रस्फुटित हुई । कानपुर क साम्प्रदायिक

---

१ राय देवीप्रसाद पूण स्वदेशी कुण्डल पूण सग्रह—पृ० २१२ ।
२ माधव शुक्ल—जागत भारत—पृ० ५ ।
३ भारतेन्दु—भारतेन्दु ग्रथावली भाग २ पृ० ७३७ ।
४ मथिलीशरण गुप्त—हिन्दू—पृ० २०२ ।
५ वही, पृ० २०१ ।
६ मथिलीशरण गुप्त—भारत भारती पृ० १०७ १६३ गुरुकुल—पृ० १५० ।
७ सुमित्रानन्दन पत—स्वणधूलि—मनुष्यत्व—पृ० ३१ ।
८ नरेन्द्र शर्मा—हसमाला—पृ० १८ ।
९ रागेय राघव—पिघलत पत्थर (१९४६) पृ० ५५ ।
१० राष्ट्रीय वीणा—दूसरा भाग—पृ० ९ ।

दंगा म नरूर विद्यार्थी नहीं हुए। उनके बलिदान का सजीव वर्णन करते हुए सियारामशरण गुप्त ने अंत म दोनों जातियों को एक डाल के फल कहकर एकता की इच्छा प्रकट की है।[1]

हिन्दू मुस्लिम एकता पर १९३८ म कांग्रेस और मुस्लिम लीग की समझौता वार्ता असफल होने पर भारत म साम्प्रदायिक दंगों की एक प्रबंड लहर व्याप्त हो गई। सगठित और असगठित रूप म हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे का खून पान को हिंस्र पशु बन गए। पराधीनता की हथकड़ियों और बेड़ियों म जकड़ी हुई कौम की तकदीर के बँटवारे पर दिनकर का मन क्रोध और लज्जा से भर उठा—

> यूँ बहाया जा रहा इसान का, सीगवाले जानवर के प्यार में
> कौम की तकदीर फोड़ी जा रही, मस्जिदों की ईट की दीवार म।[2]

दिनकर ने नोआखाली और बिहार दंगों के समय हे मेरे स्वदेश कविता लिखा। जब एक ओर कुटिल राजनीतिज्ञ मजहब और ईमान की रक्षा के नाम पर हिन्दू जनता का सिर कटवा रहे थ और दूसरी ओर से प्रतिशोध की भावना म उतने ही भयानक कांड किए जा रहे थे—दिनकर के पास इस स्थिति के चित्रण के लिए लज्जा ग्लानि और विवशता के अतिरिक्त कुछ नहीं था। कूटनीतिज्ञ भेड़ियों की महत्वाकांक्षा का मूल्य इसान की जिन्दगी म चुकाया जा रहा था। धर्मान्धता जन्य विकट पागलपन के कारण भारत के स्वप्नों के पख जलने लगे। आतरिक सघर्षों और वमनस्य के कलक मे देश का मस्तक नीचा हो गया। इन खाव म मिटते हुए आदर्शों की रक्षा के लिए दिनकर न विवश आक्रोश किया——

> जलते है हिन्दू मुसलमान
> भारत की आँखें जलता हैं
> आनेवाली आजादी की
> लो दोनों पाँखे जलती हैं।
> ये छुरे नहीं चलते छिदती जाती स्वदेश की छाती
> लाठी खाकर भारतमाता बेहोश हुई जाती है।[3]

नोआखाली के दानवी अत्याचारों का चित्रण कवि ने 'बापू' म किया है।[4]

---

१ सियारामशरण गुप्त—आत्मोत्सर्ग—पृ० ७० ।

२ दिनकर—'तकदीर का बँटवारा'—हुकार—पृ० ७१ ।

३ दिनकर—हे मेरे स्वदेश—सामधेनी—पृ० ३५–३६ ।

४ दिनकर—बापू—पृ० २० ।

देश के साम्प्रदायिक संघर्ष वैमनस्य और दंगों को देखकर आरसी प्रसाद सिंह दुःख प्रकट करते हैं।

मुसलमान कवियों ने भी एक भारतीय जाति की स्थापना करते हुए जातीय एकता का प्रचार किया। वास्तव में हिंदू तथा मुसलमान में विभेद है भी क्या ? दोनों एक ही देश का अन्न जल ग्रहण करते हैं एक ही देश में निवास करते हैं तो फिर वे एक क्यों न हों ? मुहम्मद 'नूह' नारवी दोनों की अभिन्नता पर सुंदर भाव प्रकट करते हैं।[1] हिंदू मुस्लिम दोनों जातियों की एकता के विषय में अबुल असर हफीज जालंधरी ने लिखा है—

'ऐ दोस्तो मिटा दो आपस की यह लड़ाई
हिंदुस्तान वाले सारे हैं भाई भाई
तफरीक इस तरह की किसने तुम्हें सिखाई ?
आपस में मेल रखो दिल की करो सफाई।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की उन्नति के लिए कवि सभी जातियों सम्प्रदायों पंथों, धर्मों भाषाओं और प्रांतों में सच्चा मेल चाहते हैं। इसी कारण एक ओर वे एकता का प्रचार करते हैं तो दूसरी ओर फूट बैर मत्सर द्वेष और कलह का निषेध करते हैं। भारतीय एकता को खण्डित करनेवाली सबसे बड़ी समस्या है—हिंदू मुस्लिम बैर। धर्म के नामपर हिंदू मुस्लिम का जितना लहू बहाया गया है शायद ही इतना अन्य संघर्षों में बहाया गया हो। यह देखकर कवियों को असीम दुःख हुआ और उन्होंने विशेष आग्रह पूर्वक हिंदू मुस्लिम को राम रहीम तथा भारत माता की दो आँखें कहकर एकता का प्रचार किया। इस एकता में बाधा पहुँचानेवाले का भी उन्होंने यथार्थ चित्रण कर एकता की आवश्यकता का प्रबलता से प्रतिपादन किया है। आज पंथ जाति धर्म तथा प्रांत की एकता खंडित होती जा रही है। भाषा के नाम पर भी दंगा होता है। इस विघटन के समय हिंदी कवियों ने स्वातंत्र्य पूर्वकाल में दिया हुआ जातीय एकता का संदेश अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस एकता को अंगीकार किये बिना राष्ट्रोन्नति असंभव है।

दासता का बोध

कवियों ने जातीय एकता के प्रचार के साथ दासता बोध भी देशवासियों को कराया। राष्ट्र का सर्वतोमुखी पतन पराधीनता से होता है। पराधीनता की निशा राष्ट्र को घनतिमिर में आच्छादित कर देती है। देश की हर प्रकार की

---

१ वतन के गीत—पृ० ६७।
२ वतन के गीत—पृ० १५०।

अवनति का मुरय कारण परतत्रता है । दुरवस्था की मूल भित्ति पराधीनता है । पराधीनता म जो अपमान, तिरस्कार, ग्लानि और लज्जा है उसके क्लेश का अनुभव पराधीन जाति ही कर सकती है । पराधीनता के समान दु ख नही है । परतत्रता वस्तुत विषैली मक्खियो का विषपूण छत्ता है । इसके विपरीत "राजनीतिक स्वाधीनता सस्कृति का कवच है।" व्यक्ति, परिवार और मनुष्य जाति की हरक प्रकार की उन्नति का मुख्य साधन स्वातन्त्र्य है। स्वाधीनता का परम विकास ही परमात्मा है और स्वातत्र्य का सम्पूण अस्त ही पराधीनता है । गुलामी का रास्ता सीधा नरक म पहुँचता है और स्वग-माग पर अग्रसर होना हो तो दासता की शृखलाएँ तोडनी पडती है।[२]' सन १८५७ ई० के विद्रोह के पश्चात स्वराज्य और स्वाधीनता के एक प्रवक्ता स्वामी दयानन्दजी ने काग्रेस स्थापना के दस वष पूव कहा था कि स्वदेशी राज्य सर्वोपरि है और विदेशी राज्य पूण सुखदायक नही है ।[३]

भारतवासियो की स्थिति पराधीन सपनहु सुख नाही के समान थी। अत देशभक्ति का तात्कालिक लक्ष्य विदेशी शासन से मुक्ति रहा । देशभक्ति का सबस प्रबल विस्फोट पराधीनता और दमन क विरुद्ध सघष म ही मिलता है । भारत हमारा देश है वह हमारी जन्मभूमि है उस पर हमारा स्वत्व है । हमारी जन्मभूमि पर विदेशी आकर शासन करे अपन घर म हम ही बन्दी रहें यह घोर लज्जा की बात है इस लौह शृखलाओ को प्राणो की बलि देकर छिन्न भिन्न करना होगा यह देशभक्तो की भावना रही । परन्तु देशवासियो म जब तक अपनी दासता की अनुभूति न हो राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहन प्राप्त होना कठिन था । इस तथ्य को जानकर इस युग के कलाकार देशभक्ति स प्रेरित होकर पराधीनता पर विक्षोभ प्रकट करत है और जनता की भावनाओ को उद्वेलित करके उन्हे स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिए निरन्तर सघष करन के लिए प्रेरणा देते हैं । इन कवियो ने परतन्त्रता का दु ख स्वाधीनता का सुख और स्वातन्त्र्य प्राप्ति की कामना तथा उसके लिए सघष भावो को प्रकट किया है ।

त्रिशूल ने स्वातन्त्र्य को एकता तथा राज्य के समान देश का एक महत्त्वपूण अग कहकर स्वातन्त्र्य के अभाव मे राष्ट्र का जीवन म्रियमाण माना है ।[४] तो रामचरित उपाध्याय ने परतन्त्रता को वैतरिणी सम दु खदायक समझा

१ द० के० केबकर–सस्कृति–सगम, पृ० ३१६ ।

२ वि० दा० सावरकर–१८५७ भारतीय स्वातन्त्र्य समर–पृ० ५३ ।

३ स्वामी दयानन्द–सत्याथ प्रकाश–आठवाँ समु०–पृ० १४५ ।

४ गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' त्रिशूल तरग–पृ० २६ ।

देश के साम्प्रदायिक सघर्ष, वमनस्य और दगो को देखकर भारती प्रसाद सिंह दुख प्रकट करते है।

मुसलमान कवियो ने भी एक भारतीय जाति की स्थापना करते हुए जातीय एकता का प्रचार किया। वास्तव म हिंदू तथा मुसलमान म विभेद है भी क्या ? दोनो एक ही देश का अन्न जल ग्रहण करते हैं एक ही देश म निवास करते है तो फिर वे एक क्या न हो ? मुहम्मद नूह नारवी दोनो की अभिन्नता पर सुदर भाव प्रकट करते है।[1] हिंदू मुस्लिम दोनो जातियो की एकता के विषय म अबुल असर हफीज जालधारी ने लिखा है—

ऐ दोस्तो मिटा दो आपस की यह लडाई
हिंदुस्तान वाले सारे हैं भाई भाई
तफरीक इस तरह की किसने तुम्हे सिखाई ?
आपस म मेल रखो दिल की करो सफाई।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की उन्नति के लिए कवि सभी जातियो सम्प्रदायो, पथो, धर्मो भाषाओ और प्रान्तो म सच्चा मेल चाहते हैं। इसी कारण एक ओर वे एकता का प्रचार करते है तो दूसरी ओर फूट, वर मत्सर द्वेष और कलह का निषेध करते है। भारतीय एकता को खण्डित करनेवाली सबसे बडी समस्या है—हिंदू मुस्लिम बर। धर्म के नामपर हिंदू मुस्लिम का जितना लहू बहाया गया है शायद ही इतना अन्य सघर्षो म बहाया गया हो। यह देखकर कवियो को असीम दुख हुआ और उन्होने विशेष आग्रह पूर्वक हिंदू मुस्लिम को राम रहीम तथा भारत माता की दो आँखें कहकर एकता का प्रचार किया। इस एकता म बाधा पहुचानेवाल का भी उन्होंने यथार्थ चित्रण कर एकता की आवश्यकता का प्रबलता स प्रतिपादन किया है। आज पथ जाति धर्म तथा प्रात की एकता खडित होती जा रही है। भाषा के नाम पर भी दगा होता है। ऐसे विघटन के समय हिन्दी कवियो न स्वातन्त्र्य पूर्वकाल म दिया हुआ जातीय एकता का सदेश अत्यत महत्त्वपूर्ण है। इस एकता को अगीकार किये बिना राष्ट्रोन्नति असभव है।

दासता का बोध

कवियो न जातीय एकता के प्रचार के साथ दासता बोध भी देशवासियो को कराया। राष्ट्र का सर्वतोमुखी पतन पराधीनता स होता है। पराधीनता की निशा राष्ट्र को घनतिमिर स आच्छादित कर देती है। देश की हर प्रकार की

---

१ वतन के गीत–पृ० ६७।
२ वतन के गीत–पृ० १५०।

है।[1] महावीर प्रसाद ने 'सुमन' में स्वतंत्रता को अमूल्य रत्न कहा है और परतंत्र अवस्था में स्वर्ग निवास से अधिक श्रेष्ठ स्वतंत्रता के सहित नरक निवास को माना है।[2] यहाँ महावीर प्रसाद मानो सावरकरजी के मतों का ही अनुवाद करते दिखाई देते हैं। गयाप्रसाद शुक्ल के 'त्रिशूल तरंग' की अनेक कविताएँ 'शेखाय वतन', 'प्रकृति संदेश', 'स्वतंत्रता आदि' स्वतंत्रता के गुणगान पर लिखी है और 'फरियाद बुलबुल', 'क्या हुआ', 'याद वतन', 'परतंत्रता' आदि कविताओं में कवि ने परतंत्रता पर दुःख प्रकट किया है। 'गजल' में वे दुःख के साथ लिखते हैं—

लुत्फ आजादी का हमने पाया नहीं
कुछ मजा जिन्दगी का उठाया नहीं है।[3]

माधव शुक्ल ने 'जागृत भारत' में भारत की परतंत्रता पर बहुत दुःख प्रकट किया है और भारतीयों से इस दासता दुःख हरने का आग्रह किया है। कवि के मतानुसार पराधीनता में मरना दैव नियम के विपरीत है। इसी प्रकार अनेक कविताओं में परतंत्र अवस्था पर क्षोभ, स्वतंत्रता प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प तथा इस उद्देश्य के लिए सब कुछ होम कर देने की इच्छा प्रकट की गई है। 'जागृत भारत' की अधिकांश कविताओं में भावनाओं की जो तीव्रता मिलती है वह अन्य कविताओं से इन्हें पृथक कर देती है, जैसे—

छोड़ दे यह चोला बन्दे यह न तेरे काम का
दाग लग गया है इसमें दासता के नाम का।[4]

अथवा आजादी की यह कामना देखें—

मेरा जी न रहे मेरा सर न रहे
सामाँ न रहे न ये साज रहे।
फक्त हिन्द मेरा आजाद रहे
माता के सर पर ताज रहे।[5]

कवि को परतंत्रता का बड़ा दुःख है। हम घर के मूल गण और पराये लोग गृहस्वामी बन गये, हम उजड़ गये और अन्य ने पैर जमा लिये, ऐसी अवस्था में वीर अपने शोणित से स्वतंत्रता का बीज सजाते हैं। रामनरेश

---

१ रामचरित उपाध्याय—राष्ट्रभारती—पृ० ३०।
२ सुमन—महावीर की विरहणा—पृ० ३३।
३ गयाप्रसाद शुक्ल त्रिशूल—त्रिशूल तरंग—पृ० १७।
४ माधव शुक्ल—फिर दासत्व जागृत भारत—पृ० २०।
५ माधव शुक्ल—सच्चा स्वराज्य जागृत भारत—पृ० ३६।

समान ही यहाँ के लोग भी अपने को दासता से मुक्त कर लगे और अंग्रेजो स स्वदेश जाने के लिए कह दगे। लोकहितवादी के ये स्वतन्त्रतावादी विचार तत्कालीन बगाली सुधारको की अपेक्षा अधिक प्रगत लक्षित होते हैं।[1] आगरकरजी ने भी सन १८८० म लिखा था कि राज्यशास्त्र के आधार पर और एतिहासिक अनुभव से यह कहा जा सकता है कि भारतीयो का ज्ञान एव बल बढ़ता जायगा और अन्त म भारतीय आगन्तुको को घर से बाहर निकाल देगे।[2] विष्णुशास्त्री चिपलूणकर की निबंधमाला तिलकजी का केसरी तथा शि० म० परांजपे के 'काल' ने महाराष्ट्र म स्वातन्त्र्य लालसा को प्रज्वलित किया। इनका गहरा प्रभाव कवियो पर पड़ा।

हिन्दी कवियो ने देश प्रेम स प्रेरित होकर पराधीनता पर दुख एव क्षोभ प्रकट किया, तथा पराधीन भारत म उत्कट स्वातन्त्र्याकांक्षा की भावना का प्रचार कर स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी और राष्ट्रीय चेतना के प्रसार का प्रशंसनीय कार्य किया जिसके लिए ये कवि प्रशंसा के पात्र हैं।

स्वर्णिम भविष्य

राष्ट्रीय आन्दोलनो के दिनो म जातीय एकता के साथ ही अपने अनेक अभावो को दूर करने की आवश्यकता का अनुभव कवियो ने किया। हिन्दी साहित्यकारो ने अपनी लेखनी द्वारा अपनी समस्त मेधा स अभावो और आवश्यकताओ की पूर्ति की योजनाएं भी कला द्वारा प्रस्तुत की थी। गांधीजी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओ ने भारतवासियो को जिस स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित कर मुक्ति पथ पर अग्रसर किया था उससे भविष्य का सुन्दर चित्र सजीव हो गया था। अतीत की स्वर्णिम स्मृति ने भी भारत के भविष्य के लिए आदर्श मान्यताएँ प्रस्तुत की। आधुनिक हिन्दी कविता म देशभक्ति के उत्साह का एक जो रचनात्मक रूप मिलता है वह भारत के उत्कर्ष और उसके स्वर्णिम भविष्य की भावना म अभिव्यक्त होता है। डा० नगेन्द्र इसके सम्बन्ध म लिखते हैं— स्वतन्त्रता से पूर्व हिन्दी के राष्ट्रीय कवियो ने भारत के मुक्तिस्वप्न के अगणित चित्रो द्वारा जनता के विषादसंकुल मन म स्फूर्ति

---

१ डा० जावडेकर–आधुनिक भारत–पृ० १२०।

२ केसरीतील निवडक निबंध–पृ० १५८–१६०

उद्धत–डा० दु० का० संत–मराठी स्त्री–पृ० १६१।

३ डा० सुषमा नारायण–भारतीय राष्ट्रवाद का विकास हिन्दी साहित्य म अभिव्यक्ति पृ० ३७५।

और उत्साह भर कर राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण योग दिया। एक ओर जहाँ उन्होंने वर्तमान के गौरव के चित्र अंकित किए हैं वहाँ दूसरी ओर उनके परिमार्जन के लिए भविष्य की उज्ज्वल कल्पनाएँ कीं। कवीन्द्र रवीन्द्र ने परम पिता से स्वतन्त्रता के जिस स्वर्ग में अपने देश को जगाने की प्रार्थना की थी[1] हिन्दी कवियों ने भी इसके शत शत चित्र अंकित किए हैं।[2] डा० नगेन्द्र का यह कथन मराठी कविताओं के सम्बन्ध में भी चरितार्थ होता है। किन्तु रवीन्द्र गीत का कोई प्रभाव मराठी कवियों पर लक्षित नहीं होता। मराठी कवियों पर तिलकजी, चिपलूणकर का प्रभाव लक्षित होता है। इन कविताओं में सात्विक गर्व तथा ओज है। इन कविताओं में ध्वंस के स्थान पर निर्माण के भव्य चित्र खींचे हैं। समाज के नैतिक और सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक पार्श्वों को कवियों की आँखों ने देखा और उनके उन्नयन एवं उत्कर्ष के लिए आदर्शों की व्यंजना की है।

स्वर्णिम भविष्य के सबसे महान् गायक हैं सुमित्रानन्दन पन्त। पन्तजी को आरम्भ से ही अतीत की अपेक्षा भविष्य के प्रति अधिक आकर्षण रहा है। पन्तजी सदैव भविष्य के स्वप्नद्रष्टा कवि रहे हैं। पन्त स्वर्णिम भविष्य और भविष्यत् जगत का वर्णन करने में अद्वितीय हैं। नवीन संस्कृति के विषय में सबसे अधिक सुलझी हुई भावना पन्त की है। इनकी कुछ अपनी विशिष्टता है इसी के परिणाम स्वरूप इनकी नई व्यवस्था की भावना भी स्वतन्त्र है।[3] पन्त के मतानुसार नई व्यवस्था में क्रान्तिवादियों के साम्यवाद और गाँधीजी के सत्य एवं अहिंसा का सामंजस्य तथा समावेश होगा। सत्य और अहिंसा व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक हैं और साम्यवाद समष्टि की उन्नति के लिए अपेक्षित है। नवीन संस्कृति का स्वर्णयुग गाँधीवाद और साम्यवाद दोनों के सामंजस्य का सन्देश लेकर आया है।[4] इस नवीन संस्कृति में वर्ण भेद मिट जायेंगे जीवन के संगीत में धरती का क्रन्दन परिणत हो जायगा जगत के ध्वंस पर नवीन निर्माण होगा। इस नव निर्माण में विगत युग के जड़ और मृत आदर्शों की वर्ग-सम्पन्नता संकीर्ण जीर्ण धर्म मानव की बर्बरता नृशंस इतिहास आदि की प्रतिमाएँ गाड़ दी जायेंगी और मर रव मानवता का नाश होगा।

---

१ रवीन्द्रगीत—उद्धृत—डा० सुधीन्द्र—हिन्दी कविता में युगान्तर पृ० १८०।
२ डा० नगेन्द्र—आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ पृ० २७।
डा० केसरीनारायण शुक्ल—आधुनिक काव्यधारा—पृ० १८५।
४ सुमित्रानन्दन पन्त—युगवाणी—पृ० ४।

यह नव निर्माण नभ से शान्ति, रवि से क्रान्ति, भू से वैभव, मरुत से जव, सुमनों से स्मिति, विहगों से स्वर, नारि से सौंदर्य, मधु से यौवन लेकर[1] ज्ञान विज्ञान तथा क्रान्ति को ज्ञात करके मानव का विकास करेगा। लोग जीवन के शिल्पी बनकर ललित कलाओं की उन्नति में सहायता देकर धरती पर विश्व संस्कृति को प्रतिष्ठित करेंगे।[1]

आज राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता रूप धारण कर चुकी है। एक देश दूसरे देश के साथ तथा एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ मित्रता का हाथ बढ़ाता जा रहा है। शीघ्र ही इन सबकी एक सामान्य विश्व संस्कृति होगी जिसमें साम्प्रदायिकता तथा संकीर्णता नहीं होगी वरन प्रेम और व्यापकता होगी जिसमें अन्तर्निहित होगी मानव मात्र के मंगल कल्याण की पुनीत भावना। कवि लिखता है—

हो शान्त जाति विद्वेष वर्गगत रक्त समर
हो शात युगों के प्रेत मुक्त मानव अन्तर।
संस्कृत हो सब जन स्नेह हो सहृदय सुन्दर
संयुक्त कर्म पर हो संयुक्त विश्व निर्भर।
हो धरणि जनों की जगत स्वर्ग जीवन घर
नव मानव को दो प्रभु। भव मानवता का वर।[2]

कवि ने छायादर्पण युगछाया युगविषाद मन के स्वप्न नवजगत आदि अनेक कविताओं में भविष्यत जगत का सुन्दर वर्णन किया है।

महाप्राण निराला भी नव संस्कृति का स्वप्न देखते हैं। उनकी नव संस्कृति साम्यवाद से प्रभावित है। समता शिक्षा राष्ट्रीय करण का प्रचार उसमें है।[3] इसके अतिरिक्त अहिंसा आध्यात्मिकता निष्कपटता सुख और अभावों की पूर्ति का चित्रण भी इसमें आता है। इस नव संस्कृति के सामने विज्ञान भी नतशिर हो जायगा। कवि लिखता है—

विज्ञान झुकायगा आँखें वायुयान का पीछे पाँखें
सुलझेंगी मन मन की आखें ज्योनिजग का होगा सुधार
सादा भोजन ऊँचा जीवन होगा चेतना का आश्वासन
हिंसा को जीतेंगे सज्जन सीधी कपिला होगी दुधार

---

१ सुमित्रानन्दन पन्त भव मानव—युगवाणी—पृ० १११।
२ सुमित्रानन्दन पन्त— इन्द्रधनुष्य स्वर्णकिरण।
३ सुमित्रानन्दन पन्त—ग्राम्या (तृ० सं०) पृ० १०८।
४ निराला—बेला—पृ० ७८।

छूटेगी जग की ठग लीला, होगी आवें अन्त सीला
हागा न किसी का मुँह पीला मिट जायेगा लेना उधार ।[1]

नव कविता के प्रवतक अज्ञेय देश की स्वाधीनता चाहते थे और स्वाधीनता के माध्यम से देश के ऐसे विकास की कामना करते हैं कि भारत पुन विश्व को आलोकित करने म सफल हो ।[2] नरेन्द्र शर्मा ने भी स्वाधीनता के पश्चात भारत की समृद्धशाली बनने की तथा मनुष्य फिर दास न बने इसकी कामना प्रकट की है ।[3] जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद ने उगता राष्ट्र कविता म उज्ज्वल भविष्य का सकेत किया है ।[4] सोहनलाल द्विवदी दिव्य भविष्य की पावन ज्वाला म सब पापो को जलाकर सब स्वतत्र सुखी हो जायें की इच्छा प्रकट करत है ।[5] राष्ट्रीय सास्कृतिक पक्ष के आख्याता के कवि मथिलीशरण गुप्त रामावतार का काय इस धरा का स्वग बनान का मानते है । साकेत के राम कहत हैं—

मैं यहाँ जोड़न नहीं बाटने आया ।
सदेश नही यहा मैं नही स्वग का लाया,
इस भूतल को हा स्वग बनाने आया ।[6]

आज भारत गह-कलह मतभेदो म ग्रस्त है । परन्तु भविष्य म भारत इन सामाजिक विकृतियो स छुटकारा पाकर एकता तथा प्रज्ञा से जग का सिरताज बन जायगा, एसा भविष्य चित्र रामचरित उपाध्याय ने खीचा है ।[7]

भारत भूषण अग्रवाल प्रथमत वह्नि तज के स्फुलिंग की ज्योति बिन्दु से कडवी जडता का सद्भाव तथा हृमन्त शीत मिटाना चाहते हैं और फिर पूव म जो अभिनव वसन्त का जा नवालोक प्रसारित हो रहा है उसका स्वागत करके जग का शतदल विकसित होकर सौरभ म दिग दिगन्त पूरित हो जाने की शुभ कामना प्रकट करत है । कवि के शब्दो म—

विकसित होगा जग का शतदल
खोलेगा अपना मूँदा आँख

---

१ निराला–बेला–प० ८४ ।
२ अज्ञेय–इत्यलम–प० ६० ।
३ नरेन्द्र शर्मा–अग्निशस्य–प० ४८ ।
४ जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द–माधुरी–प० २३ ।
५ सोहनलाल द्विवदी–प्रभाती–प० ३, ४० ।
६ मैथिलीशरण गुप्त–साकेत–प० १६६–१६७ ।
७ रामचरित उपाध्याय– भारत का भविष्य सरस्वती मई १९१४ ।

जागृत की किरणों से ज्योतित
होगा अशेष जग का प्रांगण
सौरभ से पूरित दिग दिगन्त ।[1]

हिन्दी कवियों ने स्वर्णिम भविष्य के सुन्दर चित्र खींचे हैं। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय तो आत्मवाद यथार्थ का विरूपताओं की ही प्रतिक्रिया है। भविष्यत स्वर्णिम का विधावन वर्तमान काल के सामाजिक नैतिक, राजनीतिक सांस्कृतिक आर्थिक धार्मिक पतन एवं पराधीनता की विरूपता की ही प्रतिक्रिया है।

हिन्दी कवियों के नव विश्व की स्थापना में उनके नव जगत तथा नव निर्माण के सपनों के भावों विचारों में साम्य है। दोनों समृद्ध कल्पनाशील भारत का स्वप्न देखते हैं। नव विश्व में से दोनों अन्याय अनीति अभाव और भाषा सम्प्रदाय, वर्ण जाति वर्ग तथा वर्ग विभेद श्रेष्ठ कनिष्ठता उच्चनीचता विषमता स्वार्थता मत्सर द्वेष कलह यादि उच्छृंखलता महायुद्ध तथा अंधश्रद्धा आदि को मिटाना चाहते हैं और बुद्धिवादिता ज्ञान विज्ञान प्रेम, समता श्रम स्वावलम्बन शांति एवं विश्वबंधुता का साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं।

कवियों का नव विश्व का यह स्वप्न बड़ा ही मनोहर और भव्य है। आज भी विश्व जनता अभावों एवं शोषण में ग्रस्त है। कवि ने चंद्रमा पर पहुँचा था का सपना देखा उसकी परिपूर्ति वैज्ञानिकों ने की है। आज के कलह ईर्ष्या विषमता तथा अन्याय के युग में हिन्दी कवियों के नव नव विश्व के विराट स्वप्न से यदि प्रेरणा ली जाय तो विश्व कितना समृद्ध सुखी और सुन्दर बनेगा ?

शांति की भावना

भविष्यत स्वर्णिम जगत की साकार करने का एक मात्र उपाय है शांति। बीसवीं शताब्दी में जीवन में भी सभी क्षेत्रों में नव जीवन का स्वर गुंजरित होने लगा। प्रवञ्चित रूढ़ियाँ सर्वथा नष्ट भ्रष्ट होने लगीं और प्राचीन परम्पराओं तथा अन्धविश्वासों के विरुद्ध विरोध जागृत हो गया। विज्ञान की उन्नति के कारण जनता में क्रमशः बुद्धि का विकास हुआ और परिणामतः नवीन नवीन प्रवृत्तियों तथा युगानुकूल भावनाओं का जन्म हुआ। विज्ञान के विनाशकारी दुष्परिणामों से त्रस्त एवं भयभीत हुआ मानव समाज निराश सा हो चुका था। लोगों को विश्वास था कि इन भीषण नर-संहार तथा

---

[1] भारत भूषण अग्रवाल—जागते रहो ... भाग १ पृ० ९३-९४।

विनाश के पश्चात विश्व म सुख शान्ति का साम्राज्य होगा परन्तु उनकी आशा ने शीघ्र ही कल्पना का रूप धारण कर लिया । भीषण रक्तपात के कारण असंख्य अनाथो के करुण क्रन्दन तथा सहस्रा विधवाओं के हृदय विदारक चीत्कार स सारा वायु मण्डल अशान्त एव शोकमय हो गया । जनता म सर्वत्र विक्षोभ तथा आक्रोश दिखाई देने लगा । सत्य तथा न्याय पर जनता की आस्था मंद पडने लगी । परिणामत एक ओर जहाँ असन्तोष तथा निराशा स्थायी रूप धारण करने लगी वहाँ दूसरी ओर इसके विरुद्ध विद्रोह तथा परिवर्तन की भावना भी जागृत होने लगी । इन दोनो प्रकार की विचारधाराओ का प्रभाव नवीन युग के साहित्य पर पडा । प्रथम प्रकार की कल्पनामयी भावधारा न छायावाद को पुष्ट किया और द्वितीय प्रकार की भावना ने क्रान्तिकारी काव्य रचना म योग दिया । इस प्रकार एक ओर जहाँ अपना सुख दुःख की काल्पनिक दुनिया म विचरण करते हुए छायावादी कवि समाज स नाता तोड कर तटस्थ हो काव्य साधना कर रहे थे वहाँ दूसरी ओर आर्थिक तथा राजनैतिक पराभव के कारण इस युग के तरुण कलाकारो की वाणी म क्रान्ति तथा विनाश का स्वर मुखरित होने लगा । डा० शम्भुनाथ पाडेय के मतानुसार राष्ट्रीय आकाक्षाओ के विनाश म उत्पन्न क्षोभ समाज की व्यवस्था से उत्पन्न असन्तोष और समाजवादी आदर्शों की प्रेरणा ऐसे मनोवैज्ञानिक तत्त्व हो सकते हैं जो कवियो के हृदय म क्रान्ति विध्वंस अथवा प्रलय की कामना उत्पन्न कर रहे थे ।'[1]

क्रान्ति की कविता म मूलत तीन तत्त्व वतमान रहते हैं । अजस्रता संघर्ष की तीव्रता और लक्ष्य की स्पष्टता । क्रान्ति की एक विशेषता यह है कि अधकार म दीपक की ज्योति निखरती है तो अत्याचार और दमन के बीच क्रान्ति मुस्कुराती है ।

क्रान्तिवादी कविता देशभक्ति की धारा से पृथक चल रही है क्योंकि क्रान्तिवादी कवि का आदश देशभक्त कवि स कुछ अधिक व्यापक है । देशभक्त कवि अपने देश की स्वतन्त्रता और उन्नति का इच्छुक होता है परन्तु क्रान्तिवादी कवि सारे समाज म क्रान्ति का आवाहन करता है और किसी देश विशेष की राजनीतिक उन्नति तथा स्वतन्त्रता की कामना न कर सारे राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक अत्याचारो स मुक्ति चाहता है । क्रान्तिवादी कवि ऐसी सभ्यता का विकास और नई व्यवस्था का जन्म देखना चाहता है जिसम सारी मानवता, दासता दरिद्रता और अंध विश्वास के पाश से मुक्त होकर

---

१ डा० शम्भुनाथ पाडेय—आधुनिक हिन्दी काव्य म निराशावाद—पृ० ३१२ ।

नाति और ममता का अनुभव कर सके ।

क्रातिवादी कविता को निम्नलिखित रूपों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) क्रांति का स्वरूप
(२) सामाजिक क्रांति
(३) धार्मिक क्रांति
(४) आर्थिक क्रांति
(५) राज्य क्रांति ।

क्रांति का स्वरूप

प्रारम्भ में विद्रोहात्मक भावना का वैयक्तिक रूप दृष्टिगोचर होता है जिसका सम्बन्ध कवि की अन्तर्चेतना तक ही सीमित है । बाह्य एवं समष्टि रूप की व्याख्या का प्राय इसमें अभाव ही है । परन्तु कहीं कहीं कवियों का स्वर तीव्र होने लगता है और उससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में उथल पुथल की भावना प्रस्फुटित होने लगती है । इस प्रकार की क्रांतिकारी कविताओं के श्रीगणेश करने वाले थे क्रांतिवाद के अग्रदूत और अनलगान गानेवाले[1] बालकृष्ण शर्मा नवीन उनकी विप्लवगान[2] नामक कविता ने काव्य जगत में धूम मचा दी ।

निराला जी का नाम आधुनिक काल के महान क्रांतिकारी कलाकारों में लिया जाता है । उनकी अनेक रचनाओं में विद्रोह का स्वर मुखरित होता है । उनके हृदय में उठने वाला बवंडर मानो बादलराग[3] कविता में गौरव गर्जन के रूप में अभिव्यक्त हो उठता है । विनाश की भावना का रौद्र रूप आवाहन नामक कविता में मिलता है । नव जगत निर्माण के लिए क्रांति का उदबोधन[4] कविता में मिलता है । कवि श्यामा को नृत्यमग्न देखकर विद्रोह का शखनाथ फूंकता है—

एक बार बस और नाच तू श्यामा
अट्टहास उल्लास नृत्य का होगा जब आनन्द
विश्व की इस वीणा के टूटेंगे सब तार
बन्द हो जायेंगे ये सारे कोमल छन्द

---

१ रामबिहारी शुक्ल व डा० भगीरथ मिश्र–साहित्य का उदभव और विकास, पृ० २२० ।

२ बालकृष्ण शर्मा नवीन कुकुम पृ० १० ।

३ निराला 'बादलराग परिमल–पृ० १७६ ।

४ निराला उदबोधन अनामिका–पृ० ६७ ।

मिन्यु राग का होगा तब आलाप—
उत्ताल-तरग भग कह देंगे
मा, मदग के मुस्वर क्रिया क्लाप ।[1]

छायावाद क कामल कवि पतजी न विद्रोहात्मक गाता का गायन किया है। परिवतन की भावना पत की कविताओ म रोमाचकारी रूप धारण कर लेती है। व व्यापक उयल पुथल क पोषक है और सार विश्व मे एक नव निमाण की अभिलाषा रखत हैं। उन्होंने युगान्त की गा कोकिल बरसा पावक कण व डूब गए सब डूब गए स्वर्णोन्य, द्रुत झरो जगत क जीण पत्र' आदि अनक क्रांति गाता म पुरान युग तथा जगत घ्वस की कामना की है। उनके एक प्रसिद्ध गान म जगत के जाण पत्रो की झरन की कवि न इच्छा व्यक्त की है—

द्रुत झरो जगत के जीण पत्र
ह सस्त ध्वस्त ह शुष्क पण
हिम ताप पीत मधुवात भीत
तुम वीत राग जड पुराचीन ।

दूसरी एक कविता म कवि क्रांति का स्वरूप और काय का विवरण करत हुए लिखता है — क्रांति क विरोध म खडे हुए दुदम उच्च अद्रि शिखर नव विचारो क स्वर्णातप म डूब जायेंगे, मानव को बदी बनानेवाली पुरातन सस्कृति का नाश हागा। क्रांति म सस्कृति मौव ध्वस्त हो जायग प्राचीन आदर्शों क रत्न खचित शिखरो का नाश हागा। आगे कवि न क्रांति के मोहक स्वरूप का वणन किया ह–'क्रांति जीवन का ज्योतित करनेवाला मधुर सुधा सी जगत म चेतना भरनवाला नवमन्त्र करानेवाला और नव सस्कृतिका ज्वार उठानेवाली है।'[3]

सोहनलाल द्विवेदी अपनी विप्लव गीत कविता म ध्वस और नाश की कामना करत हैं।[4]

भगवतीचरण वमा न मधुरकण या मरी जाता बादल कविताओ म कलुषित ससार के डूबन की इच्छा की ह और रुद्र स ताडव नृत्य करके नाश ही नाश मचान की प्राथना की है। कवि बच्चन भी वसन की शांति की अपक्षा

---

१ निराला–परिमल–पृ० १२८ ।
२ पत–युगान्त–पृ० १५ ।
३ पत क्रांति युगवाणी–पृ० १०२ ।
४ सोहनलाल द्विवेदी विप्लव गीत भरवी–पृ० १३२ ।

पतझड़ की क्रांति की कामना करते हैं।[1] परन्तु वह नाश जिसपर नव निर्माण की नींव न पड़ सके जो भूकम्प और बाढ़ बनकर ही रह जाय, स्थायी महत्त्व की वस्तु तब तक नहीं हो सकती जब तक उसकी परिणति किसी उदात्त लक्ष्य में न हो। प्रलय नाश की स्थिति स्थायी रूप से काम्य नहीं हो सकती।[2] बच्चन ने ध्वंस के साथ ही नव निर्माण का गान गाया है। कवि 'पाँचजन्य' कविता में लिखता है—

> नूतन युग का हो नया राग
> अनिल धरे नूतन पराग
> उज्ज्वल अतीत से हो सराग
> पर जगे हृदय में नई आग
> प्राचीन क्रांति से हो न तुष्ट
> हम रचें नित्य नूतन महान।[3]

दिनकर कविता में क्रांतियुग का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। क्रांतिवादी को जिन जिन हृदय मथनों से गुजरना होता है दिनकर की कविता उनकी सच्ची तस्वीर रखती है। दिनकर राष्ट्रीयता के उद्यान में कूकनेवाला अनलवर्षी कोकिल है। यदि किसी ज्वालामुखी के तरल उष्ण और विस्फोटक लावा को गाल में बाँध दिया जाय तो उसका नाम होगा दिनकर। भारतीय जनता की परम्परागत राष्ट्रीय भावना को नये युग में आतंकवादी उग्रवादी पीठिका में पूरी शक्ति के साथ प्रतिध्वनित करनेवाले काल के चारण अथवा समय के वैतालिक श्री दिनकर छायावादोत्तर हिन्दी कविता को बिहार प्रांत की महत्त्वपूर्ण देन है।

दिनकर ने रेणुका हुंकार सामधेनी कुरुक्षेत्र में काव्य भावना का केन्द्र बिन्दु क्रांति रखा है। कवि का विश्वास है कि भारत के दलित गलित समाज का पुनरुत्थान सुधारवाद की मंथर गति से नहीं बल्कि क्रांति की आँधी से होगा। रेणुका की ताडव हुंकार की विपथगा और सामधेनी की जवानियाँ सर्वश्रेष्ठ कविताएँ हैं। ताडव में पुरुष का ओज और विपथगा में नारी की शक्ति है। विपथगा सम्पूर्ण कविता एक धधकती हुई चिता है जिसमें अत्याचार के शव चटचट जलते हैं। विपथगा गति और शक्ति का विराट रूप है। इस

---

१ बच्चन—क्रांति शांति प्रारम्भिक रचनाएं भाग २ पृ० ६०–६१।
२ डा० सावित्री सिन्हा—युगचारण दिनकर—पृ० ७०।
३ बच्चन—प्रारम्भिक रचनाएं भाग २ पृ० १३३।

कविता म कवि ने क्रान्ति की प्रचड शक्ति और तीव्रतम वग का ज्वलत चित्र खींचा है। विपथगा' म कवि क्राति के आगमन की स्थिति के सम्बन्ध में लिखता कि वैभव बल से जब समाज के पापपुण्य बन जाते है निधन जब पुण्य को स्पर्श नही कर पाते शास्त्र जब दुर्जेय मानव को देवचरणो की धूल बताते हैं पाखण्ड, पाप व्यभिचार धर्म का रूप धारण करते हैं तब क्रान्ति आती है। क्राति स्वय अपना दिशा और तिथि नही जानती। इतना जानती है कि जिस दिन वह मिट्टी के मानवो म धरती पर जाग उठती है आकाश म नाश म आग लगा देती है आख मूँदकर भूकम्प मचाने लगती है और वैभवशाली राज प्रासादो मन्दिरो, मस्जिदो गिरजा के साथ और विजयस्तम्भों के शिखर टूट टूट कर गिरने लगते हैं। कवि ने विपथगा को भारतीय रूप दिया है। उसके मस्तिष्क पर वसु-काल सर्पिणी के शतफन का छत्र मुकुट है उसके ललाट पर नित्य नवीन रुधिर चदन होता है आखों मे चिता धूम का तिमिर अजन है, वह सहार-लपट का चीर पहनकर छम छनन नाचती है। उसका नाचना भी गजब का है केवल पायल की पहली चमक स सृष्टि म कोलाहल छा जाता है और जिस ओर उसके चरण पडते हैं उधर भूगोल दब जाता है।[1] सक्षप मे विपथगा चडीरूप धारण करते हुए भैरव नर्तन का परिचय देती है। देश की वतमान दुर्दशा दुराचार और शोषित शोषण का रूप विपथगा प्रकट हुई है। विपथगा' पापियों को आग म झोकती है तो ताडव पाप का विनाश करता है। कवि ताडव कविता म लिखता है—

> प्रहर प्रलय पयाद गगन म अन्ध धूम सा व्याप्त भुवन म
> बरस आग बह झझाग्नि मच त्राहि जग के आगन म
> फट अतल पाताल धस जग उछल उछल कूदें भू पर
> प्रभु तव पावन नील गगन तल विदलित अमित निरीह निबल दल
> मिट राष्ट्र उजडे दरिद्र जन आह। सभ्यता आज कर रही है
> असहायो का शोणित शोषण।[2]

दिनकर की रचना म शक्ति और विस्फोट ज्यादा है। क्राति का ऐसा सजीव और मूर्त चित्र अकित करनेवाले दिनकर को युग म ना हुकार कह तो अत्युक्ति नहीं होगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी कवियो ने क्रान्ति के स्वरूप तथा काय का वणन किया है। क्रान्ति का आगमन कोई आकस्मिक घटना नहीं है उसके

---

१ दिनकर—'विपथगा' हुकार—पृ० ७२।
२ दिनकर—ताडव रेणुका—पृ० २।

लिए कारण धीरे धीरे एकत्रित होते रहते हैं। अत्याचार की घुटन एक दिन विस्फोट बन जाती है। वर्तमान अशांति और असंतोषजनक स्थिति ने क्रांति वादी कविता को उत्तेजना दी है। क्रांति का आह्वान भी राष्ट्रीय कवियों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है, यद्यपि अनेक क्रांति संबंधी दृष्टिकोण भिन्न रहे हैं। यह भिन्नता जीवन दर्शन पर आधारित है। भगवतीचरण वर्मा और दिनकर जैसे कवियों ने अराजकतावादी मनोवृत्तियों में जिसे चालित होकर अपनी विपथगा और बादल जैसी कृतियों में जिस रूप में क्रांति का आवाहन किया है हरिकृष्ण प्रेमी मिलिंद और सोहनलाल द्विवेदी आदि कवि उस रूप में क्रांति को ग्रहण नहीं कर सके। उनकी क्रांति अहिंसात्मक क्रांति है। दिनकर की क्रांति में उत्पात बहुत है जैसे क्रांति न हुई शिव का ताण्डव हो गया।

हिन्दी के क्रांति वर्णन में साम्य है। दोनों क्रांति के भीषण रूप में चंडी रुद्र को आवाहन करके ध्वंस एवं नाश का आवाहन करते हैं और उस नाश पर नव निर्माण की कामना करते हैं।

सामाजिक क्रांति

राष्ट्रीयता की भावना की अभिव्यक्ति केवल राजनीतिक क्षेत्र में नहीं वरन अन्य क्षेत्रों में भी होती है। वास्तव में राष्ट्रीय चेतना अनेक रूपों में फूट पड़ती है ये सभी अंग एक दूसरे से परस्पर सम्बंधित होते हैं। एक विशिष्ट समाज जब राष्ट्र के रूप में अपने को सुसंगठित इकाई मानने लगता है तो वह राजनीतिक क्षेत्र में स्वतन्त्रता के लिए तो प्रयत्नशील होता है समाज की कुरीतियों को दूर करने का भी प्रयत्न करता है। स्वतन्त्रता की कामना तथा सामाजिक और नैतिक उन्नति के प्रयत्न अन्योन्याश्रित हैं दोनों एक दूसरे को गति और जीवन देते हैं। समाज के सुधार पर ही राजनीतिक आंदोलन की सफलता निर्भर है। सामाजिक सुधार को तथा क्रांति को सम झाते हुए पं० नेहरू लिखते हैं— ऐसा नहीं हो सकता है कि राजनैतिक परि वर्तन और औद्योगिक प्रगति तो हो किन्तु हम यह मान कर रह जाय कि सामाजिक क्षेत्र में हम कोई परिवर्तन लाने की आवश्यकता नहीं है। राज नैतिक और आर्थिक परिवर्तनों के अनुसार समाज का परिवर्तित नहीं करने से हम पर जो बोझ पड़ेगा उसे हम बरदाश्त नहीं कर पायेंगे उसके नीचे हम टूट जायेंगे।[१]

भारत वर्ष में सामाजिक सुधारों को प्रोत्साहन अंग्रेजी शासन के संपर्क

---

१ पं० नेहरू—संस्कृति के चार अध्याय—भूमिका—पृ० ९।

से मिला । 'भारतीय समाज की शिलावस्था मे चेतना भरने का श्रेय आधुनिक पाश्चात्य सस्कृति को है ।' उनकी सभ्यता तथा उनके स्वतत्र जीवन की देखादेखी भारतवर्ष मे अनेक सामाजिक आदोलना का सूत्रपात हुआ । सामाजिक आदोलन का प्रथमत सूत्रपात श्री राजाराम मोहन राय ने सन् १८१८ म किया । महाराष्ट्र मे सुधार आदोलनो का प्रारभ सन १८२० मे हुआ ।[1] सास्कृतिक आदोलनो ने सामाजिक क्राति को प्रोत्साहन दिया है । इसी कारण शिक्षा, स्त्री, अस्पश्यता उच्चनीचता के सबध मे समाज के मतों म परिवतन होने लगा । सुधार कायक्रमो मे वैज्ञानिक आविष्कारो ने अतिशय सहायता की । स्वामी विवेकानद रामकृष्ण और दयानद के उपदेशों ने लोक जीवन म नतिक मूल्यो का उन्नयन किया । इडियन नेशनल काग्रेस के समाज सुधार के रचनात्मक कायक्रम को आदोलन के प्रारम्भिक वर्षों मे कोई स्थान प्राप्त नही हुआ था, परन्तु बाद म रचनात्मक कायक्रमो को काग्रेस के आदोलना मे समाविष्ट किया । म० गांधी ने अस्पश्यता निवारण शराब बदी आदि अनेक सामाजिक सुधारो का सम्मेलन किया ।

वज्ञानिक आविष्कार पाश्चात्य सम्पक बुद्धिवादिता, आय समाज तथा आगरकर का काय, सास्कृतिक विचारको एव समाज सुधारको का काम तथा औद्योगिकता आदि के कारण चारो आर सामाजिक कुरीतियों का विरोध होने लगा और समाज सुधारो की आवश्यकता का अनुभव करने लगा । जाति म प्राचीन रूढ़िया को तोडकर नवीन सामाजिक जीवन व्यतीत करने की चेतना का विकास होने लगा । इस प्रकार सामाजिक क्राति का सूत्रपात हो गया ।

सामाजिक क्राति को हम तीन विभागो म विभाजित करके देखेंगे ।

(१) नारी-सुधार ।
(२) अस्पश्यता निवारण ।
(३) सामाजिक कुरीतियो पर प्रहार ।

नारी सुधार

उन्नीसवी और बीसवी शती म नारी की दयनीय स्थिति की ओर समाज सुधारको का ध्यान गया । सामाजिक क्राति के लिए नारी पर का अत्याचार मिटाकर उसे पुरुष वग के समान ही समानता प्रदान करना आवश्यक था । समाज का सामजस्य नारी स्वतन्त्रता के बिना अपूण ही रहेगा । महादेवी वर्मा समाज के सामजस्य को निम्नलिखित शब्दो म समझाती हुई लिखती है–

---

१ आचाय जावडेकर–आधुनिक भारत–पृ० १०१।

पुरुष समाज का याय है स्त्री दया पुरुष प्रतिशायमय क्राव है, स्त्री क्षमा, पुरुष शुष्क कत्तव्य है, स्त्री सरस सहानुभूति और स्त्री हृदय की प्ररणा है। जिस प्रकार युक्ति से काटे हुए काष्ठ के छोटे वडे विभिन्न आकारवाले खण्डा को जोडकर हम अखण्ड चतुष्कोण या वत्त वना सकते है परतु उनकी विभिन्नता नष्ट करके तथा सबको समान आकृति देकर हम उन्हे किसी पूण वस्तु का आकार नही दे सकते उसी प्रकार स्त्री पुरुष के प्राकृतिक मानसिक वपरीत्य द्वारा ही हमारा समाज सामजस्यपूण और अखण्ड हो सकता है। उनक बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से नही।"[1]

स्त्री स्थिति म परिवतन महायुद्ध के कारण भी आया। युद्ध प्रभावित देशो के पुरुषो के युद्ध म सलग्न रहने के कारण स्त्रिया के काय क्षत्र की परिधि का विस्तार हो गया। उन्ह अपने सामान्य घरेलू धधो के अतिरिक्त कार्यालयो, दूकाना कारखाना आदि काय क्षत्र म क्रियाशील होना पडा। परिणाम स्वरूप युद्ध के पश्चात स्त्रियो की स्थिति पुरुषो क समान हो गई। उन्हें समान अधिकार प्राप्त होने लगे। स्त्रिया के सबध की पुरातन मान्यताए बदली और उन्ह पहले से अधिक श्रष्ठ स्थान प्राप्त हुआ। स्त्रियाँ मताधिकार के लिए सघष करने लगी। उन्ह मताधिकार भी प्राप्त हुआ। इन सबका प्रभाव भारतीय स्त्री पर भी पडा। भारतीय स्त्री भी स्वतत्रता की कामना करने लगी। आय समाज न स्त्री सुधार म बडा सहायता की।

आय समाज न नारी जागरण का काय किया। लगभग ३०० वर्षों स १९ वी शती क अत तक हिंदी साहित्य एव काव्य म स्त्रिया का बडा हीन चित्रण किया गया था। नायिका भद के जाल म जकड कर उन्ह एकमात्र उपभोग्य सामग्री वना रखा था। उनका वणन प्रोषित पतिका अभिसारिका अज्ञात यौवना वासकसज्जा आदि क रूप म मिलता था। अधविश्वास और रूढिवाद म उलझे हुए हिंदू समाज न उन्ह पूणतया घर की चहार दीवारी म बन्द कर रखा था। वे अशिक्षित थी तिरस्कृत थी और पति के कार्यों म हस्तक्षप करन एव परामश देने का उन्ह अधिकार न था। आय समाज न स्त्रिया की एसी दशा देखकर उनका उद्धार किया। उन्ह अर्धांगिनी का पद दिलाया पर्दा प्रथा क गत स बाहर निकाला उन्ह शिक्षित किया।[2]

---

१ महादेवी वमा–शृखला की कडियाँ–पृ० १४–१५।

२ डा० लक्ष्मीनारायण गुप्त–हिन्दी भाषा और साहित्य का आय समाज की दन, पृ० १९२।

नारी उपभोग्य वस्तु न होकर उसे भी आत्मा, स्वत्व, भावना, विचार स्वतत्र विचार तथा बुद्धि की दन है इन विचारा को आधुनिक कवियो ने अग्रेजी काव्य म पढा । नारी का सहचारिणी, सहधर्मिणी, प्रेरणादात्री का रूप आधुनिक कविताओ म अधिक अभिव्यक्त हुआ है ।

स्त्री विमोचन आन्दोलन का बीजारोपण १९७० ई० म मेरी वुल्स्टन क्रफ्ट महिला की 'विडिकेशन आफ राइट्स आफ विमेन" पुस्तक द्वारा हुआ। यह पुस्तक स्त्री अधिकारा का मैनिफेस्टो' था। आधुनिक युग म स्त्री अधिकारा की नीव इस पुस्तक न डाली । मिल की "सबजेक्सन ऑफ विमेन' प्रकाशित होन के पूव यह अत्यत महत्त्वपूण पुस्तक है ।

कविया ने नारी मुक्ति की घोषणा उच्च स्वर से की है। समाज का मरुदण्ड नारी है । जबतक स्त्रिया म नवीन जीवन की स्फूर्ति भर नही जायेगी, तबतक गुलामी का नाश नही हो सकता । स्त्रियो का शव लेकर विजयी होना असभव है । नारी मुक्ति का उदघोष करते हुए निराला लिखत हैं—

'तोडो तोडो तोडो कारा
पत्थर की निकलो फिर गगा जलधारा
गह गह की पावती
पुन सत्य सुदर शिव को सँवारती
उर उर की बनो आरती
भ्रान्ता की निश्चल ध्रुव-तारा
तोडो तोडो तोडो कारा । '[1]

पतजी ने भी नारी-मुक्ति का नारा लगाया है । स्त्री की अवस्था शता ब्दियो से दयनीय रही है । मनु स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' के अनुसार मध्ययुग मे आर्थिक विधान म स्त्री क लिए कोई स्थान नही था और वह पुरुषो की सम्पत्ति मात्र समझी जाती थी । सामत युग की नारी नर की छायामात्र रही है । वास्तव मे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र म नारी का महत्त्व पुरुष से कम नही है । भावो की भामिनी, धार्मिक बलि पशु की तरह असहाय मूक पगु पतिप्राण सती नारी की स्थिति दयनीय है । मध्ययुग म नारी का व्यक्तित्व अवगुठित था पूँजीवादी युग म आत्म निर्भिता नारी स्वतत्रता पाकर भी आत्म विकास नही कर सकी । अत पतजी नारी क व्यक्तित्व की स्थापना करना चाहते हैं । आत्म हीनता स ऊपर उठान क लिए सदेश दत हुए उसकी मुक्ति क लिए गभीर स्वर से शखनाद करत हैं—

१ निराला—मुक्ति—अनामिका—पृ० १३७ ।

मुक्त करो नारी को मानव
चिर बन्दिनी नारी को
युग युग की बबर कारा से
जननि, सखी प्यारी को ।[1]

विधवा विवाह, वेश्यावृत्ति निषेध, बालविवाह अनिषेध, पर्दा पद्धति परिवार प्रथा, विवाह, नारी समस्या के इन सारे आयामों को लेकर इस युग का नारी आंदोलन गतिशील हुआ। कवि भी चिरकाल से वंचित तथा उपेक्षित नारी के प्रति विशेष सहानुभूति प्रकट करते हैं। भारतीय नारी पुरुष के क्रूर हाथों से ताडित होकर अपना महत्त्व खो चुकी थी। कवि उस समाज के अन्याय से विमुक्त करा कर पुनर्जीवन देने का कामना करते थे। नारी समाज की अनेक समस्याओं की इति के लिए नाथूराम शंकर भगवान से प्रार्थना करते हैं।[2]

कवि पुरुष और नारी को विप्लव के दूत होने की भी माँग करते हैं। रामेश्वर शुक्ल अचल नारी से सुरा के झाग" के बदले 'जलती आग' चाहते हैं।[3] तो मिलिन्द शतशत प्राचीन लाँघकर नवजीवन पथपर "चलने वाली नारी का अभिनन्दन करते हैं।[4]

नवयुग के साथ कोमल नारी में अत्यन्त परिवर्तन आयेगा। सामन्त युगीन नर की छाया, उसकी धरोहर घर की चहारदीवारी में कैद पशुतुल्य नारी के उत्कृष्ट गुण समूह सहनशीलता लज्जा कवियों के सम्मुख आदर्श न होकर चिन्ता एवं विषाद के लक्षण हो गए हैं। उन्हें पूरा विश्वास है कि नारी एक दिन अपनी शोचनीय स्थिति से मुक्त होने के लिए क्रांति करेगी। कवि लिखता है—

'क्रांति का तूफान जब विश्व को हिलायेगा
जब शालाओं से करेंगे सत्कार
ये बाजार की असवता निर्लज्ज नारियाँ
जो न योनि मात्र रहकर बनेंगी प्रदीप्त
उगलेंगी ज्वाला मुखी। [5]

---

१ सुमित्रानन्दन पन्त, "नारी" युगवाणी पृ० ६४।
२ शंकर सर्वस्व (प्र० सं०) पृ० ३७।
३ रामेश्वर शुक्ल अचल, लालचूनर 'नारी' पृ० २६।
४ जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द "नवीना' नवयुग के गान, पृ० ४५–४६।
५ अचल 'दानव" किरण वाला पृ० ७०।

सक्षेप म 'इसके बाद की मानवी सस्कृति पुरुषाधीन, एकागी, अपूर्ण नही होगी वरन अधिक मानवी होगी।'[1] कारण जिस सस्कृति की उन्नति होगी उसमे अब स्त्री पुरुषो को समान अधिकार और दायित्व होगा।

अस्पश्यता निवारण

आधुनिक युग म अस्पश्यता निवारण के यत्न किए गए। अस्पश्यता हिन्दू समाज के लिए उच्चतम अभिशाप है। गाधीजी न लिखा है कि 'स्वातत्र्य मे यदि अस्पश्यता रहेगी तो वह स्वातन्त्र्य ही निरथक है।' मानव मानव से घृणा करे, उसे पशुतुल्य समझे यह अत्यत गहणीय बात है। इस प्रथा न हिन्दुओ का सगठन खोखला कर दिया।

आवेडकर जसे नेता ने अस्पश्यता का कलक मिटाने का प्रयत्न किया। उन्होने अप्रल २५ १९२० के एक भाषण म कहा था कि 'भारतीय अस्पृश्यो पर का अन्याय दूर नही करते। यदि शास्त्र म अथवा धम म अस्पश्यता का प्रति पादन किया हो और व्यवहार म उसके पालन का दुराग्रह किया जाय तो उन शास्त्र ग्रथो को ही जला दना चाहिए। हम मनुष्यता का अधिकार माँगत हैं। समानता के अधिकारो को प्रदान न करने के कारण जग मे क्रातिया होती हैं। चीटी पर पर पडने से वह दश करती है परन्तु हम मनुष्य होकर भी अतिशय अन्याय और अत्याचार सहन करत हैं।'[2] इस भाषण म आवेडकरजी ने स्पष्ट रूप से अन्याय प्रतिकार का तथा क्राति का उपदश दिया है।

अस्पृश्यता की समस्या राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक सामा जिक एव शक्षणिक है। महाराष्ट्र म लोकहितवादी म० फुले, सावरकर डा० मुजे आदि ने तथा उत्तर भारत म स्वामी श्रद्धानन्द ने गांधीजी के पूव अस्पश्योद्धार का आदोलन चलाया। महाराष्ट्र म मन्दिर प्रवश के प्रश्न को उठाकर इस आन्दोलन का सूत्र पात हुआ। सह भोजन, तथा नए मन्दिर बनवा कर इस आन्दोलन का प्रचार किया गया। परमात्मा के सामने सब समान हैं। जाति पाँति पूछ नहि कोय हरि को भजे सो हरि को होय का प्रचार सतो ने किया परन्तु आजतक समाज ने इस उपदश का स्वीकार नही किया। अस्पश्यो को धार्मिक क्षत्र म भी समानता नहा मिली तो अन्य क्षेत्रो मे मिलना

---

१ डा० दु० का० सन्त मराठी स्त्री पृ० ३।

२ उद्धृत न० वि० गाडगील काहा मोहरा काही मोती पृ० २०८

मुक्त करो नारी को मानव
चिर बंदिनी नारी को
युग युग की बबर कारा से
जननि, सखी, प्यारी को ।[1]

विधवा विवाह, वेश्यावृत्ति निषेध, बालविवाह अशिक्षा परदा पद्धति परिवार प्रेम विवाह नारी समस्या के इन सारे आयामो को लेकर इस युग का नारी आदोलन गतिशील हुआ । कवि भी चिरकाल से पतित तथा उपेक्षित नारी के प्रति विशेष सहानुभूति प्रकट करते हैं। भारतीय नारी पुरुष के क्रूर हाथो से ताडित होकर अपना महत्त्व खो चुकी थी। कवि उस समाज के अन्याय से विमुक्त करा कर पुनर्जीवन देने की कामना करते थे। नारी समाज की अनेक समस्याओ की इतश्री के लिए नाथूराम शकर भगवान से प्रार्थना करते हैं ।[2]

कवि पुरुष और नारी को विप्लव के दूत होने की भी माँग करते हैं। रामेश्वर शुक्ल अचल' नारी से सुरा के याग के बदले ' जलती आग चाहते हैं ।[3] तो *मिलिन्द शतशत प्राचीन लाँघकर नवजीवन पथपर 'चलने* वाली नारी का अभिनन्दन करते हैं ।[4]

नवयुग के साथ कोमल नारी मे अत्यन्त परिवतन आयगा । सामन्त युगीन नर की छाया, उसकी धरोहर घर की चहारदीवारी म कद पशुतुल्य नारी के उत्कृष्ट गुण समूह सहनशीलता लज्जा कवियो के सम्मुख आदश न होकर चिन्ता एव विषाद के लक्षण हो गए हैं। उन्हे पूरा विश्वास है कि नारी एक दिन अपनी शोचनीय स्थिति स मुक्त होने के लिए क्राति करेगी। कवि लिखता है—

' क्राति का तूफान जब विश्व को हिलाय
जब शोला स करेंगे सत्कार
य बाजार की असवृता निलज्ज नारियाँ
जो न यानि मात्र रहकर बनगी प्रदीप्त
उगलेंगी ज्वाला मुखी । '

---

१ सुमित्रानन्दन पत नारी ', युगवाणी पृ० ६८ ।
२ शकर सवस्व (प्र० स०) पृ० ३७ ।
३ रामेश्वर शुक्ल अचल लाल्चूनर नारी पृ० २६ ।
४ जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द 'नवीना नवयुग के गान, पृ० ८५–८६ ।

सक्षेप मे 'इसके बाद की मानवी सस्कृति पुरुषाधीन एकागी अपूर्ण नही होगी वरन अधिक मानवी होगी।'[1] कारण जिस सस्कृति की उन्नति होगी उसम अब स्त्री पुरुषो को समान अधिकार और दायित्व होगा।

अस्पृश्यता निवारण

आधुनिक युग म अस्पश्यता निवारण के यत्न किए गए। अस्पश्यता हिंदू समाज के लिए उच्चतम अभिशाप है। गांधीजी न लिखा है कि स्वातत्र्य म यदि अस्पश्यता रहेगी तो वह स्वातत्र्य ही निरथक है। मानव मानव स घणा करे, उसे पशुतुल्य समझे यह अत्यत गहणीय बात है। इस प्रथा ने हिंदुओ का सगठन खोखला कर दिया।

आबेडकर जस नेता न अस्पश्यता का कलक मिटाने का प्रयत्न किया। उहोंने अप्रल २५ १९२० के एक भाषण म कहा था कि भारतीय अस्पश्यो पर का अयाय दूर नही करते। यदि शास्त्र म अथवा धम म अस्पश्यता का प्रति पादन किया हो और व्यवहार म उसके पालन का दुराग्रह किया जाय तो उन शास्त्र ग्रथो को हा जला देना चाहिए। हम मनुष्यता का अधिकार मांगत हैं। समानता क अधिकारा को प्रदान न करन के कारण जग म हानियां होना हैं। चाटी पर पर पडन से वह दश करती है, परन्तु हम मनुष्य होकर भी अतिशय अयाय और अत्याचार सहन करते हैं।" इस भाषण म आबेडकरजी न स्पष्ट रूप स अयाय प्रतिकार का तथा क्रांति का उपदश दिया है।

अस्पश्यता की समस्या राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक सामाजिक एव शक्षणिक है। महाराष्ट म लोकहितवादी म० फुले, सावरकर, डा० मुजे आदि ने तथा उत्तर भारत म स्वामी श्रद्धानंद न गांधीजी के पूव अस्पश्योद्धार का आदोलन चलाया। महाराष्ट्र म मदिर प्रवश के प्रश्न को उठाकर इस आदोलन का सूत्र-पात हुआ। सह भोजन, तथा नए मदिर बनवा कर इस आदोलन का प्रचार किया गया। परमात्मा क सामन सब समान हैं। जाति पांति पूछे नहिं कोय हरि का भजे सा हरि को होय का प्रचार सता न किया परतु आजतक समाज न इस उपदश का स्वीकार नही किया। अस्पश्या को धार्मिक क्षेत्र म भी समानता नही मिली ता अय क्षेत्रो म मिलना

---

१ डा० दु० का० सन्त मराठी स्त्री, पृ० ३।

२ उद्धृत, न० वि० गाडगाळ 'वाहा मोहरा काही मोती' पृ० २०८।

मुक्त करो नारी को मानव
चिर बंदिनी नारी को
युग युग की बबर कारा से
जननि, सखी, प्यारी को ।[1]

विधवा विवाह, वेश्यावृत्ति निषेध, बालविवाह, अशिक्षा परदा पद्धति परिवार प्रेम विवाह नारी समस्या के इन सारे आयामों को लेकर इस युग का नारी आंदोलन गतिशील हुआ । कवि भी चिरकाल से पतित तथा उपेक्षित नारी के प्रति विशेष सहानुभूति प्रकट करते हैं। भारतीय नारी पुरुष के क्रूर हाथों से ताडित होकर अपना महत्त्व खो चुकी थी। कवि उस समाज के अन्याय से विमुक्त करा कर पुनर्जीवन देने की कामना करते थे। नारी समाज की अनेक समस्याओं की इतश्री के लिए नाथूराम शकर भगवान से प्रार्थना करते हैं ।[2]

कवि पुरुष और नारी को विप्लव के दूत होने की भी माग करते हैं। रामेश्वर शुक्ल अचल' नारी से सुरा के झाग' के बदले 'जलती आग" चाहते हैं ।[3] तो मिलिन्द शतशत प्राचीन लाँघकर नवजीवन पथपर 'चलने वाली नारी का अभिनन्दन करते हैं ।[4]

नवयुग के साथ कोमल नारी में अत्यन्त परिवर्तन आयेगा । सामन्त युगीन नर की छाया उसकी धरोहर घर की चहारदीवारी में कैद पशुतुल्य नारी के उत्कृष्ट गुण समूह सहनशीलता लज्जा कवियों के सम्मुख आदर्श न होकर चिन्ता एव विषाद के लक्षण हो गए हैं। उन्हें पूरा विश्वास है कि नारी एक दिन अपनी शोचनीय स्थिति से मुक्त होने के लिए क्रांति करेगी। कवि लिखता है—

'क्रांति का तूफान जब विश्व को हिलाये
जब शाला से करेंगे सत्कार
ये बाजार की असवता निलज्ज नारियाँ
जो न यानि मात्र रहकर बनेंगी प्रदीप्त
उगलेंगी ज्वाला मुखी ।[5]

---

१ सुमित्रानन्दन पत 'नारी , युगवाणी पृ० ६८ ।
२ शकर सवस्व (प्र० स०) पृ० ३७ ।
३ रामेश्वर शुक्ल अचल लाल्चूनर 'नारी पृ० २६ ।
४ जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द नवीना नवयुग के गान, पृ० ४५-४६ ।
५ अचल 'दानव किरण बाला, पृ० ७० ।

सक्षेप मे 'इसके बाद की मानवी सस्कृति पुरुषाधीन, एकागी, अपूर्ण नही होगा वरन अधिक मानवी होगी।' कारण जिस सस्कृति की उन्नति होगी उसमे जब स्त्री पुरुष को समान अधिकार और दायित्व होगा।

अस्पृश्यता निवारण

आधुनिक युग म अस्पश्यता निवारण के यत्न किए गए। अस्पश्यता हिन्दू समाज के लिए उच्चतम अभिशाप है। गाँधीजी न लिखा है कि 'स्वातन्त्र्य म यदि अस्पश्यता रहेगी तो वह स्वातन्त्र्य ही निरथक है। मानव मानव से घणा करे, उस पशुतुल्य समझे यह अत्यत गहणीय बात है। इस प्रथा न हिन्दुओ का सगठन खोखला कर दिया।

आवडकर जस नेता न अस्पश्यता का कलक मिटान का प्रयत्न किया। उन्होंने अप्रल २५ १९२० के एक भाषण म कहा था कि 'भारतीय अस्पृश्यो पर का अन्याय दूर नही करत। यदि शास्त्र म अथवा धम मे अस्पश्यता का प्रति पादन किया हो और व्यवहार म उसके पालन का दुराग्रह किया जाय तो उन शास्त्र ग्रथो को ही जला दना चाहिए। हम मनुष्यता का अधिकार माँगत है। समानता क अधिकारो का प्रदान न करने के कारण जग मे क्रान्तियाँ होता हैं। चाटी पर पर पडने स वह दश करती है परतु हम मनुष्य होकर भी अतिशय अन्याय और अत्याचार सहन करत हैं।'[१] इस भाषण म आबेडकरजी न स्पष्ट रूप स अन्याय प्रतिकार का तथा क्राति का उपदश दिया है।

अस्पश्यता की समस्या राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक सामाजिक एव शक्षणिक है। महाराष्ट्र म लोकहितवादी, म० फुले सावरकर, डा० मुजे आदि ने तथा उत्तर भारत म स्वामी श्रद्धानन्द ने गाँधीजी के पूव अस्पश्योद्धार का आन्दोलन चलाया। महाराष्ट्र म मन्दिर प्रवेश क प्रश्न को उठाकर इस आन्दोलन का सूत्र पात हुआ। सह भोजन तथा नए मन्दिर बनवा कर इस आन्दोलन का प्रचार किया गया। परमात्मा के सामने सब समान हैं। जाति पाँति पूछ नहिं कोय हरि का भजे सो हरि को होय का प्रचार सतो ने किया परन्तु आजतक समाज न इस उपदेश का स्वीकार नही किया। अस्पश्यो को धार्मिक क्षेत्र म भी समानता नहा मिला तो अन्य क्षेत्रो म मिलना

---

१ डा० दु० का० सन्त मराठी स्त्री, पृ० ३।

२ उद्धत न० वि० गाडगील 'काही मोहरा काही मोती' पृ० २०८।

दुलभ ही था। वस्तुत मलिन भाव ही अस्पश्यता है। परतु यहाँ जन्म से जाति और अस्पश्यता मानी जाती है।

हिन्दू समाज के सडाध भाग अस्पश्यता को साफ करने का काय म० गांधी ने अगीकृत किया। गांधीजी के नेतृत्व म अछूतोद्धार एक राजनतिक प्रश्न बन गया। उस दूरदर्शी राष्ट्र सत को विदित था कि जाति से विलग हुआ यह दलित वग जबतक जाति का अभिन अग नहा बन जाता तब तक समाज की दशा सुधर नही सकती। १९३३ इ० म म० गांधी ने हरिजनोद्धार के लिए दौरा प्रारम्भ किया। अस्पश्यता निवारण के प्रस्ताव निरतर पास होते रहे। अस्पश्यता का तीव्र विरोध हुआ। जाति व्यवस्था के रूढिवादी दुग के टूटने के साथ ही अस्पश्यता की भावना का क्रमश ह्रास होता गया।

समाज सुधारको का काय मदिर प्रवेश आन्दोलन आंबेडकरजी के प्रयत्न पूना पक्ट तथा म० गांधी की हरिजन प्रश्न के सम्बध म देखकर कवियो का ध्यान अस्पश्यता की ओर आकृष्ट हुआ। कवियो ने अस्पश्यता को मिटाने का सदेश अनक कविताओ द्वारा दिया।

माधव शुक्ल ने जागृत भारत म अछूतो को देश सेवा का उतना ही अधिकारी माना है जितना पुजारी और सयासी को।[1] मथिलीशरण गुप्तजी ने जाति की जीवन शक्ति को क्षीण होने से बचाने के लिए उन सकुचित विचारो स विमुख होने का सन्देश दिया है। अछूतो के प्रति सद्भाव रखने की प्रेरणा करते हुए उन्होंने जाति को सचेत किया है क्योंकि मानवता के नाते अछूत भी सबके समान आदर योग्य हैं। कवि हरिजनोद्धार के सम्बध म लिखता है—

> 'बढा बढाओ अपना बाँह
> करो अछूत जनो पर छाँह
> है समाज के वे ही सपूत
> रखते हैं जो सब का पूत।'[2]

निराला राष्ट्र की समस्त शक्ति का आह्वान हरिजनोद्धार के लिए करते है। शूद्रो का उद्धार जबतक नहीं होता तब तक हमारा पूजा व्यय है। अम्पृश्यो म उच्च सत्यता है परन्तु वे निरन्तर मगलता के प्रतीक हैं।[3] श्रीराम ने

---

१ माधव शुक्ल जागृत भारत पृ० ६।
२ मथिलीशरण गुप्त, हिन्दू पृ० १०५।
३ निराला, गीतिका, गीत ८४।

गवरी एव निषाद को प्रेम म गल लगाया की घटना की याद दिलाकर साहन लाल द्विवेदी अन्त्यजो को मन्दिर प्रवेश का अधिकार माँगते हैं।[1] आर्य समाजी कवियो ने अस्पृश्यता का निषेध कर मनुष्य मात्र के प्रति ममता और विश्व बधुत्व का पाठ पढ़ाया है।[2] भगवतीचरण वर्मा 'अछूतोद्धार' का सन्देश देते हैं।[3]

सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार

समाज क्रान्ति की नींव समानता है। विषमता अर्थोपासना एव दास धनी सम्बन्ध पर आधारित समाज रचना नष्ट होते बिना मानव को सुख नहीं मिल सकता। समाज म उच्चनीच भाव होने के कारण ही समाज की अधोगति हो जाती है। इस समाज रचना न ही धर्म वर्ण, जाति एव नीति के सम्बन्ध म असत्य एव विघातक मूल्यों का प्रचलन किया। यह समाज रचना जीवन कलह म मनुष्यता को कुचल देती है। 'इस वलिष्ठ स्मृति से हिंस्र मुख म फँसी हुई मनुष्य जग को मुक्ति करना ही समाज क्रांति है।'[4] पाश्चात्य ज्ञान के प्रकाश म भारतीयो को अपनी कुरीतियाँ तथा समाज की बुराइयाँ स्पष्ट रूपेण दिखाई देन लगीं। यूरोप और भारतवर्ष के आदान प्रदान से फिर एक बार वह भाग सोने से जाग पडा जो बुद्ध तथा कबीर के समय म जाग उठा था। हिन्दू नवोत्थान ने समाज म क्रान्ति की भावना भर दी। क्रांति नये समाज की प्रसव वेदना है। एक समाज से नये उन्नत समाज की ओर जाने के लिए क्रांति एक अनिवार्य सोपान है। समाज म विकास इसका आन्तरिक असगतियो के जरिये होता है। ये असगतियाँ जब अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती हैं तो सामाजिक क्रांति घटित होती है।[5]

समाज की इन असगतियो विरूपताओं बुराइयों और कुरीतियों पर हिन्दी कवियों ने वज्राघात करके उन्ह छिन्न भिन्न करने का यत्न किया है। कवियो

---

१ साहनलाल द्विवेदी, प्रार्थना भैरवी, पृ० ९३।

२ प० धर्मदेव वाचस्पति, सार्वदेशिक अस्पृश्यता निवारण जून १९३३ पृ० १५६।

३ भगवतीचरण वर्मा मधुकण पृ० ५३।

४ कुसुमाग्रज–बिजली–प्रस्तावना–पृ० ७।

५ आ० नरेन्द्रदेव–राष्ट्रीयता और समाजवाद।

अथ खोजने का निषेध करते हैं। उन्होंने भाग्यवाद, पूर्व संचित पुण्य को कायरों का शरण स्थल तथा असफल एवं शक्तिहीन व्यक्तियों का छिपने का स्थान बताया है।[1] भाग्यवाद का प्रचार करनेवाले संतो की आलोचना कवि करता है।[2]

रूढ़ियों के साथ ही इन कवियों ने विषमता अन्याय अत्याचार के विरुद्ध संग्राम करने का संदेश दिया है। प्रगतिवाद केवल साम्राज्यवाद तथा पूँजीवाद के विरुद्ध क्रांतिकारी भावना नहीं रखता वरन् सामाजिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करता है। वह प्राचीन रूढ़ियों तथा अन्य परम्पराओं के विनाश के लिए विद्रोहात्मक आवाज उठाता है और जाणशीण समाज में एक परिवर्तन लाकर उसका नव निर्माण करना चाहता है। प्रगतिवादी कवि को प्राचीन रीतियों तथा प्रणालियों से घृणा है और वह वर्ण व्यवस्था जाति पाँति तथा ऊँच-नीच की संकीर्णताओं से समाज को विमुक्त देखने की अभिलाषा करता है। इसीलिए उस पुरातन एवं विकृत हुए समाज को चुनौती देता है जो मानव का प्रगति पथ की ओर बढ़ने देने में बाधक है। वह उस समाज का कठोरताओं का स्वयं शिकार न बनता हो वह प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक स्वतंत्रता का समर्थक है। त्रिलोचन शास्त्री नूतन समाज की दृष्टि की कामना करते हैं—

अब कुछ ऐसी हवा चली है
जिससे सुप्त जगत जागा है
जिससे कम्पित जीर्ण जगत् ने
आज मरण का वर माँगा है।
उनको बहुत जल्द दफनाओ
नवयुग के जन आगे आओ
नव निर्माण करो तुम जग का
जीवन का समाज का मन का।[3]

पंत विध्वंस की कल्पना करते हुए कोकिल को पावक कण बरसाने का आग्रह करते हैं। उन्हें जाति, वर्ण तथा कुल के भेद रुचिकर नहीं और न ही उन्हें सह्य हैं—*प्राचीन रूढ़ियाँ तथा रीतियाँ*। इसीलिए कवि इन सब को विनष्ट होते देखना चाहता है—

---

१ बच्चन–बंगाल का काल–पृ० ४२।
२ वही, पृ० ४५।
३ त्रिलोचन शास्त्री–धरती–पृ० ४।

"मरें जाति कुल दण पण धन
अध-नीड-से रूढि रीति छन
व्यक्ति-राष्ट्र-गत-राग द्वेष रण
झरें मरें विस्मति म तत्क्षण
गा, कोकिल गा-कर मत चितन ।[1]"

निराला भी नवीनता का स्वागत कर सामाजिक विकृतियो को दूर करन के लिए विद्रोह का शख फूँकते हैं ।[2] अपनी आराध्य से भी उन्होंने यही निवेदन किया है कि जीण शीण भस्मसात हो और उसके स्थान पर सशक्त, नवीन की प्रतिष्ठा हो । आय समाजी कवि भी समाज की कडी आलोचना करके सामाजिक परिवतन चाहते हैं । इसीलिए उन्होंने विवाह, मादक द्रव्य सेवन, जाति पाँति अशिक्षा पाखड आदि समस्त कुप्रथाओ के विरुद्ध कविताएँ लिखी हैं ।

इसी प्रकार नागाजुन, रामविलास शमा भारतभूषण अग्रवाल आदि अनक प्रगतिवादी कवियो की कविता म विद्रोहात्मक भावना विद्यमान है । वे प्राचीन रूढिग्रस्त समाज को खण्डित कर जन मन कल्याणकारी समाज के नव निर्माण की ओर दृढ व्रत लेकर अग्रसर होते हैं । इनकी वाणी सामाजिक क्राति का शख नाद करती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक क्राति का यथाय वणन हिंदी कवियो न किया है । अस्पश्यता निवारण तथा नारी विमोचन की प्रबल भावना कवियो न व्यक्त की है । हिंदी कवियो ने भाग्यवाद, नारी विमोचन पाखण्ड, कुलप्रतिष्ठा उच्चनीचता का विरोध अधिक प्रबलता स किया है और प्रगतिवादी कवियो न सामाजिक क्राति का उदघोष किया है । मराठी कवियो न विषमता, अत्याचार अन्याय जुल्म रूढिवादिता की कडी आलोचना तथा निन्दा करके समता स्थापित करने के लिए क्राति एव युद्ध का माग अपनाने के लिए कहा है । हिंदी कवि फ्रेंच राज्यक्राति की स्वातन्त्र्य, समता, बधुता, इस त्रयी से अत्यत प्रभावित हैं । इस त्रयी की सामाजिक क्षत्र म मराठी कवियो न जस अत्यन्त प्रबलता स पुष्टि की है वसी हिंदी कवियों न नहीं की । दोनो भाषाओ के कवियो न पुरातन रूढियो सामाजिक असगतियो तथा बुराइयो की कडी निन्दा कर सामाजिक क्राति का शखनाद किया है ।

---

१ पत-युगात-पृ० १६ ।
२ निराला-कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला की कविताएँ ।

धार्मिक क्रांति

नवयुग में सब स्तरों और क्षेत्रों में परिवर्तन आ रहा था। देश की आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों ने जाति तथा देश की भलाई के लिए समाज तथा धर्म में कई परिवर्तन लाने की प्रेरणा दी। समाज में धर्मानुशासन का जुआ उठने लगा और रूढ़ धर्म अतीत की वस्तु बन गया। धर्म की रूढ़ियाँ शिथिल होने लगीं। धार्मिक क्षेत्र में मानवता तथा व्यापकता की भावना पनपती हुई स्पष्ट लक्षित होने लगी। धार्मिक क्रांति में विवेकानन्द, आर्य समाज तथा आगरकरजी आदि का योगदान भुलाया नहीं जाता।

धार्मिक सुधारों से कवि अत्यंत प्रभावित हुए। उन्होंने धार्मिक कुरीतियों पर लेखनी चलाई। दिनकर ने मोक्षवादी विचारों पर कुठाराघात किया। मोक्षवादी विचारों के अनुसार जगत अनित्य है, जीवन नश्वर है। ये सिद्धान्त कवि के मतानुसार मनुष्य को सामाजिक कर्तव्यों से उदासीन बना देते हैं। ये वैराग्य अथवा संन्यासवादी विचारों को प्रगतिविरोधी, अकर्मण्य और निकृष्ट कहते हैं। विरक्ति मनुष्य को नीरस और निकम्मा बना देनेवाली बीमारी है। हमारे सामाजिक जीवन का ह्रास और सांस्कृतिक पतन का एक कारण दार्शनिक निराशावाद रहा है। अतः कवि विरक्ति वैराग्य मार्ग का खंडन करता है।[1]

जातीय एकसूत्रता के लिए धर्म एक साधन हो सकता है। समय की माँग थी कि जाति धार्मिक दोषों से रहित होकर सच्चे धार्मिक पथपर अग्रसर हो। धार्मिक रूढ़ियों पर आर्य समाज द्वारा किये गये प्रहार अवश्य लाभप्रद हुए। कवियों ने धार्मिक कुरीतियों तथा धर्म के नामपर किये जानेवाले पापाचारों की कटु एवं यथार्थ आलोचना की है। धार्मिक क्षेत्र में उथल पुथल चाहनेवालों में नाथूराम शंकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आर्य समाज से प्रभावित होने के कारण वे मूर्तिपूजा के विरोधी थे और जाति में एक बार पुनः वैदिक धर्म तथा आर्य सभ्यता की स्थापना करने की अभिलाषा रखते थे। कई स्थानों पर अपनी कविताओं में व्याजस्तुति द्वारा समाज की धार्मिक पाखण्डमयी दशा पर वे व्यंग्य करते हुए दिखाई देते हैं। पुनर्जन्म, प्रारब्ध, मुक्ति आदि पर उन्होंने व्यंग्य किया है।[2]

परन्तु धार्मिक पतन के यथार्थ वर्णन के साथ साथ आदर्श की स्थापना करना कवि अपना कर्तव्य समझता है। उसका दृढ़ विश्वास है कि धार्मिक

---

१ दिनकर—कुरुक्षेत्र—पृ० १२५–१२६।

२ नाथूराम शंकर—शंकर सर्वस्व—पृ० १ ५।

तथा सामाजिक विकृतिया की विद्यमानता मे देश का उद्धार होना कठिन है। इसीलिए कवि सभी कुरीतियां को जड स उखाड दन का प्रण करते हुए देश तथा जाति की मगल कामना प्रकट करता है।[1]

कवि बच्चन शासका और जनता के शोषकों को चालाक कहते हैं क्योंकि वे महात्ठ सतो द्वारा कीतन हरिभजन की सरस बानियाँ बरसाकर असतोष की आग जागत नही होने दते और जनता क मुख स क्रांति का शब्द न निकले इसीलिए जनता के मुख के अदर राम का रोडा अटकाने का प्रबध करते हैं। कवि अत म इसके विरुद्ध जागरण का सदेश दकर क्राति का नारा लगाता है।[2]

आयसमाजी कवि अत्यत उग्र ह। उनकी समाज की आलोचना बडी तीव्र और तीखी है। व समाज सुधार के लिए अत्यत अधीर हैं। आय समाजी कवि अध विश्वास और मूर्तिपूजा का तीव्र प्रतिवाद करते है। इसी कारण य धार्मिक महतो और पुजारियो को भला बुरा कहत हैं और उन्ह 'पोप' की उपाधि दत हैं। हिंदुओ को बहकानवाल धम क ठेकेदारा के प्रति 'शकर' का व्यग्य देखने योग्य है—

> ठके पर लेकर वतरणी, दकर डाढी मूँछ।
> वाटर वाइसिकिल के द्वारा, बिना गाय की पूँछ॥
> मरा को पार उतरँगा किसी स कभी न हारूँगा
> जाति पाँति के विकट जाल म जूझे फँसें गँवार
> मैं अब सबको सुलझा दूँगा, करके एकाकार।[3]

इस प्रकार मूर्तिपूजा अवतारवाद मतकश्राध गगा स्नान द्वारा मुक्ति वतरणी द्वारा भवसागर पार आदि कितना ही धारणाओ का उग्र कठोर एव व्यग्यात्मक शब्दा म खडन आय समाजी कवियो ने किया है।

हिंदुओ की अधोगति स लाभ उठाकर ईसाई मुस्लिम अपनी सख्या दिन प्रतिदिन बढा रहे थे। आय समाजिया न शुद्धि आदोलन द्वारा इसे रोकने का प्रयत्न किया। उन्होने शुद्धिकरण का प्रचार काव्य द्वारा भी किया है।[4] बच्चन ता ईश्वर की सत्ता नही मानत।[5]

---

१ नाथूराम शकर–शकर सवस्व–प० १५५।
२ बच्चन–बगाल का काल–प० ४६।
३ नाथूराम शकर–पचपुकार–अनुरागारत्न–प० २८३।
४ प० हरिशकर शर्मा–भजन भास्कर सग्रहीता–प० २०१।
५ बच्चन– मेरा धम प्रारम्भिक रचनाएँ भाग १, पृ० ५०।

ऋषि दयानंद ने भी मूर्ति का विरोध संभवतः इसलिए किया था कि समाज केवल पत्थर और धातु को विधाता न मान बैठे। मूर्तिपूजा हमें अकर्मण्य जड़ और भाग्यवादी बना देती है। रवीन्द्र ने कहा था कि परमात्मा के दर्शन मंदिर में नहीं होंगे तो जहाँ किसान और मजदूर काम करते हैं वहाँ होंगे।[1] रामनरेश त्रिपाठी भी भगवान की झलक दुखियों के द्वार पाते हैं। मनुष्य उसकी खोज कुंज और वन में करते रहते हैं जबकि वह जगन्नियंता दीनजनों की कुटी तथा पीड़ित प्राणियों के आँसुओं में डेरा लगाए बैठा रहता है।[2]

इस प्रकार हिन्दी कवियों ने धर्माडम्बर, मूर्तिपूजा, ईश्वर, अंधश्रद्धा, वैराग्य, विरक्ति, मुक्ति, माया आदि की कड़ी आलोचना की है। आर्य समाजी कवियों ने प्रारब्ध, पुनर्जन्म, मोक्ष पर कटु व्यंग्य किया है। हिन्दी कवि धर्म को शोषण का साधन मानते हैं। और शंकराचार्य के दर्शन पर टूट पड़ते हैं तथा वैराग्य एवं ऐहिक उदासीनता की कड़ी निंदा करते हैं।

आर्थिक क्रांति

आर्थिक क्रांति में मार्क्सवादी दर्शन ने बड़ा योग दिया है। मार्क्स के अनुसार समाज की वर्तमान व्यवस्था में जो दुःख, दैन्य, वैषम्य और असंतोष फैला हुआ है उसका कारण समाज की पूँजीवादी व्यवस्था है। पूँजीवादी देशों में समाज दो वर्गों में बँटा हुआ है एक है पूँजीपति वर्ग और दूसरा है सर्वहारा वर्ग। इन दोनों के बीच में पिसनेवाला है मध्यवर्ग जो आर्थिक दृष्टि से सर्वहारा वर्ग का सदस्य है किन्तु मानसिक रूप से वह पूँजीवाद की ओर ताकनेवाला है। समाज से यदि पूँजीवाद का अस्तित्व नष्ट कर दिया जाय तो समाज के संपूर्ण असंगतियों का निवारण हो जाय। पूँजीपति वर्ग का निवारण केवल रक्त क्रांति द्वारा संभव है। जिस दिन सर्वहारा वर्ग यह समझ जायगा कि उसमें और पूँजीपतियों में भक्ष्य और भक्षक का संबंध है उसी दिन यह क्रांति भड़क उठेगी जिसका शमन पूँजीवाद के नाश के पश्चात् ही होगा।

वर्तमान जीवन की दुःख, निराशा, अभाव, अवसाद आदि का जिस सामाजिक व्यवस्था से प्रभव हुआ वह नाना श्रेणियों, वर्गों में विभक्त समाज की रुग्ण व्यवस्था है। जब तक एक वर्गहीन समाज की स्थापना नहीं होगी तब तक जीवन के दैन्य, अभाव, असंतोष, कुंठा और अवसाद निष्कासित नहीं किये

---

१ रवीन्द्रनाथ ठाकुर—गीतांजलि ११
रामनरेश त्रिपाठी—नवीन पद्य संग्रह (हि० सा० सं० प्रयाग २१ वाँ सं०) पृ० ८७।

जा सकते ।

मार्क्सवादी दर्शन व्यापक होने के कारण जीवन के सभी क्षेत्रो पर उसका प्रभाव अनिवार्य रूप स पडा । साहित्य भी उसका परिधि म आ गया । हिंदी साहित्य मे मार्क्सवाद का प्रभाव सन १९३६ के लगभग प्रारंभ होता है। प्रथम महायुद्ध के समय जब रूस म लाल क्राति हुई उस समय भारत मे स्वतन्त्रता संग्राम चल रहा था । किन्तु यही समय छायावाद की व्यक्तिवादी विचारधारा का था, इसलिए कविता पर रूसी क्राति का कोई व्यापक प्रभाव न पड सका । यही बात हम मराठी कविताओ के सबंध मे देख सकते हैं। मराठी मे भी छायावादी प्रवृत्तियो को अपनानेवाले रविकिरण मडल का प्रभाव था और रूसी क्रांति का त्वरित प्रभाव मराठी काव्य पर नही पडा, यद्यपि भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी के डागरे आदि नेता महाराष्ट्र के थे। सन् १९२७ मे मार्क्सवाद की जनयाथा एक कम्युनिष्ट दल भारत में स्थापित हो चुका था । किन्तु वह गैर कानूनी रहा इसलिए साहित्य म अपनी अभिव्यक्ति न कर सका । सन १९३७ म अधिकाश राज्यों म काँग्रेस का मन्त्रिमंडल बना तब कहा जाकर दल से पाबन्दी हटी । किन्तु हिंदी काव्य मे मार्क्सवादी विचारो के प्रचार का श्रेय मुख्यत 'प्रगतिशील लेखक सघ' को है। प्रगतिशील लेखक सघ अन्तर्राष्ट्रीय सस्था है। भारतीय प्रगतिशील लेखक सघ का प्रथम अधिवेशन १९३६ ई० म लखनऊ म मुन्शी प्रेमचन्द्र के सभापतित्व म हुआ दूसरा अधिवेशन कलकत्ता मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सभापतित्व म हुआ ।

सन १९३७ म 'विशाल भारत' म श्री शिवदान सिंह चौहान का 'भारत म प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' नामक निबंध प्रकाशित हुआ जिसम वर्ग संघर्ष क मार्क्सवादी सिद्धान्त के आधार पर साहित्य की परीक्षा परख और गतिमान साहित्यकारो ने कवियो को एकत्र आकर्षित किया ।[1] 'प्रगतिवादी मार्क्सवाद से प्रभावित हैं। जो कवि यथार्थ के क्रान्तिकारी पहलू को पहचान कर समाज क भीतर काम करनेवाली उन समाजवादी शक्तियो के द्वारा किए हुए आदोलनो का उल्लेख करके पूंजीवाद के नाश और निम्नवर्ग की विजय मे पूरी आस्था व्यक्त करता है वह सच्चा समाजवादी यथार्थ चित्रित करता है।'[2]

इस शताब्दी क तीसरे दशक क उपरान्त हमारे राष्ट्रीय जीवन म एक

---

१ नामवर सिंह—आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ—पृ० ५९ ।

२ विजयशकर मल्ल—हिन्दी काव्य म प्रगतिवाद—पृ० ११७–११८

नया परिवतन आ रहा था । देश की मूलभूत समस्याएँ क्रमश उलझती जा रही थी । विदेशी सत्ता की शोषण नीति के कारण राष्ट्रीय विकास के सभी द्वार अवरुद्ध थे । इस भूमिका पर रूसी क्रांति की अप्रत्याशित सफलता न केवल भारत को प्रत्युत अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सघषरत समस्त राष्ट्रों को बहुत दूर तक प्रभावित कर रही थी । निश्चय ही इसीलिए इस युग की राजनीतिक और आर्थिक विचार धारा म वह सहजोन्मुख प्रवत्तियो को प्रधानता देता है । राष्ट्र की इन परिस्थितियो न साहित्यकारो को भी प्रभावित किया ।

कवियो ने शोषक के रूप म साम्राज्यवादी पूँजीवादी, सामतवादी जमीदार साहूकार धनी वग के अत्याचारो निष्ठुरता शोषण का तथा शोषित के रूप म मजदूर किसान दलितवग के दुख का वणन किया है । शोषक वग के विरुद्ध क्रांति का शखनाद करके साम्यवादी रूस का जयगान किया है । दिनकर अचल भगवतीचरण वर्मा नरेन्द्र शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल त्रिलोचन शास्त्री आदि कवियो न पूजीवादी व्यवस्था उखाड फेकने के लिए आवेशमय को गुजरित किया ।

कवि त्रिशूल साम्राज्यवाद स पीडित भारत को देखकर रूस की साम्य व्यवस्था का स्वागत करत है ।[1]

छायावादी कवि साम्यवादी विचारधारा से अछूते नहा रह सके । पतजी प्रगतिशील सघ म तो दीक्षित न हो सके किन्तु रक्त क्रांति को छोडकर मार्क्स वादी विचारो की कितनी सबल अभिव्यक्ति उन्होने युगान्त युगवाणी और ग्राम्या म की है उतनी कोई प्रगतिशीलता म दीक्षित कवि भी नहीं कर सका । निराला ने भी कुकुरमुत्ता बेला अणिमा आदि म मार्क्सवाद का समथन किया है । पतजी मार्क्सवादी दशन को स्वीकार करके साम्यवादी *स्वणयुग का स्वागत भी करते हैं—*

> नवोद्भूत इतिहास भूत सक्रिय सकरण जड चेतन
> द्वन्द्व तक से अभिव्यक्ति पाता युग युग म नूतन ।
> आज अस्त साम्राज्यवाद धनपति-वर्गों का शासन
> प्रस्तर युग की जीण सभ्यता मरणासन्न समापन ।
> साम्यवाद के साथ स्वण युग करता मधुर पदापण ।
> मुक्ति निखिल मानवता करती मानव का अभिनन्दन ॥[2]

---

१ त्रिशूल –साम्यवाद–राष्ट्रीय मन्त्र पृ० २६ ।
२ पत– 'भूतदशन युगवाणी–पृ० २९ ।

साम्यवादी युग स्थापना म साम्राज्यवाद और सामतशाही का विरोध रहेगा। वाष्प, विद्युत रश्मि, वल विविध नान, विनान यन्त्रों का अद्भुत कौशल देने वाला साम्राज्यवाद है। वह प्राचीन संस्कृति का प्रतीक है और आज अपने समस्त साधना के साथ मरणोन्मुख हो रहा है। उसके साथ पूँजीवादी निया भी समाप्त होने को है। साम्राज्यवाद अपनी समस्त विषवह्नि को एकत्र कर अन्तिम रण को उद्यत है। राष्ट्रीयता पर आक्रमण करनेवाले साम्राज्यवाद का नाश अटल है।[1] शोषक वर्ग पर पंत अत्यंत संतप्त होकर नशंस, नरपशु, अत्याचारी, जार, अन्मय मूढ दर्पी, हठी आदि गिनी गिनाई गालियों की उन पर बौछार करते हैं।[2] कवि ने विषम व्यवस्था से पीडित, युग-युग से अभिशापित असभ्य अन्नवस्त्र हीन, जीवन्मृत, आत्मविस्मृत दलित वर्ग का ग्राम्या की 'वह बुड्ढा', 'धोबियों का नृत्य', 'चमारों का नाच' 'कठपुतले' 'श्रमजीवी', व 'आँखें' आदि कविताओं में चित्रण करके उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की है।

केदारनाथ अग्रवाल अवध की धरती पर लहराते हुए अन्न के पौधे फल फूल, वनस्पतियों और नीले आकाश में चमकते हुए चाद तारों के चित्रण में शोषित वर्ग की विजय का शखनाद और डूबते हुए तारों में पूँजीवाद का अवसान देखते हैं।

नगरों में पूँजीपतियों ने मजदूरों को मशीन बना दिया है। कवि के अनुसार किसानों में अपने श्रम के प्रति आस्था जन्म ले रही है। कोयले के प्रतीक द्वारा यह नई चेतना और नई जिन्दगी का चित्र खींचता है। जो कोयले मुर्दा बने हुए मुँह छिपाये रहे थे—वे जिंदगी की नई चिनगारी लगने से खिल के लाल नेत्र जैसे जल उठेंगे।[3] क्रांति से उन्हें डरना नहीं है। बादलों की वज्र हुंकार सुनकर कवि गगनस्पर्शी पर्वत कांपते हैं छोटे छोटे पौधे नहीं। दूसरे शब्दों में क्रांति के नाम से धनी वर्ग को चिंता होती है जन साधारण के लिए वह नव आशा का सन्देश लाती है। केदार का विश्वास है कि जल्दी ही जग बदलने वाला है।[4]

त्रिलोचन शास्त्री की यह धारणा है कि सामाजिक जीवन में परिव्याप्त विषमताओं का एक मात्र कारण है पूँजीवाद। आज मरणोन्मुख पूँजीवाद

---

१ पंत—'साम्राज्यवाद' युगवाणी—पृ० ४६।

२ वही पृ० ६३।

३ केदारनाथ अग्रवाल—युग की गंगा—पृ० ६९।

४ वही पृ० ४।

जन शोषण पर जीवित है। उसी ने शोषण के लिए साम्राज्यवाद और पाशवी वाद को जन्म दिया। वह कुल का अभिमान धन संग्रह करने के पक्ष में है। अतः पूँजीवाद का अन्त करना आवश्यक बन जाता है—

> पूँजीवाद ने महत्त्व नष्ट कर दिया सबका
> जीवन का, जन का समाज का कला का
> बिना पूँजीवाद को मिटाए किसी तरह भी
> यह जीवन स्वस्थ नहीं हो पाता।[1]

पूँजीवाद चूँकि व्यक्तिवादी वृत्तियों पर आधारित रहता है अतः उसमें स्वभावतया शोषण की प्रवृत्ति विद्यमान रहती है। शोषण के कारण समाज के एक महत्त्वपूर्ण वर्ग की महत्ता घट गई है। किन्तु पूँजीवाद की व्यवस्था स्वयं अपने विनाश का कारण है।[2]

शोषित वर्ग की जागरूक चेतना नवीन क्रान्ति के माध्यम से साम्यवादी सिद्धान्तों पर आधारित समाज की स्थापना में सफल होगी। इस क्रान्ति के बीज को अनुकूल भूमि प्रदान करने वाला तत्त्व है आर्थिक वैषम्य। जिस आर्थिक व्यवस्था में पूँजीवादी शोषण का चक्र भयंकर गति से चलता है क्रान्ति के बीज वहीं अंकुरित होते हैं। जब दुर्बल दरिद्र जनता पूँजीपतियों के विलास का बोझ ढोती है जब शोषित और दलित वर्ग सब कुछ सहता हुआ मन ही मन घुटता रहता है तभी क्रान्ति की भावना को समर्थन मिलता है। धनी और रईस महलों में भोग विलास करते गरीब उनकी विलासिता के लिए अपना खून दे रहे हैं। कहीं हजारों जानें भूख में छटपटाती मर जाती हैं और कहीं विलासी लोग अधर पान कर रहे हैं। महाराजा के कुत्ते दूध से नहाते हैं और मजदूरों के बच्चे दाने के लिए तरसते हैं। कोई बच्चा ऊँनी वस्त्रों की गर्मी से व्याकुल है कोई माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़े की रात बिताता है। एक ओर जमींदार और मिल मालिक तेल फुलेल पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं दूसरी ओर गरीब अपनी बहू-बेटी के जेवर बेंचकर सूद के रुपये चुकाते हैं। प्रगतिवादी कविता में समाज के शोषित वर्ग नागरी कृषक श्रमिक का चित्रण ही नहीं है उनके शोषण का लोमहर्षक रूप वैषम्य के रंगों में दिखाया गया है। भगवतीचरण ने भैंसागाड़ी में शोषक वर्ग पर तीव्र रोष प्रकट किया है। भैंसागाड़ी पीड़न और शोषण की प्रतीक है। दिनकर ने कुरुक्षेत्र में पूँजीवादी

---

१ त्रिलोचन शास्त्री–धरती (सन १९४५)–पृ० ८४।

२ वही, " , –पृ० ८४।

समाज व्यवस्था पर भीष्म पितामह के शब्दो म डटकर प्रहार किया है। "आर्थिक वषम्य म धरती क गायक दिनकर को क्राति की ध्वनि सुनाई देती है। [1] इस वषम्य के लिए हिंसात्मक माग की स्वीकृति राष्टीय सघष वाता वरण म पल्लवित हुई। दिनकर न अपनी ओजमय वाणी मे वग वषम्य का उपचार सुनाया है—

रण रोकता है तो उखाड विषदन्त फेंको
वक व्याघ्र भीति से मही को मुक्त कर दो।
अथवा अजा के छागलो को भी बनाओ व्याघ्र
दाँतो म कराल कालकूट विष भर दो
वट की विशालता के नीचे जो अनेक वक्ष
ठिठुर रहे ह उन्हे फलने का वर दो
रस सोखता है जो मही का भीमकाय वक्ष
उसकी शिराएँ तोडो डालिया कतर दो। [2]

इन पक्तियो म उल्लिखित अजा छागल शोषण की चक्की म पिसने वाला सवहारा वग वक और व्याघ्र क्रूर सत्ताधारी पूँजीवादी वग और भीमकाय वक्ष अनक मनुष्यो की जीवन सुविधाओ को अपहरण करने वाले हैं।

युद्ध का कारण भी पूँजीपतियो की धनलिप्सा है। पूँजीवादी वग जन सामान्य का शोषण और अपमान करता है। इस अहकार अन्याय एव शोषण के प्रतिक्रिया रूप म साधारण जन समाज सवहारा वग का हृदय घणा और प्रतिशोध की भावनाओ स भर जाता है और वह अपन हितो की रक्षा के लिए शस्त्र उठा लेता है तो भीषण नरसहार का उत्तरदायित्व उस पर नही पूँजी पतियो पर है। स्थायी और वास्तविक शान्ति की स्थापना केवल साम्यवादी समाज व्यवस्था म ही सभव है। [3]

किसानो के शोषण और किसान आदोलन को दबाने के लिए किए गए अमानुषिक कार्यों और पाशविक कार्यों का प्रतिशोध लेने के लिए दिनकर ने भूषण की भावरगिणा और लेनिन की क्राति चेतना का आवाहन किया है। [4]

रागेय राघव साम्राज्यवादी अत्याचारो के मार्मिक चित्र दन के साथ ही

---

१ दिनकर भविष्य की आहट' हुँकार—प० ७९।
२ दिनकर—कुरुक्षेत्र—प० १०२।
३ दिनकर—कुरुक्षेत्र—प० २२ २३ २४ २५।
४ दिनकर 'कस्मै देवाय —रेणुका—पृ० ३३।

साम्राज्यवादी रक्तपिपासुओं के विरुद्ध भारतीय जनता की क्षमयी पुकार उनके काव्य की एक विशेषता है।[1]

साम्राज्यवाद तथा पूँजीवाद का अंत करने के लिए आरसीप्रसाद सिंह विप्लवगान करते हैं।[2] तो शिवमंगल सिंह सुमन उसके विरुद्ध जिहाद बोल देते हैं।[3] अंचल शोषण के भरे वाद पूँजीवादी नगाना नष्ट करेंगे ऐसी कामना करते हैं।[4] मिलिन्द घोषणा कर रहे हैं कि अब शासन का इतिहास छिन्न भिन्न हो जायगा।[5] गजानन मुक्तिबोध पूँजीवाद का नाश चाहते हैं।[6] *नवयुग के गान और प्रलयसृजन सुमन की सामाजिक चेतना को प्रस्तुत करनेवाली कृतियाँ हैं। उनका यह विश्वास है कि वर्तमान* जीवन में जो विषमताएँ परिव्याप्त हैं उसका एकमात्र कारण पूँजीवादी शक्तियों का अवरुद्ध विकास है। प्रलयसृजन की ओजात्मक रचनाओं में पूँजीवादी समाज को नष्ट कर साम्यवादी समाज निर्माण का आग्रह मिलता है। *'अंचल' भी समता का आग्रह करके श्रमसत्ता स्थापित होने की कामना* करते हैं।[7]

साम्यवादी कवि लालरक्त लालनिशान लाल सत्य की प्रशंसा करते हैं। उनके मतानुसार साम्यवाद का आदर्श राज्य वही है। वह श्रमिक-कृषकों का राज्य जगत् के शोषितों को बल प्रेरणा देगा।[8] शिवमंगल सिंह 'मास्को अब भी दूर है' कविता में सोवियत रूस की जनक्रांति से प्रेरणा प्राप्त कर विश्व के श्रमजीवी वर्ग को जागृत तथा संगठित होने का संदेश दिया है।[9]

---

१ रांगेय राघव–पिघलते पत्थर–पृ० ११३–११४।

२ आरसीप्रसाद सिंह–कलापी (१९३८) –पृ० २०८।

३ शिवमंगलसिंह सुमन–जीवन के गान–पृ० १८।

४ सं० पदमसिंह शर्मा "कमलेश"–रामेश्वर शुक्ल अंचल–धरती की आग–पृ० ७१–७२।

५ मिलिन्द–नवयुग के गान–पृ० ३३।

६ गजानन मुक्तिबोध 'पूँजीवादी समाज के प्रति'–तारसप्तक–भाग १–पृ० ६१।

७ अंचल–लालचूनर–पृ० ६६।

८ (१) नरेंद्र शर्मा की कविताएँ–उद्धृत–आधुनिक कविता की भूमिका–पृ० २८९।

(२) रामविलास शर्मा–जल्लाद की मौत–तारसप्तक भाग १–पृ० २५१।

९ शिवमंगल सिंह सुमन–प्रलय सृजन (१९४४)–पृ० ६६।

भारत म साम्यवाद पनपा किन्तु फासिस्त नीति नही । प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के बीच इटली म मुसोलिनी और जमनी म हिटलर कट्टर राष्ट्रवाद के सकीण दायरे म युद्ध को जीवन और शान्ति को मत्यु का नाम दे रहे थे। लीग आफ नेशस का सदस्य होन हुए भी मुसोलिनी न अबीसिनिया पर हमला किया। वह हमला प्रजातन्त्र सिद्धान्तो पर कुठाराघात था । फासिस्त मान्यताएँ व्यक्तिवाद, समाजवाद, प्रजातन्त्रवाद और शान्तिविरोधी थी । इस मान्यता के अनुसार राष्ट्र के गौरव की कसौटी है शक्ति अजन साम्राज्यविस्तार। इटली क आक्रमण पर उत्तेजित दिनकर ने मध्य न्ध्र म बजी रागिनी कविता लिखी । कवि हिटलर की आलोचना करते हुए लिखता है—

राइन-तट पर खिली सभ्यता हिटलर खडा कौन बोले
सस्ता खून यहूदी का है नाजी निज स्वस्तिक धोले ।[1]

नाजी शक्ति की सहारात्मक मनोवृत्तियो का यथाथ वणन नरेन्द्र शर्मा करते हैं और कवि का विश्वास है कि जनक्राति इस साम्राज्यवाद को भी छिन्न भिन्न करेगी।[2]

राज्य क्राति

राजनीतिक दासता से राष्ट्र का सवतोमुखी अधोपतन हो जाता है। विदेशी शासको के आर्थिक शोषण से देश खोखला बन जाता है और देश की उन्नति म बाधा पहुँचती है तथा पग पग पर अपमान और निंदा सहन करना पडती है। पाश्चात्यो के नए शस्त्रो और संस्कृति के सामने भारत नतसिर हुआ । परन्तु भारतीय सहस्रो वर्षो स स्वातन्त्र्य प्रेमी तथा देशभक्त रहे हैं। उन्हें महान् साम्राज्य चलाने का भी अनुभव था । अतएव परतन्त्रता का जीवन उन्हें दु खमय लगा और वे दासता की शृखलाओ को तोडने का यत्न करने लगे । राज्यक्राति की भावना भारत भर म फलने लगी । राज्यक्राति म विशेषत देशभक्ति की भावना काम करती है। मजिनी ने कहा है कि केवल विशिष्ट वग ने सत्ता सपादित करने के लिए किया हुआ विद्रोह, विद्रोह नहीं है। क्राति सारी जनता के नतिक बौद्धिक एव भौतिक प्रगति का पोषक नव दशन का प्रकटीकरण है।

अंग्रेजी शासन से असतुष्ट होकर देश म स्वतन्त्रता प्राप्ति के हेतु अनेक दल और सस्थाएँ निर्मित हुई । कुछ दल शक्ति का प्रयोग कर अंग्रेजी शासन को उलट देने के पक्ष म रहें और कुछ शान्त एव वधानिक रीतियो स देश को मुक्त

---

१ दिनकर–हुकार–पृ० ५१ ।
२ नरेन्द्र शर्मा–हसमाला–पृ० ४० ।

करने का प्रयास करते रहे। तब अंग्रेजो ने भी भेद नीति तथा दड नीति के द्वारा क्राति का दमन करने की कोशिश की।

इस "क्राति म साम्यवादी लाल क्राति स मिलती जुलती एक प्रगति भारतीय राष्ट्रीयता सग्राम की हुकार भी है जिसको प्रगतिवादी नहीं कहा जा सकता किन्तु छायावादी सूक्ष्म वयक्तिक कल्पनावादी प्रवृत्ति स वह अधिक दूर किन्तु प्रगतिवादी क्राति कामना स अधिक समीप है।" सच म साम्राज्यवाद स मोर्चा लन की कामना जगत हुई है।[1]

राज्यक्राति की प्रेरणा दनेवाले लो० तिलक और गांधीजी थ। महाराष्ट्र म लो० तिलक न पूर्व चिपलूणकर न स्वराज्य स्वभाषा स्वधर्म का प्रचार किया था। उन्होंने अमेरिका और इग्लैण्ड के समान वभव प्राप्त करने की बात चलायी थी।[2] चिपलूणकर स प्रभावित तिलक न चिपलूणकर की आक्रामक भावना प्रधान सस्कृतिनिष्ठ एव राष्ट्रवादी परम्परा का प्रसार किया।[3] उन्होंने स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है की घोषणा की और स्वार्थ त्याग, कर्म निष्ठा धर्य विद्वत्ता[4] आदि गुणो के द्वारा लोगो म उत्साह भरकर ब्रिटिशो के विरुद्ध प्रतिकार के लिए प्रेरणा दी। १५ जून १९०७ ई० के केसरी के अक म तिलक न लिखा कि यदि तस्कर हमारे घर म प्रविष्ट हो जाते हैं और हम उनको बाहर निकाल दन म असमर्थ हैं तो हम निःसकोच होकर घर का दरवाजा बद करके आग लगा देनी चाहिए। ब्रह्मा न भारतवर्ष का राज्य ताम्रपत्र पर लिखकर अंग्रेजो के नाम वसीहत नहीं कर दिया।

म० गांधी न सत्य अहिंसा सत्याग्रह द्वारा राजनीतिक विद्रोह का प्रसार गाँव गाँव म किया फलत सारा देश ब्रिटिश शासको के विरुद्ध सघर्ष के लिए उठ खडा हुआ। गांधीजी के असहयोग आदोलन द्वारा तथा क्राति की चिन गारी से सारे देश म आग सुलग गई। सन १९२९ म जवाहरजी की अध्यक्षता म काग्रेस न स्वाधीनता का घोषणा पत्र मान्य किया, जिससे देश मे एक नई लहर दौड गई।

इसके साथ ही सशस्त्र क्राति दलों ने भी राज्यक्राति के प्रयत्न किए। अर्थात् १९२० के पूर्व ही भारत मे सशस्त्र क्राति की ज्वाला प्रज्वलित हो गई थी। इस क्राति को १९०९ की तुर्की क्राति १९११ की चीनी क्राति और

१ डा० शभुनाथ पाडेय–आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका–प० २८९।
२ विष्णुशास्त्री चिपलूणकर–निबधमाला–प० १०६५।
३ प्रा० नलिनी पडित–महाराष्ट्रातील राष्ट्रवादाचा विकास–प० ५९।
४ प्रा० न० र० फाटक–भारतीय राष्ट्रवादाचा विकास–पृ० ३५।

१९१७ की रूसी क्रांति से विशेष प्रेरणा मिली। क्रान्तिकारियों का युग सन् १८५७ से १९४७ तक माना जाता है। क्रान्तिकारी विचारों का सूत्रपात महाराष्ट्र में १८७६ में वासुदेव बलवंत फड़के के नगर, नासिक, खानदेश के रामजोशी और भीलों की सहायता से ब्रिटिश राज्य के उन्मूलन करने के प्रयत्नों में हुआ और उसका उत्कर्ष महाराष्ट्र में रैंड और आयर्स्ट की हत्याओं में दीख पड़ता है। सावरकरजी के 'अभिनव समाज' की शाखाएँ भारत भर में थी। अलीपुर षडयन्त्र काण्ड, काकोरी काण्ड, मेरठ षड्यन्त्र काण्ड एवं लाहौर काण्ड आदि सशस्त्र क्रान्तिकारियों के प्रयत्नों का भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण स्थान है। गदर पार्टी का कार्य, आजाद हिन्द सेना तथा नाविक विद्रोह ये सशस्त्र क्रान्ति चेष्टाओं में से हैं। आजाद हिंद सेना और नाविक विद्रोह को छोड़कर सशस्त्र क्रांति के प्रयत्नों में मुट्ठी भर लोग सम्मिलित थे, उन्हें जनता का समर्थन नहीं मिला इसीलिए वे असफल रहे। परन्तु 'यह कह देना आवश्यक है कि इन असफलताओं का हमारी राष्ट्रीय सुषुप्त चेतना पर गहरा प्रभाव पड़ा और राष्ट्रीय मनोजगत में इसकी बहुमुखी प्रतिक्रिया हुई।'[1]

सन् १८५७ में अंग्रेज शासकों के विरुद्ध राज्यक्रांति का प्रथम विस्फोट हुआ। १८५७ के विद्रोह को पाश्चात्य इतिहासकार सिपाही बगावत कहते हैं तो भारतीय इतिहासकार उसे स्वातंत्र्य-संग्राम का प्रथम सोपान कहते हैं।[2] अंग्रेजों के अत्याचारों और अन्यायों को रोकने में विप्लव को पूर्ण रूप से सफलता मिली।[3] सन १८५७ के स्वातन्त्र्य समर की साहित्यिक अभिव्यक्ति बहुत कम मात्रा में प्राप्त होती है। भारतेन्दु इस की छाया में पलकर बड़े हुए तो भी उन्होंने विद्रोह के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। भारतेन्दु के बाद भी केवल इने गिने कवियों ने ही विद्रोह के सम्बन्ध में लिखा है। इसका कारण यह हो सकता है कि 'विद्रोह के समय अंग्रेजों की संगठित सैनिक शक्ति का देश में ऐसा आतंक छा गया था कि फिर किसी को विद्रोह करने की तो क्या उसके बारे में कुछ लिखने पढ़ने या कहने-सुनने का साहस न रह गया था। अथवा यह भी संभव है कि विद्रोह के समय ऐसे कवियों का बाहुल्य रहा हो, और

---

१ मन्मथनाथ गुप्त—भारत में सशस्त्र क्रांतिचेष्टा का रोमांचकारी इतिहास पृ० ३३।

२ सावरकर–१८५७ का भारतीय स्वातंत्र्य समर पृ० २। (अनु० प० ग० र० वैशम्पायन)

३ श्री कमलकुमार ठाकुर–भारत में अंग्रेजी राज्य के दो सौ वर्ष पृ०

४ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय–उन्नीसवीं शताब्दी, पृ० ६१।

अंग्रेजों द्वारा किए गए अत्याचारों, अत्याचारों और दमन से एक कवि और उसकी कविताएँ तक दब गई थीं किन्तु हिन्दी के प्रसिद्ध और मान्य कवि विद्वानों की महत्त्वपूर्ण पंक्तियाँ इस विषय में मौन हो रहे।[1] सर्वप्रथम हम सेवक कृत वाग्विलास में विप्लव के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है। कवि ने अपने आश्रयदाता हरिहर सिंह और गौरीशंकर सिंह की वीरता का वर्णन किया है।[2] भारतेन्दु बाबू शिवाजी गिरि माहेश्वरी भूषण मं ज्वालाराय प्रतापनारायण मिश्र प्रभृति आदि १८५७ के विप्लव का वर्णन उल्लेख करते हैं। किन्तु दुर्भाग्यप्रसिद्ध साहित्यिकों का ध्यान साधारण और अज्ञात कवियों ने अपनी भावनाएँ व्यक्त करने में बहुत काम नहीं किया है। उनमें इन विद्रोहियों के प्रति सद्भावनाएँ मिलती हैं उनके गौरवपूर्ण कृत्यों का उल्लेख मिलता है।[3] सुभद्राकुमारी चौहान की झाँसी की रानी प्रसिद्ध कविता १८५७ की वीरांगना पर लिखी हुई है। हमारे प्रमुख कवि १८५७ के सम्बन्ध में मौन और उदासीन रहे तो इंग्लैंड के प्रगतिशील कवि अर्नेस्ट जोन्स ने भारतीय विद्रोहियों की प्रशंसा में पद लिखे।[4]

सन् १८५७ के बाद १९०७ तिलक युग के प्रारम्भ तक राजनीतिक क्षेत्र में कुहासा छा गया था। इसके बाद उत्साह, वीरता, धैर्य तथा युयुत्सता के दर्शन होने लगे। अंग्रेजी सत्ता को उखाड़कर फेंकने के लिए प्रेरणा देनेवाली ढेरों कविताएँ लिखी गई। साम्राज्यवाद को मानवी संस्कृति की एक विकृत कल्पना[5] मानकर स्वाधीनता का अपहरण करानेवाले साम्राज्यवाद को समाप्त करने का उद्घोष इन कविताओं में मिलता है।

सुभद्राकुमारी चौहान, नागार्जुन, दिनकर, नवीन, मैथिलीशरण गुप्त, बच्चन, निराला, श्यामनारायण पाण्डेय, सोहनलाल द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, नरेन्द्र शर्मा आदि कवियों ने राज्यक्रांति के गीत गाए हैं। उनमें से 'माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान आदि पर किसी न किसी रूप में फ्रांसीसी क्रांति का प्रभाव है।'[6] दिनकर ने राज्यक्रांति का प्रचार आवेशमय वाणी में

---

१ डा० रामविलास शर्मा—सन् सत्तावन की क्रांति, पृ० २१।

२ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—उन्नीसवीं शताब्दी—पृ० १५३।

३ वही पृ० १५८–१५९।

४ सुभद्राकुमारी चौहान—झाँसी की रानी, मुकुल—पृ० ६५।

५ डा० रामविलास शर्मा—सन् सत्तावन की राज्यक्रांति में उद्धृत, पृ० २१।

६ न० के० केलकर—संस्कृति संगम—पृ० ८१५।

७ डा० रवीन्द्र सहाय हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, छायावाद युग, पृ० १७९।

किया है। 'ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय जनता के निर्मम सपात स उद्वेलित होकर दिनकर की काव्य चेतना अग्नि की चिनगारियो से अपने स्वप्न सजा रहा था आग बढी, वह स्वप्न जिसम सिधु का गजन और प्रलय की हुकार थी, जहाँ बँधा तूफान रास्ता पाने के लिए विकल था, जहाँ मौन हाहाकार विश्व को हिला देने को व्यग्र हो रहा था। अब दिनकर 'नवल उर म विपुल उमग भर, कल्पना की मधुरिमा पुलकित राजकुमार नही रह गए थे, अब तो वह क्रांति के विभाव स आलोकित ज्योतिषिर थे।'[1]

कवि क्रांतिकारी दिल की अवस्था का वणन करके उसके सकल्प का वणन करता है। क्रांतिकारी का भी दिल होता है दिल म प्रेम अनुभूति होती है। वह भी किसी को चाहता है—किसी पर अपने को न्याछावर करना चाहता है। यमन उसके हृदय मे गुदगुदी लाता है अरमान उसके हृदयाकाश म कभी रिमझिम कर उठता है सौंदय चुम्बक की तरह उसकी आँखो को भी पकड लेता है। परन्तु उसी समय उसके कानो म दूसरी रागिनी बज उठती है। उसका जीवन समर्पित है। क्रांति के दारुण कठोर और निष्ठुर आह्वान पर अपनी समस्त कल्पनाओ और आशाओ के ससार को मिटाकर युद्ध की भरवगान गाने की घोषणा करता है—

फेंकता हूँ लो, तोड मरोड अरी निष्ठुरे बीन के तार
उठा चाँदी का उज्ज्वल शख फेंकता हूँ भरव हुकार
नही जीते जी सकता देख विश्व म झुका तुम्हारा भाल
वेदना मधु का भी कर पान आज उगलूँगा गरल कराल।[2]

आजाद हिन्द सेना के शौय और बलिदान की कहानी सामधेनी की सरहद के पारसे और 'फ्रगी डाला म तलवार' नामक कविताओ म गाई है। 'इन कविताओ का उद्देश्य प्रशस्ति मात्र नही जाता के हृदय म क्रांति की आग उत्पन्न करना था। यह आग आजाद हिंद सेना के एक साधारण सिपाही की वाणी से फूटी है।'[3] जन्मभूमि से दूर किसी वन सरिता किनारे आजादी के नारे लगाते हुए अनेक दुख सहन कर स्वातत्र्य के महायज्ञ म अपना हविष्य चढानेवाले इन सनिको का सदश था—

यह झण्डा जिसको मुर्दे की मुट्ठी जकड रही है
छिन न जाय इस भय स अब भी कसकर पकड रही है

१ डा० सावित्री सिन्हा—युगचारण दिनकर—पृ० ८८।
२ दिनकर—हुकार—पृ० १०।
३ डा० सावित्री सिन्हा—युगचारण दिनकर—पृ० ९०।

अंग्रेजी द्वारा किए गए अतिचारों, हत्याकांडों और दमन में एक कवि और उसकी कविताएँ कहाँ खो गईं, पता नहीं, किन्तु जितने भी प्रसिद्ध और मान्य कवि विद्वान् इसी महत्त्वपूर्ण घटना के विषय में मौन हो रहे हैं।[1] सर्वप्रथम हम सबक पूर्व वाजिदअली के विषय में गम्य में उल्लेख मिलता है। कवि ने अपने आश्रयदाता नगेन्द्र सिंह और गौरीशंकर सिंह की वीरता का वर्णन किया है।[2] रामराज चारण जिनकी गिनती मारवाड़ी भूषण में ज्वालाराय प्रतापनारायण मिश्र प्रभृति आदि १८५७ के विप्लव का वर्णन करते हैं। किन्तु इतिहासप्रसिद्ध साहित्यिकों का राष्ट्र साधारण और अपनी कविता। अपनी भावनाएँ प्रकट करने में मनोरंजन के काम लिया है। उस समय विद्रोहियों के प्रति सद्भावनाएँ मिलती हैं उनके शौर्य पूर्ण कृत्यों का उल्लेख मिलता है।[3] सुभद्राकुमारी चौहान की झाँसी की रानी प्रसिद्ध कविता १८१७ की घोषणा पर लिखी हुई है। हमारे प्रमुख कवि १८५७ के सम्बन्ध में मौन और उदासीन रहे तो इंग्लैंड के प्रगतिशील कवि अर्नेस्ट जोन्स ने भारतीय विद्रोहियों की प्रशंसा में पद्य लिखे।[4]

सन् १८ ७ से बाद १९०७ तिलक युग के प्रारम्भ तक राजनीतिक क्षेत्र में कुहासा छा गया था। इसके बाद उत्साह, वीरता, धैर्य तथा युयुत्सता के स्वर होने लगे। अंग्रेजी सत्ता को उखाड़कर फेंकने के लिए प्रेरणा देनेवाली ढेरों कविताएँ लिखी गई। साम्राज्यवाद को मानवी संस्कृति की एक विकृत कल्पना[5] मानकर स्वाधीनता का अपहरण करनेवाले साम्राज्यवाद को समाप्त करने का उद्घोष इन कविताओं में मिलता है।

सुभद्राकुमारी चौहान, नवीन, दिनकर, नवीन, मैथिलीशरण गुप्त, बच्चन, निराला, श्यामनारायण पाण्डेय, सोहनलाल द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, नरेन्द्र शर्मा आदि कवियों ने राज्यक्रांति के गीत गाए हैं। उनमें से 'माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान आदि पर किसी न किसी रूप में फ्रांसीसी क्रांति का प्रभाव है। दिनकर ने राज्यक्रांति का प्रचार आवेशमय वाणी में

१ डा० रामविलास शर्मा–सन् सत्तावन की क्रांति, पृ० २१।
२ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय–उन्नीसवीं शताब्दी–पृ० १५३।
३ वही पृ० १५८–५५।
४ सुभद्राकुमारी चौहान–'झाँसी की रानी' मुकुल–पृ० ६५।
५ डा० रामविलास शर्मा–सन् सत्तावन की राज्यक्रांति में उद्धृत, पृ० २१।
६ द० के० केलकर–संस्कृति संगम–पृ० ८१५।
७ डा० रवीन्द्र सहाय हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, छायावाद युग, पृ० १७९।

किया है। 'ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय जनता के निकट के मंथन में उद्वेलित होकर दिनकर की क्रान्ति चेतना अग्नि की चिनगारियों से अपने स्वप्न संसार को आग लगा दी। वह स्वप्न जिसमें सिंधु का गर्जन और प्रलय की हुंकार था जहाँ बैठा तूफान रास्ता पाने के लिए विकल था जहाँ मौन हाहाकार विश्व को हिला देने को व्यग्र हो रहा था। अब दिनकर नवीन उर में विपुल उमंग भरे कल्पना की मधुरिमा पुलकित राजकुमार नहीं रह गए थे अब तो वह क्रांति के विप्लव में आलोकित ज्योतिर्धर थे।[1]

कवि क्रान्तिकारी दिल की अवस्था का वर्णन करके उसके संकल्प का वर्णन करता है। क्रान्तिकारी का भी दिल होता है, दिल में प्रेम अनुभूति होती है। वह भी किसी को चाहता है—किसी पर अपने को न्योछावर करना चाहता है। वसन्त लेकर हृदय में गुदगुदी लगाता है, बरसात उसके हृदयाकाश में कभी रिमझिम कर उठता है, सौन्दर्य चुम्बक की तरह उसकी आत्मा को भी पकड़ लेता है। परन्तु इसी समय उसके कानों में दूसरी रागिनी बज उठती है। उसका जीवन समर्पित है। क्रान्ति के परम कठोर और निष्ठुर आह्वान पर अपना समस्त कल्पनाओं और आकांक्षाओं के संसार को मिटाकर युद्ध की भयावन गान की घोषणा करता है—

फेंकता हूँ लो तोड़ मरोड़ अरी निष्ठुरे बीन के तार
उठा चाँदी का उज्ज्वल शंख फूँकता हूँ भैरव हुंकार
नहीं जीते जी सकता देख विश्व में झुका तुम्हारा भाल
वेदना मधु का भी कर पान आज उगलूँगा गरल कराल।[2]

आजाद हिंद सेना के शौर्य और बलिदान की कहानी सामधेनी की 'सरहद के पार' और 'फलेगी डालों में तलवार' नामक कविताओं में गाई है। "इन कविताओं का उद्देश्य प्रशस्ति मात्र नहीं, जनता के हृदय में क्रान्ति की आग उत्पन्न करना था। यह आग आजाद हिन्द सेना के एक साधारण सिपाही की वाणी में फूटी है।[3] जन्मभूमि से दूर किसी वन सरिता किनारे आजादी के नारे लगाते हुए अनेक हँस हँसकर स्वातन्त्र्य के महायज्ञ में अपना हविष्य चढ़ानेवाले इन सैनिकों का संदेश था—

यह खड्ग जिसको मुर्दे की मुट्ठी जकड़ रही है
छिन न जाय इस भय से अब भी कसकर पकड़ रही है

१ डा० सावित्री सिन्हा—युगचारण दिनकर—पृ० ८८।
२ दिनकर—हुंकार—पृ० १०।
३ डा० सावित्री सिन्हा—युगचारण दिनकर—पृ० ६०।

थामने इस शपथ को बलि का कोई क्रम न रुक सकेगा
चाहे जो हो जाय, मगर, यह झंडा नही झुकेगा
इसके नीचे ध्वनित हुआ 'आजाद हिन्द' का नारा
वही देश भर के लोहू की यहा एक हो धारा ।[1]

सचमुच दिनकर के रेणुका, हुंकार, सामधेनी की कविताओ मे दहकते अगारो का तेज है । हुंकार की निम्बरि 'आग की भीख' सामधेनी की 'दिल्ली और 'मास्को' आदि कविताएँ क्रांति को प्रेरणा देती हैं ।

बच्चन ने भी 'बगाल का काल' मे फ्रेंच राज्यक्रांति का उल्लेख करके चेतावनी दी कि अत्याचार, अन्याय, मनमानी तो होगी ही और इनसे ही क्रांति का ही पथ प्रशस्त होगा । राजनीतिक आन्दोलनो पर तो अनेक गीत लिख गए हैं । बच्चन जस व्यक्तिवादी कवि जो व्यक्तिगत निराशा से व्यथित होकर जल जाऊँगा अपने कर से रख अपने ऊपर अंगार' का निश्चय प्रकट कर रहे थे वे भी राष्ट्रीय संघर्ष का जयनाद करके 'समय है मोर्चा लेने के लिए ललकारते हैं ।[2]

भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम का रण अग्रसर हो रहा था । चारों ओर जागृति परिव्याप्त थी । राष्ट्रीय चेतना धीरे धीरे विकसित होते अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच रही थी । ऐसे ज्वारमय क्षणों में आओ क्रांति बताएँ ले लूँ अनाहूत आ गयी भली कहकर नवीन ने क्रांति का आवाहन किया है ।[3] हरिकृष्ण प्रेमी इस महान विप्लव के समय ललित कलाओं में अनुराग करना नहीं चाहते । कवि आज वीणा की झनकार नहीं खड्ग की झनकार से मनोरंजन करना चाहते हैं ।[4] सोहनलाल द्विवेदी ने क्रांति को प्रोत्साहन दिया है । मातृ भू के प्रति अपना कर्तव्य निभाने के लिए देश की आशा एव राष्ट्र के प्रणेता पायकुल के रक्तध री युवकों को प्रेम और पत्नी छोड़कर पांचजन्य को फूँकना चाहिए और रणगमन करना चाहिए । रण का निमंत्रण आया है तो आजादी के दीवानो को कवि सदेश देता है—

रक्तपात विप्लव अशान्ति औ पायरता करता चल
जननी की लोहे की कडियाँ रह रह कर सरकाता चल ।[6]

---

१ दिनकर—सन्देश के पार से'—सामधेनी—पृ० ७८ ।
२ बच्चन—आकुल अतर—गीत सख्या १४ ।
३ नवीन—क्रांति प्रलयकर २२ वी कविता—छन्द ३ (१९३१)
४ हरिकृष्ण प्रेमी—अग्निगान (प्र० स० १९४१)—पृ० १३ ।
५ सोहनलाल द्विवेदी—अनुमय भैरवी पृ० ७८ ।
६ सोहनलाल द्विवेदी—आजादी के फूल पर—भैरवी—पृ० ६५ ।

सोहनलाल द्विवेदी ने अनेक कविताओं में क्रांति का संदेश दिया है।

सन १९३९ में राष्ट्रीय कांग्रेस ने मंत्रिपदों से त्यागपत्र देकर साम्राज्यवाद से टक्कर लेने का संकल्प किया और काव्य में उसकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगी। एक ओर विश्वयुद्ध की भीषणता और दूसरी ओर राष्ट्रीय संग्राम का दृढ़ निश्चय कविता को प्रेरित करने वाला था। श्री पुरुषोत्तम विजय साम्राज्यवाद से मोर्चा लेने के लिए प्रस्थान करते हुए गाते हैं—

> आज नाश की घिरी घटाएँ आज देश पर संकट छाया
> हुई पुकार वीर मर्दों की मुझे निमंत्रण रण का आया।[1]

उधर शासन का दमन चक्र वेग गति से चलने लगा और इधर देश में राजनैतिक चेतना बलवती होने लगी। जनता में राष्ट्र पर से दासता का जुआ उतार फेंकने की एक प्रबल उमंग जाग्रत हुई। युवक क्रांति का सहारा ले चुके थे। तत्कालीन कवि भी अपनी लेखनी इसी रंग में रंगने से न रोक सके। रांगेय राघव 'स्तालिनग्राद' के युद्ध का सम्बन्ध भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम से जोड़कर क्रांति के लिए युद्ध का आह्वान देते हैं।[2] तो मैथिलीशरण राक्षसों के बंधनों में से भारत लक्ष्मी को मुक्त करने के लिए शूरों की सेना सज्ज होने का संदेश देते हैं।[3] माखनलालजी की कविताएँ बड़ी प्राणवान ओजपूर्ण और प्रभावपूर्ण होती हैं। कवि का कहना है कि विद्रोहियों का एक सिर कट जाय तो उसके स्थान पर सौ गुने तत्काल हो जाएँगे। अर्थात एक क्रांतिकारी के बलिदान से हजारों क्रांतिकारी निर्माण हो जाएंगे।

नरेंद्र शर्मा आजाद हिंद सेना की प्रशस्ति करते हुए दिल्ली की ओर उसे बढ़ने के लिए कहते हैं—

> सुनो हिन्दुस्ता की हुंकार बढ़ो आगे खींच तलवार
> खून को बुला रहा है खून करो दुश्मन की चीर करतार
> चलो दिल्ली। बोलो जयहिन्द। सुनो हिन्दुस्ता की हुंकार।[5]

हिंदी कविता के समान ही तत्कालीन मराठी कविता में १८५७ के विप्लव का वर्णन नहीं मिलता। वस्तुतः १८५७ के विद्रोह में भाग लेनेवाले नानासाहब तात्या टोपे आदि मराठा वीर प्रसिद्ध थे, किन्तु तत्कालीन कवि इन वीरों

---

१ 'रणप्रयाग' अंगारा १९४१, पृ० १०१।
२ रांगेय राघव–अजेय खंडहर १९४६ ई० पृ० १९६।
३ मैथिलीशरण गुप्त–साकेत–पृ० २९७।
४ माखनलाल चतुर्वेदी– विद्रोह हिमकिरीटिनी–पृ० ६०।
५ नरेन्द्र शर्मा [illegible]–पृ०४७।

तथा विद्रोह के विस्फोट के सम्बन्ध में मौन रहे हैं। भारतेंदु के समान ही आधुनिक मराठी कविता के प्रवतक कवि केशवसुत ने इस पर कुछ लिखा नहीं। दासताबोध और स्वतंत्रता का प्रश्न केशवसुत ने उठाया है परंतु १८५७ के सम्बन्ध में उनकी लेखनी मौन रही है।

बलिदान की भावना

क्रांति के लिए बलिदान आवश्यक है और शीश दान अपने आप में वीर भाव का सबसे प्रबलतम रूप है। *शीशदान के प्रति उत्साह उत्साह का चरमोत्कर्ष है* यह बलि जाने की भावना आधुनिक युग में गांधीवाद के अध्यात्म की देन है। नर का सबसे बडा गौरव है बलिदान।[1] इन बलि पथियों की वीर भावना में और प्राचीन वीर भावना में अत्यंत स्पष्ट अंतर है। इसमें विरोधी का सहार करने का उत्साह नहीं है। इसमें आक्रमण की भावना न होकर बलिदान की भावना है और यह मूलत अहिंसा का प्रभाव है। वर्तमान राष्ट्रीय कविताओं में बलिदान के प्रति जो उत्कट भाव मिलता है उसके मूल रूप में पराजय की यह अप्रत्यक्ष स्वीकृति असदिग्ध है। इस युग की राष्ट्रीय कविता का यह एक सार्वभौम भाव है। भूषण और लाल जहाँ शिवाजी तथा छत्रसाल के विजय पराक्रम का गौरव गान करते हैं उनके द्वारा शत्रु के सहार तथा दमन के उल्लास और गर्व भरे चित्र अंकित करते हैं वहा माखनलाल चतुर्वेदी बलिशाला ही हो मधुशाला का तराना छेडते हैं शीशदान की महिमा गाते हैं।[2]

बीसवी शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की प्रबल सत्ता से सघर्ष और सग्राम करनेवाले राष्ट्र के पास शास्त्रास्त्र नहीं थे। असहाय और निशस्त्र राष्ट्र के पास आत्मबल एवं बलिदान ही अस्त्र था।[1] कृष्ण ने आत्मा के अमरत्व की प्रतिष्ठा की थी और उन्होंने मारने मरने की शिक्षा भारत (अर्जुन) को दी थी। परंतु इस भारत के पास तो मारने की शक्ति न थी मरने की थी—मरना भी तो स्वर्ग का ही एक मार्ग गीता-गायक ने बताया था— हतो वा प्राप्यसि स्वर्ग, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम। इस प्रकार भारत के लिए मरना ही धर्म हो गया। मरने में ही उसे उत्साह ओज और उत्तेजन मिला। हिंसक युद्ध में मारकर मरना एक वीर कर्म था इस अहिंसक युद्ध में अपने अधिकार के देश के लिए बिना मारे मर जाना एक वीर कर्म

---

१ डा० रागेय राघव—आधुनिक हिंदी कविता में विषय और शैली—पृ० २१०।
२ डा० नगेन्द्र—आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ० २५।

माना गया और नूतन क्षात्र धर्म प्रतिष्ठित हुआ।[1] ये अहिंसक वीर गीत गाते थे—

> अभी सुना है मरने का नाम जिन्दगी है
> सर से कफन बाँधे कातिल जो ढूँढते हैं
> सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
> देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।

और बलिदान के लिए प्रस्तुत हो जाते थे। इन वीरों की आत्मबलिदान की भावना आशापूर्ण विश्वास से हीन नहीं थी।

वर्तमान युग के कवियों की राष्ट्रीय कविताओं में बलिदान की भावना का स्वर विशेष रूप में उद्घोषित होता है। देशभर में राजनैतिक हलचल हो रही थी। ज्यों-ज्यों शासन का दण्ड कठोर होता जाता था त्यों-त्यों देशवासियों में राजनीतिक क्रांति की भावना तीव्रतर होती जा रही थी। गाँव गाँव तथा नगर-नगर से आजादी के परवाने सिर पर कफन बाँधे झूमते झूमते बलिपथ पर अग्रसर हो रहे थे। यही बलिदान की उमंग ही इस युग की कविताओं की प्रमुख विशेषता है। हिन्दी के रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, नाथूराम शंकर शर्मा', त्रिशूल, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि ने बलिदान के गीत गाये हैं। हिन्दी कवियों में बलि का गान सुनाकर बलि होने की अभिलाषा करनेवाले माखनलाल चतुर्वेदी बलिदान और आत्मसमर्पण के बलिदानवादी राष्ट्रीयता के कवि हैं। उनके गीतों में विजय का उत्साह नहीं बलिदान का उत्साह है।[2] किसी भी अन्य राष्ट्रीय कवि की रचना में बलिदान भावना का इतना मर्मस्पर्शी और व्यापक रूप देखने में नहीं आता। उनके काव्य का मूल स्रोत ही बलिभावना है। पराधीन राष्ट्र की प्रत्येक समस्या का समाधान बलिदान में है। कवि भक्ति में प्रेम में कला में साहित्य में सर्वत्र एक बलि की भावना को ही मुखरित देखना चाहता है। कवि ने 'तिलक', 'मरण त्योहार', 'विद्रोह', 'बलिपंथी से', आदि कविताओं में बलि की महिमा वर्णित की है। बलिदान की सर्वोत्तम कविता है 'पुष्प की अभिलाषा'। 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध स्वत्व है' यह लो०

---

१ सुधीन्द्र–हिन्दी कविता में युगान्तर–पृ० २००।

२ डा० रामखिलावन तिवारी–माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्ति और काव्य–

मार्मिक व्यंजना कवयित्री की निम्नलिखित पंक्तियों में अवलोकनीय है—

न होने दूँगी अत्याचार
चलो, मैं हो जाऊँ बलिदान
मातृ-मंदिर में हुई पुकार
चढ़ा दो मुझको हे भगवान ।[1]

महाप्राण निराला मातृभूमि के चरणों पर अपनी बलि देकर जीवन का सफल श्रेय पाने की इच्छा करते हैं। किंतु एक व्यक्ति के बलिदान से मातृभू का बंधन-विमोचन नहीं हो सकता इसलिए कवि देश पर मर मिटने के लिए दीवानों का निमंत्रण करता है। इस बलिदान में भी निराला भेड़ बकरियों के जैसा बलिदान पसंद नहीं करते। भय की भीरु प्रवृत्ति में मातृभूमि को स्वतंत्र करने की शक्ति कहाँ थी? उसके लिए सिंह सम निर्भीकता और शक्ति चाहिए। कवि सिंह के वीरत्व का आवाहन करता है और उसे आत्म गौरव का संदेश देकर देश की सच्ची मुक्ति के लिए सजग होकर बलि होने को प्रेरित करता है।[2] बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' अपनी ओजस्वी वाणी में बलिदान का संदेश भारतीय जन समाज को देते हैं। कवि की पंक्तियाँ कितनी ही प्राणवान और सशक्त हैं—

बज चल बज चल, हो मतवाले तू बलिवालों के पुंज
देख कहीं न लुभावें तुझको यह जीवन का कुंज,
मधुर मृत्यु का नृत्य देखकर दो लग जा ताल
अपना शीश निछावर कर दे पूरी माँ की माल,
है जीवन अनित्य, कर लेने दे तू मोहक बंध
कर दे पूरा आत्म निवेदन का तू आज प्रबंध ।[3]

अभियान गीत

बलिपंथी बलिदान के गीतों के साथ अभियान गीत भी गाते थे। जब राष्ट्र के जीवन में स्वराज्य की विराट हलचल हो रही हो तब जन के प्रतिनिधि कवियों की काव्य वीणा पर राष्ट्रीय चेतना की झंकृतियाँ उठना सहज स्वाभाविक है। समस्त राष्ट्र का रूप और ओज इन कवियों के कण्ठ में मुखरित हो रहा था। उस समय के पत्र पत्रिकाएँ इन गीतों से भरी पड़ी हुई हैं।

---

१ सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल—पृ० ११३।
२ निराला—गीतिका—पृ० ५५।
३ बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' कुंकुम (प्र० सं०)—पृ० ८१

हिन्दी कविता में जागरण एवं अभियान का नाद भी गूँजा है। जयशंकर प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में अलका द्वारा गाई गई निम्न पंक्तियों में स्वतंत्रता की ओर बढ़ने का आह्वान मुखरित किया है—

> हिमाद्रि तुंग शृंग से
> प्रबुद्ध शुद्ध भारती
> स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
> स्वतंत्रता पुकारती—
> अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
> प्रशस्त पुण्य-पंथ है—बढ़े चलो बढ़े चलो।[1]

जयशंकर प्रसाद के समान ही हिन्दी के अन्य प्रसिद्ध कवि सोहनलाल द्विवेदी, श्यामनारायण पाण्डेय आदि ने अभियान गीतों की रचना की है। सोहनलाल द्विवेदी के 'भैरवी' में 'प्रयाणगीत', 'तैयार रहो', 'पथगीत'[2] तथा 'पूजा गीत' में 'आज युद्ध की रात' आदि अभियान गीत प्रसिद्ध हैं।[3] श्यामनारायण पाण्डेय ने 'जौहर' में प्रेरणादायी गीत लिखे हैं। इन गीतों में आग, हुंकार, तिरस्कार एवं ब्रिटिश साम्राज्य सत्ता से संघर्ष करने के भाव विद्यमान हैं।

अभियान गीतों के उदाहरण कम देने का कारण यह है कि उन में केवल संघर्ष करने, लड़ने तथा आगे बढ़ने की भावनाओं की ही पुनरावृत्ति है। इन गीतों में युद्ध का वातावरण ध्वनित होता है। इन गीतों में उत्साह, वीरता और बलिदान का मंत्र था। अतीत युग में हिन्दी के चारण गीतों ने जनता को युद्ध के लिए जगाकर संघर्ष करने की प्रेरणा दी वही कार्य इन गीतों ने आधुनिक युग में किया है। इन गीतों को गानेवाले वीर युवक और देशभक्त वीर उत्साह से भरकर अपने देश के लिए आत्म समर्पण करने के लिए कटिबद्ध हो जाते थे।

कीर्ति काव्य

राष्ट्र के अभ्युदय तथा गौरव के हेतु असंख्य राष्ट्रप्रेमी राष्ट्रहित का संकल्प लिये अतिशय परिश्रम एवं असीम त्याग करते हैं। इनके प्रति समाज वन्दन करता है। वह इन वीरों की पूजा करता है। वीर पूजा की भावना का जन्म हृदय की श्रद्धा से होता है। जब व्यक्ति की श्रद्धा जाति और राष्ट्र

---

१ प्रसाद–चन्द्रगुप्त–चतुर्थ अंक–पृ० १७७।
२ सोहनलाल द्विवेदी–भैरवी–पृ० ११९–१२०–१२१–१२२–१२३–१२४।
३ सोहनलाल द्विवेदी–पूजागीत–पृ० ५९–६०।

के लिए प्राणोत्सग करने वाले वीर के प्रति होती है तो उसे वीर पूजा कहा जाता है। इन वीरों की स्मृतियां देश की सूखी धमनियों मे उष्ण रक्त का सचार कर जनता को आत्मोत्सग की प्रेरणा देती हैं। दिव्य व्यक्तित्व का विश्व म आदर एव सम्मान किया जाना है क्योंकि अपने युग की जातीय परिस्थितियो म जाति का प्रतिनिधित्व वह करता है अथवा भावी युग के लिए आदश रूप म ग्रहीत होता है। आलोच्य काल म वीर पूजा की भावना का सहज कारण यह था कि इस काल मे जातीय चेतना का स्फुरण अधिक था।

उन्नीसवी शताब्दी के तीसरे चरण तक विशेष रूप स राष्ट्र पुरुषो और दिव्य व्यक्तित्व का गायन नही किया गया। इसका कारण यह है कि केवल देवताओ अथवा देवियो के प्रशस्ति की प्रथा थी। सामान्य मनुष्य के कार्यों अथवा व्यक्तित्वो की सराहना कविता द्वारा करना हेय माना जाता था। परमात्मा को छोडकर मर्त्य मानव की प्रशसा के गीतो का गायन करना भारतवष म लोगो को अनुचित लगता था। ऐतिहासिक युग म राजा महाराजाओ की प्रशसा धन लालसा अथवा कीर्ति के कारण की गई। पाश्चात्य सपक स काव्य के प्रति हमारा दृष्टिकोण बदला और हम वीरो के प्रशस्ति गीत गाने लगे। ब्रिटिश शासन के उन्मूलन के लिए भारतीय कणधारो ने जिस त्याग, तपस्या कष्ट सहिष्णुता, विवेकशीलता आचरण की शुद्धता, एकनिष्ठता, सतत जागरूकता चिन्तन, मनन एव सकल्प का ग्रहण किया था उसस कवि प्रभावित थ। कवियो न उनकी स्तुति अनेक कविताओ मे की है।

आधुनिक कविताओ म तिलक गोखले, गांधी, स्वामी दयानन्द, भगतसिंह विद्यार्थी आजाद, सुभाषचद्र बोस जवाहरलाल नहरू आदि के साथ-साथ १८५७ के विद्रोही वीरो के कीर्ति-गान की प्रवत्ति स्पष्ट दिखायी देती है। इनम तिलक और गांधी की लोकप्रियता अधिक है। इन युग पुरुषो और १८५७ की वीरागना झांसी की रानी की प्रशसा जनवादी गीतो म भी प्राप्त होती है। यहाँ हम प्रसिद्ध व्यक्तियो के प्रशसा गीतो के सबध म देखेंगे।

म० गांधी पर हिन्दी म अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं।[1] गांधीजी के आगमन स अनक शताब्दियो से जो भारतीय जीवन तथा मानस मे एक प्रकार की वराग्य तथा कापण्य छाया हुआ था वह तिरोहित हुआ।

---

१ द्विवेदीजी द्वारा सपादित गांधी अभिनदन ग्रन्थ" (सन् १९४४) म हिन्दी, तलगू मलयालम कन्नड अगरेजी, चीनी आदि भाषाओ के कवियो की कविताएँ सग्रहीत हैं इससे गांधीजी की लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है।

जिस प्रकार सरोवर के ऊपर का शैवाल हटा देने से नीचे का निमल जल दिखाई देने लगता है उसी प्रकार मध्ययुगीन जाडय की सीमाओ तथा कुहाओ से मुक्त होकर भारतीय चेतना का उज्ज्वल मुख निरखकर म० गाँधी के प्रयत्नो द्वारा प्रत्यक्ष होने लगा। गांधीजी इस युग के पुरुषोत्तम, मानवता के प्रकाश स्तम्भ और भारतीयता के प्राण थे। वे युगातकारी रूप म देश म प्रकट हुए और उनके व्यक्तित्व ने देश को पराधीनता और असहाय अवस्था स उठा कर स्वतन्त्रता की भूमि पर खडा किया। ईसा और बुद्ध की परम्परा म गिने जानेवाले बापू ने सदव जगत के कल्याण का ही चिन्ता भार वहन किया। हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठित कवि पत सियारामशरण गुप्त नवीन दिनकर बच्चन, नरेन्द्र, सुमन आदि ने गाधीजी के जीवन मरण को लेकर कविताएँ लिखी है।

पतजी ने बापू को नइ सस्कृति के दूत' ध्रुववीर दलित देश के दुदम नेता आत्मशक्ति से जाति के नव का जीवन बल प्रदान करने वाले के रूप म देखा है। रामनरेश त्रिपाठी ने भ्रमणशाली पथिक के रूप म गांधी का चित्रण किया है।[3] सोहनलाल द्विवेदी ने प्रभाती की उपवास, 'गाँधी तथा भरवी की युगावतार गाँधी' आदि कविताओ म गांधी के जीवन पर तथा व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है। दिनकर गांधीजी के व्यक्तित्व स प्रभावित होकर लिखते हैं—

> तलवार शम स सकुचाकर
> अगार बर्फ बन जाते
> लगते थे पद चाटने सिंह
> घर के पालतू हरिण जसे।

नरेन्द्र शमा ने हसमाला की गाधीजी कविता म अमत सत्य के अभिलाषा गाँधीजी का वणन किया है।[5] उसके साथ ही उनकी महानता के वणन के लिए "रक्तचन्दन' खडकाव्य लिखा। पत और बच्चन की 'खादी के फूल रचना गाधी जीवन का दिग्दशन करता है परन्तु इस रचना म काव्य सौन्दय बिल्कुल नही है। माधव शुक्ल न जागत भारत की गाँधीशरण' गाँधीस्तव

---

१ पत– बापू युगवाणी–प० १३।
२ पत–ग्राम्या–महात्माजी के प्रति, प० ५२–१३।
३ रामनरेश त्रिपाठी–पथिक, प० ४७।
४ दिनकर 'बापू, पृ० ५३।
५ नरेन्द्र शमा 'गांधीजी' हसमाला प० ६०।

"गाधी गुणानुवाद जादि कविताओ म गांधीजी के गुणा का गान किया है और उनके प्रति श्रद्धा प्रकट की है। माखनलाल चतुर्वेदी ने गांधीजी की भावात्मक अभिव्यक्ति और उनके प्रति आदर हिमकिरीटिनी की 'निःशस्त्र सेनापति" कविता म व्यक्त किया है।

सियारामशरण गुप्त की बापू रचना प्रसिद्ध और सबमे अधिक पठित रचना है। महात्माजी क घमप्राण व्यक्तित्व का भूमण्डल तथा मानव इतिहास की पष्ठभूमि म रखकर उस दष्टि स परिचय दिया है। बापू' कवि की अतरात्मा का सगीत है।[1] एक पूजात्मक काव्य है। कवि न बापू को सवत्र इसी रूप म देखा। श्रद्धा मूर्ति गांधी न मानव की सात्त्विक वत्तिया को जागत करने म बडा योग देकर युग का कम का मत्र दिया। गाधीजी भौतिक जगत के अधकार म आध्यात्मिकता के प्रकाश पुज थे। कवि गाधीजी के सम्बध म कहता है—

छिन्न भिन्न करक तमिस्त्र जाल
तुम जिस ओर गए
निकल पड हैं वहा माग नय
दुगम–दुरूह म स भावा–समाधान–सम ।
छदम छल क अबोध
वीतराग वीत क्रोध
तुम म पुरातन है नूतन म
स्वग वसुधा म समागत है
आकर तुम्हार नय सगम म

सुप्रसिद्ध कवि माखनलाल जी और नवीन प्रथमत तिलकवादी थ। कवि ने उन्ह भारत माता का जीवन धन मनमोहन, दानव धालक[2] भारत पालक शाल शिखर सा प्राण जलधि सा गभीर दिनमणि सा समदष्टि वाला काल सा आंधी प्रभजन सा बलवान आदि उपाधियो से विभूषित किया है। सुभद्रा–कुमारी चौहान न उन्ह भारत नया के चतुर खेवया कहा है।[3] माधव शुक्ल न *जागृत भारत की श्री १०८ तिलकवदना, तिलक महानुभाव लो० तिलक समान लो० तिलक स्मति शीषक कविताएँ* तिलकजी के गुणगान म लिखी

---

१ डा० नगन्द्र–सियाराम शरण गुप्त–प० १८७।

२ सियरामशरण गुप्त–बापू– २६–२८।

३ माखनलाल चतुर्वेदी– तिलक हिमकिरीटिना–प० ७७।

४ सुभद्राकुमारी चौहान–मुकुल–प० १२०।

हैं । श्री १०८ तिलक पत्ना शीर्षक कविता म कवि लिखता है कि स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा तथा हिन्दी स्वराज्य इन चारो के प्रचारक तिलकजी हैं।

भारत के महान् सुपुत्र जवाहरलाल नेहरू का भी अनेक कवियो न गुण गौरव किया है। अर्थात् सन् १९५० के पहले ही उनके गुणगौरव पर लिखी कविताओ को देखते। कवि युवा युगनेता नहरू को अविरत, महान् काय करते हुए देखकर नत सिर हो जाता है।[1] उनके नेतृत्व म आजादी की लड़ाई लड़ी गई थी। कवि लिखता है—

तुम लाए अपनी छाया म
स्वतन्त्रता की घड़ियाँ।[2]

काव्य विहारी हिमालय जसे उत्तुंग व्यक्तित्व तथा चरित से युक्त विश्व नेता नेहरू का गौरव करते हैं।[3]

नेहरू के समान ही जयप्रकाश क्रांति अग्निकुंड म निर्भीकता से कूद पड़ने वाले समाजवादी वीर युवा थे। दिनकर जयप्रकाश का वणन करते हुए लिखते हैं—

जय हो भारत नये खड्ग जय तरुण देश के सेनानी
जय नयी आग। जय नयी ज्योति। जय नये लक्ष्य के अभिमानी
स्वागत है आओ कालसर्प के फणपर चढ चलनेवाले
स्वागत है आओ, हवन कुण्ड म कूद स्वय बलने वाले।

जयप्रकाश के समान आय समाज के संस्थापक दयानद सरस्वती का गौरव गान कवियो ने किया है। उनका काय बहुमुखी और व्यापक था।[4] वदिक धम का पुनरुत्थान सामाजिक सुधार और राष्ट्रीयता का बीज, आधुनिक भारत मे सवप्रथम उन्होंने बोया था।[5] उन्होंने हमे आत्म गौरव का प्याला पिलाया था, तथा मान ममता का मतवाला बना दिया था। उनके संबध मे प्रशसात्मक कविताओ का आय समाज के काव्य जगत म अभाव नही है। महाकवि 'शकर' और हरिशंकर शर्मा ने कतिपय छदो म दयानद स्वामीजी का जीवन चरित लिखा है। स्वामी दयानद के अपूव काय का वणन अनुराग रत्न मे किया गया है।[6]

---

१ नरेन्द्र शर्मा–युगनेता–अग्निशस्य–प० ४६।
२ सोहनलाल द्विवेदी "जवाहर" प्रभाती पृ० ९१।
३ काव्यविहारी– पंडित जवाहर नेहरू' स्फूर्ति निनाद–प० १२४–१२५।
४ दिनकर–'जयप्रकाश' सामधेनी–पृ० ८६।
५ डा० लक्ष्मीनारायण गुप्त–हिन्दी भाषा और साहित्य को आय समाज की देन पृ० २०१।
६ अनुराग रत्न–प० ९५–९६।

जब भारत के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य, पश्चिमी सभ्यता की उपासना मे लीन हो गये और पराधीन भारत की प्रज्ञा ईर्सा से क्षोण हो गई थी तब स्वामी विवेकान द और उनके गुरु युगावतार स्वामी रामकृष्ण परमहस पराशक्ति के स्वप्रकाश वभव से आविर्भूत हुए। निराला ने नये पत्तो म रामकृष्ण परमहस[1] और अनामिका म विवेकान द की महिमा[2] का वणन किया है।

सोहनलाल द्विवेदी ने स्नेहमूर्ति, दया के अवतार, त्यागी, अनाथ बधु तथा परम तपस्वी महर्षि माल्वीयजी का वणन किया है,[3] तो नरेन्द्र शर्मा ने पौरुष के प्रतिरूप, भूपो के भूप, सकल्पो म सिद्धि तथा बारडोली के मेरुदड सरदार वल्लभभाई पटेल का वणन स्वर्गीय सरदार' कविता म किया है।[4]

इस अध्याय म सब वीरो तथा राष्टपुरुषो का उल्लेख करना असभव है। कवियो ने भी अज्ञात वीरा को प्रणाम किया है। जो अज्ञात कमवीर कोटि कोटि भिखमगो के साथ कधा जोडकर, दुखियो पर दया करके अत्याचार का प्रतिकार करते है, मानवता को सस्थापित करने के लिए आत्मोत्सग कर देते हैं उन अतीत वीरो को कवि प्रणाम करते हुए लिखता है—

किसी देश म किस वेश म करते कम
मानवता का सस्थापन है जिनका धम
ज्ञात नही जिनके नाम उन्हें प्रणाम
सतत प्रणाम।[5]

भारत के राष्टपुरुष गांधीजी, तिलक, गोखले, सुभाषचन्द्र बोस, रवीन्द्रनाथ टगोर, जवाहरलाल नेहरू का हिन्दी कवियो ने गौरवगान किया है इसके बाद कवियो न प्रादेशिक विचारवन्तो—मालवीय जी स्वामी दयानन्द, आगरकर महर्षि कर्वे, आदि का गुणगौरव किया है।

मानवता की भावना

प्राचीन युग से मानवता की भावना भारतीय सस्कृति का अभिन्न अग रही है। 'वसुधव कुटुम्बकम्', कृण्वन्तो विश्वभायम[6] मित्रस्याह चक्षुषा

---

१ निराला— युगावतार परमहस श्रीरामकृष्ण देव के प्रति नये पत्ते—पृ० ८७।
२ निराला—अनामिका—पृ० १७४।
३ सोहनलाल द्विवेदी— तरुण तपस्वी' भरवी पृ० ४२—४३।
४ नरेन्द्र शर्मा—अग्निशस्य, प० १२४।
५ सोहनलाल द्विवेदी— उन्हें प्रणाम प्रभाती पृ० २७।
६ ऋग्वेद ९।६३।५—अर्थात सारा विश्व ही उसकी दृष्टि म अपना है जिसकी सीमा विस्तार अनन्त है।

सर्वाणि भूतानि समीक्षे[1] मे विश्वबंधुता भावना का प्रचार है। पुरातन युग से भारतीय मनीषी विश्व कल्याण की भावना को व्यक्त कर रहे हैं। निम्न लिखित शब्दों में जो उदार विशाल और व्यापक भावना निहित है वह अन्यत्र शायद ही मिले।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामया
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिददु:खमाप्नुयात।

पुरातन युग के समान ही मध्यकाल में भी व्यापक मानवता का प्रसार हुआ था। संतों और भक्तों ने मानवता केवल अपनी वाणी तक सीमित नहीं रखी थी प्रत्युत उनकी दया क्षमा ममता सहानुभूति की परिधि में मनुष्य के अतिरिक्त प्राणी मात्र तक आ जाते थे। वसुधैव कुटुम्बकम का ही मानो अनुवाद करते हुए संतश्रेष्ठ ज्ञानेश्वर ने ज्ञानेश्वरी के अंत में कहा है कि यह विश्व ही मेरा घर है। मध्ययुग की इस मानवता की भावना से आधुनिक युग की मानवता की भावना पर्याप्त मात्रा में भिन्न है। संतों और भक्तों की मानवता शुद्ध धार्मिक भावना से प्रचलित है तो आधुनिक युग की मानवता सामाजिक समता के तत्त्व पर अधिष्ठित है। इसमें ईश्वरीय दया की अपेक्षा मानवी स्वत्वों की भावना प्रबल है। फ्रेंच राज्यक्रांति के स्वातंत्र्य समता एवं विश्वबंधुता-तत्त्वों ने विश्व को प्रभावित किया है उनमें से विश्वबंधुता के तत्त्व ने आधुनिक मानवता के प्रसार में विशेष योगदान दिया है।[2]

प्रारम्भ में आधुनिक मानवतावाद मानवता को शोषण और बंधन से मुक्त करने के बड़े महान और उदार आदर्शों से चालित हुआ था। तत्त्व चिंतकों और साहित्य मनीषियों के मन में इस आदर्श का रूप बहुत ही उदार था पर व्यवहार में मनुष्य की उदारता केवल एक ही राष्ट्र में मनुष्यों की मुक्ति तक ही सीमित होकर रह गई। हमारे देश में मानवतावाद आया दलितों, अधःपतितों और उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति भाव भी आया और साथ ही साथ राष्ट्रीयता आई। इसके साथ विकृत मानवतावाद भी आया।[3]

डा० शम्भुनाथ पाण्डेय ने मानवतावाद को छायावाद का एक प्रमुख तत्त्व मानकर उसका समर्थन किया है।

---

१ यजुर्वेद ३६ अध्याय मंत्र १८ अर्थात्—मैं सब प्राणियों को मित्र दृष्टि से देखूँगा।

२ डा० वा० भा० पाठक—आधुनिक मराठी काव्याचे अंतःप्रवाह पृ० ६०।

३ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य पृ० ४०४।

४ डा० शम्भुनाथ पाण्डेय—आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका पृ० ९४।

अपने नये समाज में शोषकों को कोई स्थान नहीं देते ।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि दिनकर, रांगेय राघव, निराला, नरेन्द्र शर्मा, मैथिलीशरण गुप्त भगवतीचरण वर्मा, पंत प्रसाद उदयशंकर भट्ट आदि ने मानवता के गीत गाये हैं। इन कवियों ने विज्ञान मत्त मानव के संहार शक्ति पर प्रकाश डाला है। इस विज्ञान की दौड़ में मानव मानव न रह सका। उसने विनाश की सामग्रियाँ एकत्रित की और उनका विषैला नाग बनकर विश्व को डसने लगा। हिंसा, लोभ, कपट ईर्ष्या आदि दानवी प्रवृत्तियाँ चतुर्दिक विकास पाने लगी। परिणामतः मनुष्य का मनुष्यत्व नष्ट हो गया। रांगेय राघव ने अपने प्रबन्ध काव्य 'माधवी' में वैज्ञानिक के विषय में भाव प्रकट करते हुए विश्व के भौतिक दुष्परिणामों की ओर संकेत किया है।[1] नरेन्द्र शर्मा ने कहा है कि शक्तिबल दावपेंच कूटनीति के विश्व में आदर्श और मानवता लुप्त हो रही है किन्तु रक्तपात से मानवता की गति नहीं रुकेगी, तो मानवता ही धरा को सुखी कर सकेगी।[2] यह मानवता तब तक विपन्न और दुर्बल रहेगी जब तक मानव को न्यायोचित सुख सुलभ नहीं है और मानव मन को धरती पर शान्ति नहीं है।[3]

मैथिलीशरण गुप्त के मानवतावाद में भारतीय संस्कृति की झलक लक्षित होती है। उनके काव्य मानस की प्रेरणा और प्रवृत्ति का स्रोत चतुर्विध है। मानव की गरिमा या अनुभव या महिमा के प्रति आस्था और आशा एवं उसी आधार पर मानवतावाद या व्यष्टि का समष्टि पर्यवसान[4] चतुर्विध अंगों में एक है। कवि ने अपना व्यक्तित्व समष्टि में मिलाकर देश कुल जाति वर्ग भेद को भूलकर विश्व मानव बनकर सेवा का संदेश दिया है।[5]

आज से वर्षों पूर्व परतन्त्र दशा में भी भारत के भाव विश्व में ऐसी विश्व संस्कृति की कल्पना रूप धारण कर रही थी जिसमें जाति सम्प्रदाय वर्ण वर्ग देश और पूर्व पश्चिम की सीमाएं नहीं थी जिसका आधार ही मानवता अपने सम्पूर्ण आत्मिक वैभव के साथ थी। इसकी ओर निराला ने संकेत करते हुए लिखा है—

---

१ रांगेय राघव—माधवी (१९४७), पृ० २४८।

२ नरेन्द्र शर्मा—गति और गन्तव्य—अग्निशस्य—पृ० ७०।

३ दिनकर—कुरुक्षेत्र—पृ० १०१।

४ डा० उमाकान्त—मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, पृ० ग

५ मैथिलीशरण गुप्त पृथिवी पुत्र—पृ० ६४।

मानव मानव से नहीं भिन्न
निश्चय हो श्वेत, कृष्ण अथवा
वह नहीं विलग्न
भेद कर पंक
निकलता कमल जो मानव का
वह कोई सर।[1]

कवि की प्रसिद्ध कृति 'तुलसीदास' में भी भावना और राष्ट्रोपासना का स्वर्णिम समन्वय अपने पंख खोल रहा है।[2]

भगवतीचरण वर्मा का कहना है कि केवल व्यष्टि का समष्टि में मिलने से मानवता की स्थापना नहीं होगी। आज वह मानवता दुर्बलों की चीत्कारें सुनकर समाधि लगाई बैठी है। सबलों के अत्याचारों पर भी मानवता क्या मौन है ऐसा प्रश्न कवि पूछता है।[3] जो मानवता स्थापित होगी उसका आधार सुदृढ़ होना चाहिए। मानवता का आधार है प्रेम दया और त्याग। इनको मानव जब तक पहचान नहीं सकता तब तक सच्ची मानवता पनप नहीं सकती।[4] प्रेम त्याग के साथ ही जब शक्ति के अस्तव्यस्त बिखरे हुए विद्युत कणों का समन्वय किया जायगा तब मानवता विजयिनी बन जायगी।[5]

पंत मानवता के प्रबल समर्थक रहे हैं। पंत जी के जीवन दर्शन की परिधि का केन्द्र बिन्दु ही मानवतावाद है। प्रकृति सौंदर्य भौतिकवाद, मार्क्सवाद राष्ट्रीयवाद गांधीवाद अद्वैत दर्शन अरविन्द दर्शन और आध्यात्मिकता आदि की विचारधाराओं की स्वीकृति और विरोधी विचार दर्शन में समन्वय की योजना के मूल में पंत जी का मानववाद और मानव कल्याण की भावना क्रियाशील है।[6] कवि ने जग में सबसे सुन्दरतम मानव को माना है। विश्व पुष्प की अपेक्षा भी मानव सुन्दर है। अखिल भुवन के उपवन में सर्वोत्तम कुसुम मानव है। ऐसे सुन्दर मानव का यहाँ घोर अपमान होता है। यहाँ मूर्त्त का तो अपार्थिव पूजन होता है परन्तु जीवित नर की विपण्णता

---

१ निराला—अनामिका—पृ० १८–१९।
२ डा० प्रेमनारायण टंडन—महाकवि निराला व्यक्तित्व और कृतित्व पृ० २३२।
३ भगवतीचरण वर्मा—विस्मृति के फूल—पृ० २७।
४ भगवतीचरण वर्मा—विस्मृति के फूल—पृ० ९३।
५ प्रसाद—श्रद्धा—कामायनी—पृ० ६१।
६ डा० परशुराम शुक्ल विरही आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थवाद पृ० २२२।

एव दुर्दशा की ओर कोई ध्यान नहीं देता। पत की प्रतिष्ठा मरण का वरण तो आत्मा का तिरस्कार है। 'ताज' नामक कविता में पत मानव जीवन पर मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति करते हैं।[1]

उदयशकर भट्ट मानवता का प्रसार ब्रह्माड में करना चाहते हैं। वे विश्व के कण कण में मानवता का स्वर सुनना चाहते हैं और युग की भावी सस्कृति को मानवी सस्कृति के रूप में देखने के लिए उत्सुक दिखाई देते हैं—

> कण कण म मानवता का स्वर
> स्वर स्वर म जीवन जीवन हो
> जीवन में जागति शक्ति भरे
> उल्लसित विश्व अमरागम हो।[2]

अन्त म मानवता के सम्बन्ध में यह कह सकते हैं कि मनुष्य म जाति, वर्ग धम वग, सम्प्रदाय राष्ट्र आदि के कारण द्वैत भावना का निर्माण हुआ है, य भेद कृत्रिम हैं वस्तुत सारे विश्व म मनुष्य हृदय तो एक ही है। मनुष्य मर्त्य है किन्तु मानवता अमर है।

हिन्दी कवियो ने वश जाति, सम्प्रदाय धम वण राष्ट्र शोषण हिंसा बबरता छल कपट, ध्वस अध विज्ञानमत्तता आदि से मनुष्य को ऊपर उठाकर मनुष्यत्व को पहचानने का सदेश दिया है। मनुष्य का आगमन तिमिर से हुआ है किन्तु वह अन्त म 'प्रकाशमय' रहेगा एसी आशा कवियो ने प्रकट की है।

स्वाधीनता स्वागत

१५ अगस्त १९४७ को भारतमाता की दासता की शृखलाएँ टूट गयी। किन्तु वह जातीय विभेद के आघात को सहन नहीं कर सकी। उसके अग विक्षत तथा स्वरूप खडित हो गया। यह निश्चय ही अग्रजो की कूटनीति की सफलता का परिणाम था। भारतवासियो न इसी म सतोष किया और गुलामी के नारकीय जीवन की अपेक्षा उन्होने देश का विभाजन श्रेयस्कर समझा।

यद्यपि देश का कुछ भाग पाकिस्तान के रूप म पृथक हो गया तो भी शताब्दियो की पराधीनता के पश्चात भारतीयो ने स्वतत्रता देवी के दशन किए इसीलिए जन गण क हृदय म उल्लास होने लगा तथा खुशी की उमगें उठने लगी। कवियो न विजय घोष करके जन जागरण गीत गाय। उनके

---

१ पत—'ताज' युगान्त—पृ० ५४।
२ उदयशकर भट्ट—युगदीप (२००१ वि०) पृ० ८१।

सम्मुख स्वस्थ तथा उन्नत जीवन के स्वप्न मडराने लगे। अब उनकी कविता में वेदना नहीं अवसाद नहीं वरन् हर्ष का स्वर है उन्माद की ध्वनि है।

वास्तव में भारत ने अपनी विजय को एक देश की बंधनमुक्ति के रूप में नहीं मनाया उसने अपनी मुक्ति को साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद से सभी परतंत्र देशों की मुक्ति का प्रतीक माना। भारत स्वाधीन होते ही जग की सीमाएँ विकसित हुई। कवि भारत की स्वतंत्रता के साथ सम्पूर्ण विश्व को स्वतंत्र देखने की मंगलमयी शुभ कामना व्यक्त करते हैं—

'सभ्य हुआ अब विश्व सभ्य धरणी का जीवन
आज खुले भारत के संग भू के जड़ बंधन
नान्त हुआ अब युग युग का भौतिक संघर्षण
मुक्त चेतना भारत की यह करती घोषण
धन्य आज का स्वर्ण दिवस नव लोक जागरण
नव संस्कृति आलोक करे जन भारत वितरण
नव जीवन की ज्वाला में दीपित हो दिशि क्षण
नव मानवता में मुकुलित धरती का जीवन।'[1]

स्वतंत्रता का गान हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठित अनेक कवियों ने किया है। पंत ने युगपथ की १५ अगस्त १९४७ स्वतंत्रता दिवस स्वाधीन चेतना जागरण आदि कविताओं में स्वाधीनता का सहर्ष स्वागत किया है। बच्चन ने भी धरा के इधर उधर' में स्वतंत्रता का स्वागत करते नयी जिम्मेदारियों उत्तरदायित्व और गौरव की ओर संकेत किया है।[2]

---

१ पंत–स्वर्णधूलि–पृ० १०९–११०।
२ बच्चन–धरा के इधर उधर–पृ० ४०।

परिशिष्ट

सहायक ग्रथ सूची

(अ) सस्कत ग्र थ

(१) अथर्ववेद
(२) आह्निक सूत्रावलि
(३) ऋग्वेद
(४) कठ उपनिषद
(५) तत्तरीय सहिता
(६) यजुर्वेद
(७) विष्णु पुराण
(८) शतपथ ब्राह्मण
(९) श्रीमदभगवत गीता

(आ) हिन्दी ग्र थ

१ अजित–	मथिलीशरण गुप्त
२ अजेय खडहर (१९४६)–	रागय राघव
३ अनघ–	मथिलीशरण गुप्त
४ अनुराग रत्न–	प० नाथूराम 'शकर शर्मा, द्वि० स०
५ अनामिका–	निराला
६ अणिमा–	निराला
७ अपरा–	निराला
८ १८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य सग्राम–	वि० दा० सावरकर अनु० प० म० र० वशम्पायन
९ आकुल अतर–	बच्चन
१० आकाश गगा–	रामकुमार वमा
११ आजकल के लोकप्रिय कवि रामेश्वर शुक्ल अचल–	स० कमलेश
१२ आजकल के लोकप्रिय कवि बालकृष्ण शर्मा नवीन –	स० भवानाप्रसाद मिश्र

१३ आत्मोत्सर्ग–	सियारामशरण गुप्त
१४ आधुनिक कवि भाग २	सुमित्रानन्दन पत (प्रका०) सा०स०प्रयाग
१५ आधुनिक कवि भाग ४	(गोपालशरणसिंह ठाकुर)
१६ आधुनिक कविता में विषय और शैली–	डा० रागय राघव
१७ आधुनिक काव्यधारा–	डा० केसरीनारायण शुक्ल
१८ आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत–	डा० केसरीनारायण शुक्ल
१९ आधुनिक साहित्य–	आ० नन्ददुलारे वाजपेयी
२० आधुनिक साहित्य की प्रवत्तिया	नामवर सिंह
२१ आधुनिक साहित्य का विकास–	डा० श्रीकृष्णलाल
२२ आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवत्तिया–	डा० नगेन्द्र
२३ आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका–	डा० शम्भुनाथ पाडेय
२४ आधुनिक हिन्दी काव्य म निराशावाद–	डा० शम्भुनाथ पाडेय
२५ आधुनिक हिन्दी काव्य मे यथार्थवाद-	डा० परशुराम शुक्ल 'विरही'
२६ आधुनिक हिन्दी साहित्य–	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
२७ आधुनिक हिन्दी साहित्य–	डा० रामगोपाल सिंह चौहान
२८ अग्निशस्य–	नरेन्द्र शर्मा
२९ आर्यावर्त (१९४३)–	मोहनलाल महतो वियोगी
३० इत्यलम–	अज्ञेय
३१ उन्मुक्त–	सियारामशरण गुप्त
३२ उन्नीसवी शताब्दी–	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
३३ कबीर–	डा० विजयेन्द्र स्नातक
३४ कबीर ग्रथावली पाचवा सस्करण	श्यामसुन्दरदास
३५ कबीर वचनावली–	स० अयोध्यासिंह उपाध्याय
३६ कलापी (१९३८)	आरतीप्रसाद सिंह
३७ काग्रेस का इतिहास–	डा० पट्टाभि सीतारम्मय्या
३८ काग्रेस का सरल इतिहास–	ठाकुर राजबहादुर सिंह
३९ काबा और कर्बला–	मैथिलीशरण गुप्त

४० कामायनी— जयशंकर प्रसाद

४१ काव्यविमर्श— गुलाबराय

४२ काव्य साहित्य और समीक्षा— डा० भगीरथ मिश्र

४३ किरण बेला— जगन्नाथप्रसाद मिलिंद

४४ कुंकुम— बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

४५ कुकुरमुत्ता— निराला

४६ कुरुक्षेत्र— दिनकर

४७ कृषक क्रन्दन— सनेही

४८ गद्यकार बाबू बालमुकुंद गुप्त— जीवन और साहित्य— डा० नत्थनसिंह

४९ गांधीवाद और समाजवाद— काका कालेलकर

५० ग्राम्या— सुमित्रानन्दन पंत

५१ गीतिका— निराला

५२ गुरुकुल— मैथिलीशरण गुप्त

५३ चन्द्रगुप्त— जयशंकर प्रसाद

५४ चुभते चौपदे— अयोध्यासिंह उपाध्याय

५५ चिदम्बरा— सुमित्रानन्दन पंत

५६ जयद्रथ वध— मैथिलीशरण गुप्त

५७ जाग्रत भारत— माधव शुक्ल

५८ जीवन के गान— शिवमंगलसिंह सुमन

५९ जौहर— श्यामनारायण पांडेय

६० ज्योति विहग— श्री शांतिप्रिय द्विवेदी

६१ तुलसीदास— निराला

६२ तारसप्तक भाग १— स० अज्ञेय

६३ त्रिशूल तरंग— गयाप्रसाद शुक्ल त्रिशूल

६४ दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि— प्रो० कामेश्वर वर्मा

६५ दिल्ली— दिनकर

६६ द्विवेदी काव्यमाला— महावीरप्रसाद द्विवेदी

६७ द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य— डा० रामसकलराय शर्मा

६८ दैनिकी— सियारामशरण गुप्त

६९ धरती—(१९४५)— त्रिलोचन शास्त्री

७० धार के इधर उधर— बच्चन

७१ नकुल— सियारामशरण गुप्त

७२ डा० नगेन्द्र के श्रेष्ठ निबन्ध–	डा० नगेन्द्र
७३ नये पत्ते–	निराला
७४ नवयुग के गान–	जगन्नाथप्रसाद मिलिंद
७५ नहुष–	मथिलीशरण गुप्त
७६ नया साहित्य नये प्रश्न–	आ० नन्ददुलारे वाजपेयी
७७ नया हिन्दी काव्य–	डा० शिवकुमार मिश्र
७८ निराला–	डा० रामविलास शर्मा
७९ निराला और नवजागरण–	डा० रामरतन भटनागर
८० पथिक–	रामनरेश त्रिपाठी
८१ पराग–	रूपनारायण पाडेय
८२ परिमल–	निराला
८३ पत्रावली–	मैथिलीशरण गुप्त
८४ पल्लवना–	सुमित्रानन्दन पंत
८५ पूजागीत–	सोहनलाल द्विवेदी
८६ पूर्णपराग–	रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण'
८७ पद्यप्रसून–	अयोध्यासिंह उपाध्याय
८८ पिघलते पत्थर–	रांगेय राघव
८९ पूँजीवाद समाजवाद ग्रामोद्योग–	डा० भारतन कुमारप्पा
९० प्रताप लहरी–	प्रतापनारायण मिश्र
९१ प्रतिनिधि कवि (१९५८)–	डा० सत्यदेव चौधरी
९२ प्रभाती–	सोहनलाल द्विवेदी
९३ प्रलय सृजन–	शिवमंगलसिंह सुमन
९४ प्रसाद के गीत–	श्री गणेश खरे
९५ प्रारम्भिक रचनाएँ भाग १ २–	बच्चन
९६ प्रिय प्रवास–	अयोध्यासिंह उपाध्याय
९७ प्रियप्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन–	डा० द्वारिका प्रसाद
९८ प्रेमघन सर्वस्व–	प्रेमघन
९९ पृथिवी पुत्र–	मैथिलीशरण गुप्त
१०० बंगाल का काल–	बच्चन
१०१ बापू–	सियारामशरण गुप्त
१०२ बापू–	दिनकर
१०३ बालमुकुंद निबंधावली–	बालमुकुन्द गुप्त

१०४ बालकृष्ण शर्मा "नवीन" व्यक्ति एव काव्य– डा० लक्ष्मीनारायण दुबे
१०५ नेला– निराला
१०६ भारत सन ५७ के बाद– प० शकरलाल तिवारी बेढब
१०७ भारत म अग्रेजी राज्य के दो सौ वर्ष– केशवकुमार ठाकुर
१०८ भारतदु नाटकावली– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
१०९ भारतदु ग्रथावली– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
११० भारतन्दु युग– डा० रामविलास शमा
१११ भारत भारती– मैथिलीशरण गुप्त
११२ भारत गीत– श्रीधर पाठक
११३ भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास– गुरमुख निहालसिंह अनु० सुरेश शमा (१९५२)
११४ भारत म सशस्त्र क्राति चेष्टा का रोमाचकारी इतिहास– मन्मथनाथ गुप्त
११५ भारत का सवधानिक तथा राष्ट्रीय विकास– डा० रघुवशी
११६ भारत का सास्कृतिक इतिहास– हरिदत्त वेदालकार
११७ भारतीय क्रातिकारी आन्दोलन का इतिहास–(१९६०) मन्मथनाथ गुप्त
११८ भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य म अभिव्यक्ति– डा० सुषमानारायण
११९ भारतीय नवजागरण का इतिहास श्री बाबूराव जोशी
१२० भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन और हिन्दी साहित्य– डा० कीर्तिलता
१२१ भूषण भारती (प्र० स०) हरदयालसिंह
१२२ भरवी– सोहनलाल द्विवेदी
१२३ मगल घट– मथिलीशरण गुप्त
१२४ मधुकण– भगवतीचरण वमा
१२५ मधूलिका– रामेश्वर शुक्ल "अचल
१२६ मनोविनोद– श्रीधर पाठक
१२७ महाकवि प्रसाद– डा० विजयेन्द्र स्नातक

१२८ महाकवि निराला व्यक्तित्व और
 कृतित्व– डा० प्रेमनारायण टंडन
१२९ महाराणा का महत्त्व– जयशंकर प्रसाद
१३० माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्ति और
 काव्य– डा० रामविलास तिवारी
१३१ माता– माखनलाल चतुर्वेदी
१३२ मातृभूमि– डा० वासुदेव अग्रवाल
१३३ माधवी (१९४७) रांगेय राघव
१३४ मानसी– रामनरेश त्रिपाठी
१३५ मिलन– रामनरेश त्रिपाठी
१३६ मुकुल– सुभद्राकुमारी चौहान
१३७ मैथिलीशरण गुप्त कवि और
 भारतीय संस्कृति के आख्याता डा० उमाकांत गोयल
१३८ मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति एवं
 काव्य– डा० कमलाकांत पाठक
१३९ मौर्य विजय– सियारामशरण गुप्त
१४० यशोधरा– मैथिलीशरण गुप्त
१४१ युग की गंगा– केदारनाथ अग्रवाल
१४२ युगचारण दिनकर– डा० सावित्री सिन्हा
१४३ युगदीप–(२००१ सं०)– उदयशंकर भट्ट
१४४ युगांत– सुमित्रानन्दन पंत
१४५ युगवाणी– सुमित्रानन्दन पंत
१४६ रक्तचंदन– नरेन्द्र शर्मा
१४७ रंग में भंग– मैथिलीशरण गुप्त
१४८ रश्मिबंध– सुमित्रानन्दन पंत
१४९ राधाकृष्ण ग्रंथावली– राधाकृष्ण
१५० रामचरित मानस– तुलसीदास
१५१ राष्ट्रभारती– रामचरित उपाध्याय
१५२ राष्ट्रीय वाणी भाग १, २ (प्रका०) प्रकाश पुस्तकालय कानपुर
१५३ राष्ट्रीयता–(प्र० सं० १९६१)– गुलाबराय
१५४ राष्ट्रीय मंत्र– त्रिशूल
१५५ राष्ट्रीयता और समाजवाद– आ० नरेन्द्र देव
१५६ राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास– मन्मथनाथ गुप्त

१५७ राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध आ० नंददुलारे वाजपेयी

१५८ रेणुका— दिनकर

१५९ लालचूनर— रामेश्वर शुक्ल 'अचल'

१६० वतन के गीत— विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा प्रथम संस्करण

१६१ विस्मृति के फूल— भगवतीचरण वर्मा

१६२ वीर काव्य (प्र० सं०)— डा० उदयनारायण शुक्ल

१६३ वीर सतसई— वियोगी हरि

१६४ शंकर सर्वस्व— नाथूराम शंकर

१६५ शृंखला की कड़ियाँ— महादेवी वर्मा

१६६ संस्कृति के चार अध्याय— दिनकर

१६७ सत्यार्थ प्रकाश— स्वामी दयानंद

१६८ समाजवाद— डा० सम्पूर्णानंद

१६९ साकेत— मथिलीशरण गुप्त

१७० सामधेनी— दिनकर

१७१ साहित्यधारा— डा० प्रकाशचन्द्र गुप्त

१७२ साहित्य शोध समीक्षा— डा० विनयमोहन शर्मा

१७३ साहित्यिक निबंध— डा० गणपतिचन्द्र आर्य

१७४ साहित्यिक निबंध— सुधांशु

१७५ सिद्धराज— मथिलीशरण गुप्त

१७६ सियारामशरण गुप्त— डा० नगेन्द्र

१७७ स्कंद गुप्त— जयशंकर प्रसाद

१७८ स्वर्णकिरण— सुमित्रानन्दन पंत

१७९ स्वर्णधूलि— सुमित्रानन्दन पंत

१८० स्वदेश संगीत— मथिलीशरण गुप्त

१८१ स्वप्न— रामनरेश त्रिपाठी

१८२ स्वाधीनता और उसके बाद— जवाहरलाल नेहरू (भारत सरकार १९५४)

१८३ स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य डा० रामविलास शर्मा

१८४ श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छंदतावादी काव्य— डा० रामचन्द्र मिश्र

१८५ हमारे कवि— राजेन्द्र गौड़

१८६ हल्दी घाटी— श्यामनारायण पांडेय

१८७ हंसमाला— नरेंद्र शर्मा
१८८ हिंदी कलाकार— डा० इंद्रनाथ मदान
१८९ हिंदी के कवि और काव्य भाग २ (१९३९)— श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी
१९० हिंदी कविता में युगांतर— डा० सुधींद्र
१९१ हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना डा० विद्यानाथ गुप्त
१९२ हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव— डा० रवींद्र सहाय
१९३ हिंदी काव्य में प्रगतिवाद— विजयशंकर मल्ल
१९४ हिंदी रीति साहित्य— डा० भगीरथ मिश्र
१९५ हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा— डा० लक्ष्मीनारायण दुबे
१९६ हिंदी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन— डा० लक्ष्मीनारायण गुप्त
१९७ हिंदी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन— डा० शांतिस्वरूप गुप्त
१९८ हिंदी साहित्य— डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
१९९ हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष— शिवदानसिंह चौहान
२०० हिंदी साहित्य का इतिहास— रामचंद्र शुक्ल
२०१ हिंदी साहित्य का उद्‌भव और विकास— डा० भगीरथ मिश्र, रामबहोरी मिश्र
२०२ हिंदी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ— गोविंदराम शर्मा
२०३ हिंदी साहित्य की जनवादी परम्परा— डा० प्रकाशचन्द्र गुप्त
२०४ हिंदीसाहित्य की बीसवीं शताब्दी आ० नन्ददुलारे वाजपेयी
२०५ हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास (षष्ठ भाग रीतिकाल)— डा० नगेंद्र
२०६ हिंदी साहित्य में विविधवाद— डा० प्रेमनारायण शुक्ल
२०७ हिंदू— मैथिलीशरण गुप्त
२०८ हिंदू संस्कृति में राष्ट्रवाद— डा० राधामुकुन्द मुकर्जी
२०९ हिमकिरीटिनी— माखनलाल चतुर्वेदी
२१० हुंकार— दिनकर

(इ) पत्र पत्रिकाएँ

(१) आजकल–सित–अक्तू० १९४७–खण्ड ८ सख्या १
(२) नई दुनिया–दीपावली विशेषाक सवत २०१८
(३) धमयुग २० अक्तू, १९६३
(४) सरस्वती–सितम्बर १९०६, अक्तू० १९११, जनवरी १९१२,
जनवरी १९१५
(५) सप्तसिन्धु–अप्रैल १९६३
(६) हरिजन–१४ ३ ३९, ५ ९ १९३९